की अब स्थिति प्राप्त हो सकती है । जिस ४८ मिनिट की सामायिक का विवेचन प्रस्तुत है उसी सामायिक के प्रसंग से सावद्य योग के निषेध का विधान है ।

सावद्य योग का अर्थ है–पापकारी योग । पाप करनेवाला है मन, वचन और काया, इनकी जो प्रवृत्ति पाप की हो रही है इन को मोड़ दे कर इन्हें अहिंसक स्थिति में उपस्थित करना और उस अहिंसक स्थिति का सम भाव के साथ विकास करना सामायिक की प्रारंभिक अवस्था है ।

कल सावद्य योग का निषेध रूप सामायिक के विषय में ६ भेदों का विवेचन प्रस्तुत किया था । उनमें से जो अवशेष रह गये हैं उनका कुछ स्वरूप आपके समक्ष आ रहा है ।

नाम सामायिक, स्थापना सामायिक, द्रव्य सामायिक; क्षेत्र सामायिक और काल सामायिक इन पांच भेदों का स्वरूप आपके समक्ष आ गया गया । अब छठा भेद है भाव सामायिक ।

भाव सामायिक

सामायिक की सुरक्षा के लिए सावद्य योग का त्याग नितांत आवश्यक है । भाव सामायिक उन पांचों में प्राण फूंकने वाली है । पांच भेद जो वताये गये है उन भेदों में यदि भावों का प्राण है तो सामायिक के सावद्य योग का त्याग सही रूप में पालन होगा । जैसे नाम से सामायिक की चर्चा में कहा, आपसे कोई पूछे कि आप क्या कर रहे है तो आप कहेंगे कि हम सामायिक कर रहे हैं । यह सामायिक नाम आपके भावों के साथ जुड़ता है । नाम भाव के साथ भी होता है । और अभाव से भी । सामायिक का शुद्ध रूप भाव सामायिक है । जहां किसी का नाम नहीं है वहां अभाव है। लेकिन सामायिक के भाव सहित नाम है वही सामायिक की परिधि में आता है ।

स्थापना में यह मुंहपत्ति लगाई, बैठका बिछाया, जीवों की यतना करने के लिए पूंजनी ली। सामायिक की पोषाक धारण की यह स्थापना सामायिक के निशान के साथ इसकी स्थापना की। स्थापना में भाव वही चल रहे है। जहां भाव सामायिक का प्रसंग है उसमें ६ काया के जीवों की रक्षा का विधान है। ६ काया के जीवों की रक्षा तभी होगी जब कि आपका उपयोग इसमें लगेगा पहले नाम और स्थापना सामायिक हो गई लेकिन भाव के अभाव में सामायिक विशुद्ध सामायिक नहीं बनती। आप बिना पूंजे अंधेरे में चले या दिन के समय, बिना देखे, गर्दन ऊंची उठाकर चले तो वह सामायिक भाव शून्य मानी जायेगी। आपकी दृष्टि जमीन पर रहे इस भावना से कि मेरे पैरों के नीचे ६ काया के जीव-पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति एवं चलते फिरते जीव मर न जायें। पृथ्वी के जीव तो आपकी दृष्टि में नहीं आते लेकिन ताजा मिट्टी खोदी गई है, उसमें जीव होते हैं। इसी तरह से अन्य जीव पैदा हो सकते हैं, लेकिन जहां जमीन लेवल पर है और नीचे की ताजा मिट्टी बाहर पड़ी है [illegible] उसमें पृथ्वी काय के जीव हो सकते है। [illegible] मिट्टी पर पैर नहीं रखना। धूप से भी पृथ्वी काय के जीव समाप्त हो जाते हैं। पानी बरसने से भी समाप्त हो जाते हैं पानी नहीं बरसे तो [illegible] ताजा खुदी हुई मिट्टी पर पैर नहीं रखना। पानी की [illegible] पर [illegible] पैर नहीं रखने का उपयोग होना चाहिए। चलते समय विवेक से चलना चाहिए। चलते समय किसी ने सिगरेट या बीड़ी [illegible] हुई फेंक दी तो साधक को ध्यान रखना चाहिए उसका स्पर्श न हो। [illegible] इधर उधर देख रहा है तो चिनगारी के पैर [illegible] सकता है [illegible] उपयोग-जागरण रहना चाहिए। आप सामायिक में बैठे हुए हैं, गर्मी का मौसम है, गर्मी लग रही है [illegible] और पंखा बिजली से चलता है, इसमें [illegible] के जीवों की हिंसा होती है, तो आपकी सामायिक [illegible]

होगी । गर्मी सहन नहीं हो रही है तो पुस्तक, हाथ या कपडे से भी हवा नहीं कर सकते हैं । पंखे के नीचे बैठकर सामायिक करना तो कल्पता ही नहीं है । सामायिक के साथ भाव नहीं जुडे तो सामायिक सुरक्षित नहीं रह पायेगी । आप रास्ते में चल रहे हैं हरी वनस्पति का उपयोग नहीं रखा । उस पर पैर रख दिया तो दोष लग गया । आपको सामायिक में दोष लगा हो तो उसकी आलोचना करनी चाहिए । हरी पर पैर लगा न लगा लेकिन बिना पूंजे चले तो सूक्ष्म जीवों की घात हो सकती है । इस दृष्टि से ६ काय के जीवों की रक्षा से युक्त सामायिक में भावों का पुट होना आवश्यक है ।

वैसे ही क्षेत्र की दृष्टि से जिन स्थान पर आप बैठे हैं उस स्थान को बिना पूंजे बिना देखे बैठका (आसन) बिछा दिया और उससे जीव हिंसा हो गई तो क्षेत्र की दृष्टि से सामायिक में बाधा आयेगी।

काल की दृष्टि से ४८ मिनिट का काल लिया है, इस काल में छ काय के जीवों की हिंसा नहीं करें ।

सामायिक अनासक्ति योग की साधना

ये जो सामायिक के ६ भेद हैं इन सब में मन के भाव क्या होने चाहिए ? आप सामायिक में बैठे हुए हैं, अचानक किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्य की सूचना मिल गई तो उस समय रोना या आर्त ध्यान नहीं करना चाहिए. यदि यह किया जा रहा है—रुदन करना, हाय हाय करना, सीना पीटना आदि यह सब सामायिक में किया जा रहा है तो समभाव की साधना तो दूर रही, भाव सामायिक में व्यवधान आ जायेंगे.

मैंने सुना हैं कि शांत क्रांति के जन्म दाता आचार्य श्री गणेशी लालजी महाराज साहब जब उदयपुर में छोटे बच्चे के रुप में थे, तब उनके पिता साहब लालजी धर्मस्थान में सामायिक पोषध के लिए

पहुंचते तो बच्चे के रुप में गणेशलालजी भी उनके साथ पहुंच जाते। उनके पिता सामायिक करते तो वे भी मुंहपत्ति लगा कर उनके पास में बैठ जाते. बच्चा अनुकरणशील होता है. बड़े बुजुर्ग क्या कर रहे है इसका ख्याल बच्चे को रहता है. चाहे बुजुर्ग कहें या न कहें, बच्चे उनकी नकल अवश्य करेंगे. दुकान पर तराजु मे कोई चीज तोली जा रही है तो व्यापारी का बच्चा भी तोलने की चेष्टा करेगा और कुछ नहीं तो धूल ही तोलेगा। कृषक का लड़का कृत्रिम हल बना कर चलाने की चेष्टा करेगा। जिसके माता-पिता सामायिक करते हैं, तो बचा बिना कहे सामायिक करने की चेष्टा करेगा। बचा क्या बन जाये, इसका श्रेय माता पिता को जाता है।

पोषध की साधना २४ घंटो की होती है लेकिन वह कितना महत्वपूर्ण होती है। इससे परिवार के सभी सज्जनों पर असर होता है. सामायिक का या पोषध का लाभ तो करनेवाले को मिलता है लेकिन जो देखनेवाले हैं उनके अंदर भी शुभ भावना पैदा होती है. जो देख कर गद्गद् हो जाते है। उनके शुभ भावों से कर्मो की निर्जरा होती है और पुण्यवानी बधती है. पुण्यानुबंधी पुण्य बंधता है. पौषध करते है तो सारे परिवार का ध्यान परिवार के मुखिया की तरफ रहता है. के सोचेंगे आज पिताजी पोषध में है. जितनी वक्त ये विचार आयेगे, पुण्यवानी बंधेगी, निर्जरा होगी. दूसरा व्यक्ति किसी आवश्यक का कार्य के लिए आया है और वह देखता है कि ये अभी नित्य नियम में बैठे हैं तो वह भी विलंब करेगा. इसका कितना प्रभाव फैलता है. यदि यह कहा जाय कि यह प्रकाश पुंज है तो चल सकता है। दीपक के प्रकाश में जो व्यक्ति जाते है उन सब को रोशनी मिलती है. वह सब को प्रकाशित करती है.

इसी तरह से पोषध एवं सामायिक की साधना भी सबको प्रकाशित करती है. लेकिन मेरे भाइ इसका महत्व नहीं समझते है। वे

ऐसे ही घंटों बातों मे बैठ जायेंगे, लेकिन सामायिक पचकर नहीं बैठते। सामायिक में कितना लाभ मिलता है. इस बात का ध्यान रख कर चला जाय तो अधिकांश भाई इस शुभ मार्ग पर लग सकते हैं और वे सामायिक की साधना कर सकते है।

मैं स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. के बचपन की बात कर रहा था जो उस समय छोटे बच्चे के रुप में सायबलालजी के पास चले जाते और सामायिक ले कर बैठ जाते। इस उम्र में अधिकांश बच्चों का खेलना ही होता है। अन्य घटनाएं तो घटी सो घटी ही आचार्य श्रीलाल जी म. सा. की वाणी फलित हुई। मैं मूल विषय पर आ रहा हूं, मैं कह रहा था एक रोज साहबलालजी पोषध में धर्म साधना में विराजमान थे, इधर उनकी पुत्री का स्वर्गवास हो गया। पडोसी ने सूचना दी कि साहबलालजी पोषध में क्या बैठे हो तुम्हारी पुत्रपुत्री की मृत्यु हो गई है। पुत्री के स्वर्ग वास का समाचार सुन कर पोषध में स्थिर रहना कितना कठिन होता है. श्री साहबलालजी ने कहा कि मैं पोषध में हूं, आप लोग जैसा उचित समझ कर सकते हैं। सूर्यास्त होनेवाला था लेकिन साहबलालजी पोषध से उठ कर नहीं आये. मित्रगण और पडोसी बच्ची को उठाकर ले गये. साथ में आचार्य श्री गणेशलालजी, जो बालक ही थे, भी गये. वहां श्मशान में पहुंचने के पश्चात् लकड़ी की आवश्यकता थी, लकड़ी कुछ दूरी पर मिलती थी. सब विचार करने लगे कि लकड़ी लाने के लिए जायेंगे तो शब के पास कौन बैठेगा। उस समय नन्हें बालक श्री गणेशलालजी ने कहा शव के पास मैं बैठा हूं, आप जाइए. कहावत है कि "पूत के पग पालने पहचाने जाते हैं।" वे लाश के पास बैठ गये। घर में लाश पडी है तो भी बडे-बडे लोगों को डर लगता है और एक दूसरे को कहने लगते है कि हम बाहर बैठे हैं तुम पास में बैठो। बडों के लिए भी मुर्दे के निकट बैठना मुश्किल होता है। मुर्दे से डर लगता है। लेकिन नन्हा बालक गणेशील

निर्भीक हो कर रात्रि में एकाकी श्मशान में बैठा रहा। वही छोटा बच्चा आगे चल कर क्रांतिकारी महापुरुष बन गया। साहबलालजी पोषध में इतने स्थिर थे कि पुत्री के मरने की भी परवाह नहीं की. वे जानते थे कि यह मरण की स्थिति है। मरने वाला वापिस नहीं आता उस समय वे रोये नहीं आंसू नहीं निकाले धर्म ध्यान में स्थिर रहे।

यद्यपि यदि कोई सेवा करनेवाला नहीं है, और किसी की स्थिति मरणासन्न हो तो सामायिक में रहनेवाला सेवा के चला जाए तो सामायिक व्रत, जो कि शिक्षा व्रत है, भंग होगा किंतु अहिंसा व्रत की आराधना होगी।

जैसे कि किसीने चार लोगस्स का ध्यान किया हो और नेत्र खुले हो, कोई हिंसा का दृश्य सामने हो तो आधे ध्यान में ही रक्षा हेतु जाने पर ध्यान भंग नहीं होता है। वैसे ध्यान की विधि दो तरह की है। प्रायः प्रचलित यह है कि नेत्र खुले रहें। आंखें बंध करके ध्यान नहीं करना, क्योंकि वैसी स्थिति में नींद अथवा प्रमाद आ जाता है। जब जागरण का अभ्यास हो जाय तो नेत्र बंद भी कर सकते हैं। व्याख्यान हो रहा है और आप आंखे बंध करके सुन रहे हैं, तो नींद आना स्वाभाविक है। आंखें खोलकर अच्छी तरह से सुनना चाहिए। ध्यान की स्थिति में भी आंखें खुली रहे। दो लोगस्स का ध्यान किया और कदाचित् जिस स्थान पर बैठे हैं वहां पर आग लग गई, तो उठ कर दूसरे स्थान पर बैठ कर पुनः ध्यान कर सकते हैं। अतः जीव रक्षा के अथवा अपरिहार्य सेवा के निमित्त से उठा जा सकता था। उसकी आलोचना की जा सकती थी किंतु श्री साबलालजी अपने व्रत में स्थिर रहे। वास्तव में धर्म साधना ऐसी होनी चाहिए. जिसमें परिवार आदि बाह्य बन्धनों पर आसक्ति कम होती है। ऐसी भाव सामायिक का आराधन करेंगे तो आपकी आत्मा को शांति प्राप्त होगी।

दिनांक १-८-८४
बोरीवली, (पूर्व) बम्बई

ऐसे ही घंटों वातों मे बैठ जायेंगे, लेकिन सामायिक पचकर नहीं बैठते । सामायिक में कितना लाभ मिलता है. इस वात का ध्यान रख फर चला जाय तो अधिकांश भाई इस शुभ मार्ग पर लग सकते हैं और वे सामायिक की साधना कर सकते है।

मैं स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. के बचपन की बात कर रहा था जो उस समय छोटे बच्चे के रुप में सायबलालजी के पास चले जाते और सामायिक ले कर बैठ जाते । इस उम्र में अधिकांश बच्चों का खेलना ही होता है । अन्य घटनाएं तो घटी सो घटी ही आचार्य श्रीलाल जी म. सा. की वाणी फलित हुई । मैं मूल विषय पर आ रहा हूं, मैं कह रहा था एक रोज साहबलालजी पोषध में धर्म साधना में विराजमान थे, इधर उनकी पुत्री का स्वर्गवास हो गया । पडोसी ने सूचना दी कि साहबलालजी पोषध में क्या बैठे हो तुम्हारी पुत्रपुत्री की मृत्यु हो गई है । पुत्री के स्वर्ग वास का समाचार सुन कर पोषध में स्थिर रहना कितना कठिन होता है. श्री साहबलालजी ने कहा कि मैं पोषध में हूं, आप लोग जैसा उचित समझ कर सकते हैं । सूर्यास्त होनेवाला था लेकिन साहबलालजी पोषध से उठ कर नहीं आये. मित्रगण और पडोसी बच्ची को उठाकर ले गये. साथ में आचार्य श्री गणेशलालजी, जो वालक ही थे, भी गये. वहां श्मशान में पहुंचने के पश्चात् लकड़ी की आवश्यकता थी, लकड़ी कुछ दूरी पर मिलती थी. सव विचार करने लगे कि लकड़ी लाने के लिए जायेंगे तो शव के पास कौन बैठेगा । उस समय नन्हें वालक श्री गणेशलालजी ने कहा शव के पास मैं बैठा हूं, आप जाइए. कहावत है कि "पूत के पग पालने पहचाने जाते हैं ।" वे लाश के पास बैठ गये । घर में लाश पडी है तो भी बडे-वडे लोगों को डर लगता है और एक दूसरे को कहने लगते है कि हम बाहर बैठे हैं तुम पास में बैठो । वडों के लिए भी मुर्दे के निकट बैठना मुश्किल होता है । मुर्दे से डर लगता है । लेकिन नन्हा वालक गणेशीलाल

निर्भीक हो कर रात्रि में एकाकी श्मशान में बैठा रहा। वही छोटा बच्चा आगे चल कर क्रांतिकारी महापुरुष बन गया। साहबलालजी पोषध में इतने स्थिर थे कि पुत्री के मरने की भी परवाह नहीं की. वे जानते थे कि यह मरण की स्थिति है। मरने वाला वापिस नहीं आता उस समय वे रोये नहीं आंसू नहीं निकाले धर्म ध्यान में स्थिर रहे।

यद्यपि यदि कोई सेवा करनेवाला नहीं है, और किसी की स्थिति मरणासन्न हो तो सामायिक में रहनेवाला सेवा के चला जाए तो सामायिक व्रत, जो कि शिक्षा व्रत है, भंग होगा किंतु अहिंसा व्रत की आराधना होगी।

जैसे कि किसीने चार लोगस्स का ध्यान किया हो और नेत्र खुले हो, कोई हिंसा का दृश्य सामने हो तो आधे ध्यान में ही रक्षा हेतु जाने पर ध्यान भंग नहीं होता है। वैसे ध्यान की विधि दो तरह की है। प्रायः प्रचलित यह है कि नेत्र खुले रहे। आंखें बंध करके ध्यान नहीं करना, क्योंकि वैसी स्थिति में नींद अथवा प्रमाद आ जाता है। जब जागरण का अभ्यास हो जाय तो नेत्र बंद भी कर सकते हैं। व्याख्यान हो रहा है और आप आंखें बंध करके सुन रहे हैं, तो नींद आना स्वाभाविक है। आंखें खोलकर अच्छी तरह से सुनना चाहिए। ध्यान की स्थिति में भी आंखें खुली रहे। दो लोगस्स का ध्यान किया और कदाचित् जिस स्थान पर बैठे हैं वहां पर आग लग गई, तो उठ कर दूसरे स्थान पर बैठ कर पुनः ध्यान कर सकते हैं। अतः जीव रक्षा के अथवा अपरिहार्य सेवा के निमित्त से उठा जा सकता था। उसकी आलोचना की जा सकती थी किंतु श्री साहबलालजी अपने व्रत में स्थिर रहे। वास्तव में धर्म साधना ऐसी होनी चाहिए, जिसमें परिग्रह आदि बाह्य बन्धनों पर आसक्ति कम होती है। ऐसी भाव सामायिक का आराधन करेंगे तो आपकी आत्मा को शांति प्राप्त होगी।

दिनांक १-८-८४

बोरीवली, (पूर्व) बम्बई

सामायिक का मूल्य

एकमौलिक सिद्धांत है "या या क्रिया सा सा फलवती" जितनी भी क्रियाएं होती हैं वे फलवान होती हैं, कोई भी क्रिया निष्फल नहीं जाती। क्रिया की प्रतिक्रिया के सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक क्रिया का फल अवश्य होता ही है। वह फल शुभ भी हो सकता है अशुभ भी। शुभ फल होता है तो आत्मा को अपनी साधना के लिए संबल मिलता है और अशुभ फल मिलता है तो वह साधना में विघ्न उत्पन्न करता है। यह जीवन का क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। इस क्रम में चाहे भवी हो या अभवी जितनी भी आत्माएं संसार में परिभ्रमण कर रही हैं उन सभी आत्माओं के लिए यह विषय लागू होता है। लेकिन भव्य जन अपनी समग्र साधना विधि सुविधि पूर्ण बनाने के लिए कुछ ज्ञान प्राप्त करता है और सोचता है कि कौन सी क्रिया मेरी आत्म शुद्धि के लिए निमित्त बनेगी कौन सी साधना मेरे जीवन कल्याण करने में सफल होगी। इस जिज्ञासा से यदि वह वीतराग देव की वाणी के समीप पहुंचता है तो उसे निःसंदेह सुन्दरतम मार्ग मिल जाता है।

भव्यों की प्रिय वीतराग वाणी

वीतराग देव ने आत्म कल्याणार्थ जो मार्ग बतलाया है वह सर्वथा निर्दोष एवं सर्वाधिक पवित्र है। इस मार्ग में कोई दोष खोजना चाहे, नुक्स निकालना चाहे तो निकाल नही सकता। इसका चिंतन करके बुद्धिवादी व्यक्ति अपनी बुद्धि का जितना बल लगाना चाहे, लगा ले, कितनी ही युक्तियां, प्रतियुक्तियां, तर्क प्रस्तुत करे किंतु वीतराग सिद्धांत का स्याद्वाद रुपी कवच अभेद्य ही रहता है। उन सब का समाधान भी साधना के स्वरुप ज्ञान से स्पष्ट हो जाता

है। ऐसी पवित्र साधना पद्धति भाग्यशाली ही प्राप्त कर सकते हैं। जिसने पुण्यानुबन्धी पुण्य का संचय किया वही व्यक्ति इस पवित्र साधना का लाभ उठा सकता है। जिस पुरुष का पुण्यानुबन्धी पुण्य नगण्य है, उस पुरुष के लिए यह पवित्र साधना सही नहीं रह सकती, क्योंकि जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। जब पापानुबन्धी पुण्य के कारण उसकी दृष्टि में फर्क है तो हर वस्तु को वह उसी रूप में देखने की कोशिश करेगा।

सर्प ने किसी पुरुष को डस लिया है और उसका विष उस पुरुष पर चढ़ रहा है तो बाहर से अन्दाज लगाने के लिए गारुडी या मन्त्रवादी कुछ प्रयोग करता है। कड़वे नीम के पत्ते लेकर उस व्यक्ति को चखाता है और कहता है कि बोल यह नीम तुझे कड़वा लगता है या मीठा? जिस पर पर्याप्त मात्रा में विष का असर हो गया है उसको कड़वा नीम अच्छा लगता है, वह कहता है कि मुझे नीम की पत्तियां मीठी लगती हैं। मन्त्रवादी हतोत्साह होता है। वह सोचता है कि यह विष बहुत आगे बढ़ गया है, मेरा मन्त्र काम करेगा या नहीं, वह चिंतन करने के लिए बाध्य हो जाता है। फिर भी वह पुरुषार्थ नहीं छोड़ता और साहस के साथ मन्त्र का प्रयोग करता है। कुछ समय तक प्रयोग किया, फिर उसको वह नीम की पत्तियां चखवाता है। वह व्यक्ति चख कर कहता है कि अब इन पत्तियों में उतना मीठापन नहीं रहा, कुछ कड़ुवाहट महसूस हो रही है। मन्त्रवादी आशान्वित हो जाता है कि मेरा मन्त्र कारगर हो गया, जहर उतरना प्रारम्भ हो गया। और धीरे वह जहर को उतार ही देता है।

वैसे ही सत्य और असत्य का प्रसंग है। संसार के समस्त भौतिक पदार्थ आत्मा को बंधन में डालने वाले हैं अतः कड़ुवाहट से भरे हैं किंतु सर्प के विष के समान व्यक्ति पर मोह का इतना आवरण आ जाता है, मोह रूपी सर्प ने व्यक्ति को इतना डस लिया

है कि उस समय उसको वासना–विकारो की कडवाहट मीठी लगती है और वीतराग देव की वाणी या साधना अच्छी नहीं लगाती। संसार के विषय, जो कि कडवे नीम के तुल्य है, ५ इंद्रियों का उपयोग, एक दृष्टि से आत्मा पर उलझन पैदा करनेवाला है। वह मीठा लगता है। भवी और अभवी में इसलिए अंतर आ जाता है कि अभवी कभी भवी नहीं बन सकता, उस पर आत्म कल्याण का किंचित् मात्र भी असर नहीं होता। जैसे कोरडू एक ऐसा धान होता है जो सीज नहीं पाता। आप इसको क्या बोलते है आप आपनी भाषा में समझ लेना। एक ही दाने को सिजाने के लिए १० किलो पानी उबाल लिया जाय, पानी का भाप बन जाएगी लेकिन वह दाना नहीं सीजेगा। यदि दूसरे धान का दाना उतने समय तक उबाला जाय तो वह सीज कर गल जायगा।

इसी तरह से अभवि को कितना भी उपदेश दे, उस पर असर नहीं होता। जैसे अग्नि का असर कोरडु पर नहीं होता।

भवि जन पर वीतराग देव की वाणी इतनी प्रभावी रहती है कि संसार के विषय उसको काटने लगते है। वह हर समय सोचता है कि हा हा यह अमूल्य मनुष्य जीवन जो देवो के लिए दुर्लभ है आज मैं इसका क्या उपयोग कर रहा हूं, नाशवान चीजों के लिए इसको गंवा रहा हूं। संसार के विषयों का अनेक बार मैंने उपभोग किया। कई बार मैं लखपति, करोडपति, राजा महाराजा बना, इंद्र बना किंतु इस आत्मा से मोह का जहर नहीं उतरा। इस मिथ्यात्व के जहर को उतारने वाली वीतराग वाणी ही है। यह वाणी अमृत से बढ़कर कल्याण करने वाली है।

प्रारंभिक साधना सामायिक

इसी वीतराग वाणी में अभिव्यक्त साधना का प्रारंभिक किंतु मौलिक रुप विगत कुछ दिनों से आपके समक्ष रख रहा था। वह

है सामायिक का अधिकांश। भाई बहिन इसे जानते। सामायिक की पोषाक पहनकर बैठ जाना भी सामायिक का अंग है लेकिन इनकी जानकारी यहीं तक है। पोषाक लगा के बैठ जाना स्कूल में प्रवेश होने के तुल्य है। लेकिन सामायिक का जो तात्पर्य या अर्थ है उसको यदि ध्यान में ले तो वह आत्मा को निर्मल बना कर पवित्र बना सकता है।

लगता है यह सामायिक साधना आपको जितनी अच्छी नहीं लग रही है। बंबई जैसे शहर में आप बहुत से भाई बहिनों को देखते हैं किंतु यहां धर्म स्थान में तो संतों को देखने की चेष्टा करें, उनकी साधना से परिचय प्राप्त करें। किंतु कौन भाई आ रहा है कौन जा रहा है कौन बहिन आ रही है, कौन जा रही है, जब तक आप अपनी दृष्टि का उपयोग उनको देखने की तरफ करेंगे तब तक वाणी सुनने में आपकी रुचि नहीं होगी। आप अपनी दृष्टि का उपयोग मेरी तरफ करिये।

अनेक बंधु चाहे वे तरुण ही हैं लेकिन उनकी दृष्टि और कान मेरी तरफ हैं क्यों कि उनको वाणी सुनने में ज्यादा आनंद आ रहा है। यदि धर्म स्थान में आ कर भी आपको इधर उधर देखना है तो यहां आने का उपयोग ही क्या रहा?

बंधुओ बात आध्यात्मिक एवं गहन होने से आपको समझने में कुछ दिक्कत पड़ेगी, किंतु यह ख्याल अवश्य रखिये कि मैं जिस साधना की बात कह रहा हूं, वह इतनी सहज नहीं है। इसका वास्तविक स्वरूप क्या है, यह समझने की कोशिश करें, पर कोशिश करे कौन? आप चाहते हैं कि सामायिक की पोशाक संभाल ले, बस। आगे इससे हमारे काम से काम है। थोड़ी देर आपके चाहने से बैठ जायेंगे फिर उठेंगे तब वही घोड़ा वही मैदान।

सामायिक है तलवार की धार पर चलना

मेरा संकेत इसलिए है कि जहां हम सामायिक में बैठ गये फिर प्रचलित सामायिक के अनुसार सावद्य योगका त्याग किया "सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि" हे भगवन मैं सामायिक करता हूं वह सामायिक सम+आय की है। कापका चिंतन इस दिशा में हो कि सामायिक में बैठ कर समता भाव का अभ्यास कैसे किया जाय। केवल पाप का त्याग करने मात्र से सामायिक नहीं हो सकती; सामायिक साधना बडी टेढ़ी खीर है। दूसरे शब्दों में कहूं तो तलवार की धार पर चलना तो फिर भी सहज है लेकिन इस साधना पर चलना कठिन है। छोटी से छोटी साधना को जीवन में उतारना और उसको पचाना इसके लिए बहुत बड़ी जठराग्नि की आवश्यकता होती है। जिन्होंने केवल मक्का की राब ही राबखाई है उन्हें आपके बम्बई का मशहूर सोहन हलवा थोडा सा खिलाया जाय तो क्या उनकी जठराग्नि उसको पचाने में कामयाब होगी? वैसे हीं यह सामायिक साधना सोहन हलवे से भी बढ़कर है अतः इस साधना के लिए कहा जा रहा है कि तलवार की धार पर चलना सहज है पर इस पर चलना कठिन हैं, साधना के क्षेत्र में बहुत ऊंचे पहुंचे हुए महापुरुष की यह वाणी है। अंतर की बात अंतर को छूती है पर किस व्यक्ति को छूती है? जो जिज्ञासु है उसको छूती है: कवि आनन्दघन जी की अन्तरंग वाणी है—

> धार तरवारनी सोहिली, दोहली,
> चउदमा जिनतणी चरण सेवा.
>
> धार पर नाचता देख बाजीगरा,
> सेवना धार पर रहे न देवा.

बंधुओ, मैं क्या कहूं—जितना व्यक्ति उन्डाण में जाता है, अंदर में उतरता है उतना ही वह अंदर के गहन रहस्य को प्राप्त

करता है और जब उद्बोधन करता है तो वाणी के माध्यम से उसे बाहर प्रगट करता है। आनंदघन जी लोक दिखावे में नहीं आते थे, छिपाने की भावना ही नहीं करते थे। राजा महाराजा आ जावे तो भी उन्हें कोई फिक्र नहीं थी। वे साधारण साधक नहीं थे। जब भक्ति साधना में उतरे तो १४ वे भगवान् की स्तुति करते हुए कहा कि तलवार की धार पर चलना आसान है किंतु साधना करना दुष्कार है :

"धार पर नाचता देख बाजीगरा"

वैक्रिय लब्धिधारी तलवार की धार पर सहज ही चल सकते हैं। बाजीगर भी चल सकते हैं। लेकिन वीतराग देव की साधना तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। मनकी साधना उससे भी कठिन है।

सामायिक का मूल्य

आपको ४८ मिनिट की सामायिक साधना से कितना लाभ होता है, यह तो आप, जो रोज सामायिक साधना करते हैं उनकी जानकारी का प्रसंग है। राजा श्रेणिक के प्रसंग से आपने कई बार सुना होगा कि राजा श्रेणिक अपनी नरक का बंधन काटने के लिए भगवान के बताये अनुसार पूणिया श्रावक के पास सामायिक खरीदने गया, तो पूणिया श्रावक सामायिक देने के लिए तत्पर हो गया, लेकिन पूणिया श्रावक को सामायिक की कीमत मालूम नहीं थी। तब पूणिया ने श्रेणिक से कहा कि राजन आज मैंने एक अनोखी बात सुनी है। इतने दिन तो मैं जानता था कि सामायिक बेची नहीं जा सकती। धर्म क्रिया पैसों से मोल नहीं ली जाती।

यह कौन समझ रहा है? भगवान की आज्ञा में चलने वाला पूणिया श्रावक समझ रहा है? लेकिन आज के श्रावक क्या समझते हैं, वे तो धर्मकरणी को पैसों में देखते हैं। इतने रुपये होंगे तो यह कर लूंगा, इतने रुपये होंगे तो वह

तपस्या कर लूंगा। मैंने उधर सुना कि एक तेले के पीछे वीस–वीस रुपये मिल जाते है। तेला सस्ता हो जाता है, क्योंकि वहुत वडी नामवारी हो जाती है कि हमारे यहां इतने तेले हो गये। क्या वीतराग देव ने तेले की कीमत वताई है। भाई वहिनों ने सामायिक की कीमत कर ली है। भगवन् मेरा वच्चा ठीक हो जाय तो ५० सामायिक कर लूंगा या १०० सामायिक कर लूंगा। वुखार ठीक करानेवाले सामायि की कीमत करते है। १०४ डिग्री वुखार है तो मेटासिन की गोली से वुखार ठीक हो जायगा। तो आपने सामायिककी कीमत कर ली मेटासिन की गोली जितनी।

पूणिया श्रावक सोच रहा है कि सामायिककी कीमत नहीं हो सकती। सम्राट श्रेणिक ने पूछा कि सामायिक की कीमत क्या है तो पूणिया ने कहा कि "राजन् जिसने आपको सामायिक खरीदने की वात कही है उन्हीं से पूछो कि सामायिक की कीमत क्या होती है।"

राजा श्रेणिक प्रभु महावीर के पास गया और निवेदन किया कि भगवन् आपने मेरी नरक टालने के जो और उपाय वताये हैं उनको तो मैं कर नहीं सकता, लेकिन पूणिया श्रावक मुझे सामायिक देने के लिए तैयार है और मैं खरीदने को तैयार हूं, मेरा काम वन गया। श्रावक ने कहा कि एक सामायिक लो, दो तीन या जितनी चाहिए उतनी ले लो यह तो उनकी उदारता है, लेकिन उसको सामायिक की कीमत मालूम नहीं है। अतः उसने कहा कि कीमत तो वे ही बतायेंगे जिन्होंने सामायिक खरीदने का उपाय बताया है। प्रभो, अब आप ही बता दीजिए कि एक सामायिक की कीमत कितनी है? प्रभु ने पूछा–सम्राट आपके भंडार में धन कितना है? "भगवन्, मेरे पास में धन कितना है, यह आपके केवल ज्ञान से छिपा हुआ है क्या?" मेरे केवल ज्ञान से तो छिपा हुआ नहीं है। लेकिन दुनिया की दृष्टि से तुम्ही वर्णन करो कि तुम्हारे खजाने में जेवर, जवाहरात, रत्न वगैरा कितने है?" "भगवन्, यदि मैदान में मेरे खजाने के

धन का ढेर लगाया जाय तो ५२ डूंगरियां लग सकती है।" भगवान् महावीर ने कहा "५२ डूंगरियां जितना धन तो एक सामायिक की दलाली के लिए चाहिए। बोलो तुम्हारे पास कीमत चुकाने के लिए क्या है?"

आज के भाई बहिन सामायिक का मूल्यांकन क्या कर रहे हैं? जब सामायिक का महत्व ही नहीं जानते तो उसका मूल्यांकन क्या करेंगे।

सामायिक के ६ भेद मैंने बतला दिये हैं। अगला विषय बताने की तैयारी में हूं। लेकिन यह सूक्ष्म बात आपके लिए कितनी हित-कर होगी इसका चिंतन कर लेना चाहता हूं। यह सूक्ष्म बात तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। इसका प्रयास किया जाय तो पसीनों के बूंद के बूंद टूट जाते हैं।

कई व्यक्ति संसार की दृष्टि से सोचते हैं लेकिन कई कार्य विपरीत हो जाते हैं। ऐसी विचित्र समस्या मनुष्य के सामने उपस्थित है। आज का मनुष्य अनेक प्रकार की विसंगतियों में उलझ रहा है, तथापि वह सुलझना चाहता है किंतु मूल में भूल चल रही है। सुलझाने की चाबी आपके पास ही है। आप उसको निकालिए तो सही, देखिए तो सही आपको ज्ञान होगा कि आपके पास क्या क्या है! आपको ऊपर से यह शरीर दिखता है। दर्पण से अपना मुंह देख लेंगे, शरीर के ऊपर जो चमड़ी है उसे देख लेंगे। किंतु अंदर में आत्मा या मौलिक गुण सामायिक कहां है, उसको नहीं देख पा रहे हैं। इसीलिए यह उलझन हो रही है। समस्या को सुलझाने के हेतु भी इस साधना में ही है। इस हेतु को देख लिया तो सारी समस्या हल हो जायगी। सामायिक साधना समस्त समस्याओं का निराकरण प्रस्तुत करती है। आप इसको ग्रहण करें और आनंद प्राप्त करें।

ता. ३-८-८४
बोरिवली (पूर्व) बंबई

तपस्या कर लूंगा। मैंने उधर सुना कि एक तेले के पीछे वीस-वीस रुपये मिल जाते है। तेला सस्ता हो जाता है, क्योंकि वहुत वडी नामवारी हो जाती है कि हमारे यहां इतने तेले हो गये। क्या वीतराग देव ने तेले की कीमत वताई है। भाई वहिनों ने सामायिक की कीमत कर ली है। भगवन् मेरा वच्चा ठीक हो जाय तो ५० सामायिक कर लूंगा या १०० सामायिक कर लूंगा। वुखार ठीक करानेवाले सामायि की कीमत करते है। १०४ डिग्री वुखार है तो मेटासिन की गोली से वुखार ठीक हो जायगा। तो आपने सामायिककी कीमत कर ली मेटासिन की गोली जितनी।

पूणिया श्रावक सोच रहा है कि सामायिककी कीमत नहीं हो सकती। सम्राट श्रेणिक ने पूछा कि सामायिक की कीमत क्या है तो पूणिया ने कहा कि "राजन् जिसने आपको सामायिक खरीदने की वात कही है उन्हीं से पूछो कि सामायिक की कीमत क्या होती है।"

राजा श्रेणिक प्रभु महावीर के पास गया और निवेदन किया कि भगवन् आपने मेरी नरक टालने के जो और उपाय बताये हैं उनको तो मैं कर नहीं सकता, लेकिन पूणिया श्रावक मुझे सामायिक देने के लिए तैयार है और मैं खरीदने को तैयार हूं, मेरा काम बन गया। श्रावक ने कहा कि एक सामायिक लो, दो तीन या जितनी चाहिए उतनी ले लो यह तो उनकी उदारता है, लेकिन उसको सामायिक की कीमत मालूम नहीं है। अतः उसने कहा कि कीमत तो वे ही बतायेंगे जिन्होंने सामायिक खरीदने का उपाय बताया है। प्रभो, अब आप ही बता दीजिए कि एक सामायिक की कीमत कितनी है? प्रभु ने पूछा—सम्राट आपके भंडार में धन कितना है? "भगवन्, मेरे पास में धन कितना है, यह आपके केवल ज्ञान से छिपा हुआ है क्या?" मेरे केवल ज्ञान से तो छिपा हुआ नहीं है। लेकिन दुनिया की दृष्टि से तुम्ही वर्णन करो कि तुम्हारे खजाने में जेवर, जवाहरात, रत्न वगैरा कितने है?" "भगवन्, यदि मैदान में मेरे खजाने के

धन का ढिग लगाया जाय तो ५२ डूंगरियां लग सकती है।" भगवान् महावीर ने कहा "५२ डूंगरियां जितना धन तो एक सामायिक की दलाली के लिए चाहिए। बोलो तुम्हारे पास कीमत चुकाने के लिए क्या है?"

आज के भाई वहिन सामायिक का मूल्यांकन क्या कर रहे हैं? जब सामायिक का महत्व ही नहीं जानते तो उसका मूल्यांकन क्या करेंगे।

सामायिक के ६ भेद मैंने बतला दिये हैं। अगला विषय बताने की तैयारी में हूं। लेकिन यह सूक्ष्म बात आपके लिए कितनी हित-कर होगी इसका चिंतन कर लेना चाहता हूं। यह सूक्ष्म बात तरवार की धार पर चलने से भी कठिन है। इसका प्रयास किया जाय तो कर्मों के वृंद के वृंद टूट जाते हैं।

कई व्यक्ति संसार की दृष्टि से सोचते है लेकिन कई कार्य विपरीत हो जाते हैं। ऐसी विचित्र समस्या मनुष्य के सामने उपस्थित है। आज का मनुष्य अनेक प्रकार की विसंगतियों में उलझ रहा है, तथापि वह सुलझना चाहता है किंतु मूल में भूल चल रही है। सुलझाने की चाबी आपके पास ही है। आप उसको निकालिए तो सही, देखिए तो सही आपको ज्ञात होगा कि आपके पास क्या क्या है! आपको ऊपर से यह शरीर दिखता है। दर्पण में अपना मुंह देख लेंगे, शरीर के ऊपर जो चमड़ा है उसे देख लेंगे। किंतु अंदर में आत्मा का मौलिक गुण सामायिक कहां है, उसको नहीं देख पा रहे है। इसीलिए यह उलझाव हो रहा है। समस्या को सुलझाने के हेतु भी इस साधना में ही है। इस हेतु को देख लिया तो सारी समस्या हल हो जाएगी। सामायिक साधना समस्त समस्याओं का निदान प्रस्तुत करती है। आप इसमें रमण करें और आनंद प्राप्त करें.

ता. २-८-८१

बोरीवली (पूर्व) बंबई

सामायिक साधना बनाम इन्द्रिय विजय

श्रवण उतरे जीवन में

हम कितने सौभाग्यशाली हैं कि हमें वीतराग देव की वाणी सुनने का अवसर प्राप्त हो रहा है। जो वीतराग देवकी वाणी को, अंगीकार करके इस लोक और परलोक में सुखी बने, ऐसे दिव्य पुरुषों का वर्णन आपको विद्वद्वर्य मुनि श्री सुना रहे है। कितने सुंदर ढंग से आपके समक्ष व्याख्या उपस्थित कर रहे है। आप भी ध्यान से श्रवण कर रहे हैं, लेकिन यर श्रवण तक ही सीमित न रहे। यदि कोई भी मनुष्य अपने वर्तमान को सुखी बनाना चाहे और परलोक में सदा-सदा के लिए सुखी बनने की भावना रखता है तो अमृत तुल्य वीतराग के वचनों को यथा शक्ति जीवन में स्थान दे, उन्हें पूर्णतया जीवन में उतारने की कोशिश करें, जिससे वर्तमान की समस्याओं का हल सहजतया हो सके।

इसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रभु ने जो-जो भिन्न भिन्न रुपों में संकेत दिये हैं, उन्हें संत लोग आपके समक्ष उपस्थित कर रहे हैं।

आपके समक्ष सुबहकुमार का विवेचन चल रहा है। सुबाहुकुमार कितना ऋद्धिशाली था, शारीरिक दृष्टि से कितना भव्य था, कितना कमनीय एवं कोमल था, उसकी इस स्थिति को देख कर अनेक व्यक्तियों के मानस में विविध प्रकार की जिज्ञासाएं उत्पन्न हो गई थी। गौतम स्वामी ने उन भव्यों की आंतरिक जिज्ञासा को देखकर प्रभु महावीर से प्रश्न किया "भगवन् सुबाहुकुमार को यह मनुष्य शरीर इतना आकर्षक, कोमल, कमनीय, कांति स्वरुप वाला कैसे प्राप्त

हुआ ? मनुष्य की आकृति एक समान दिखाई देती हैं लेकिन उसकी कमनीयता में अंतर आता है शरीर की रचना का प्रकार विभिन्न होता है, अतः आप कृपा करके फरमावें कि सुबाहु कुमार ने यह कमनीय सौंदर्य कैसे प्राप्त किया ?

आम व्यक्ति की दृष्टि वर्तमान जीवन पर रहती है और वह अपने से गुण संपन्न और वैभव संपन्न व्यक्ति को देखता है तो उसके मन में भी एक जिज्ञासा उठती है कि यह कैसे बना ! । यह जिज्ञासा इस बात के लिए उठती है कि मैं भी इसी प्रकार की स्थिति प्राप्त करुं । अच्छे व्यक्ति की तरह बनने की जो भावना बनती है। वह मनुष्य के विकास का सूचन करती है । यह शरीर इस जन्म की पुण्यवानी से नहीं, पूर्व जन्म की पुण्यवानी और पूर्व के कर्मों के फलस्वरुप मिला है । गौतम स्वामी ने सुबाहुकुमार के संबंध में प्रश्न कर लिया "किं वा दच्चा किं वा भोच्चा, किं वा समायरित्ता...

पूर्व जन्म में सुबाहुकुमार ने क्या दान दिया, क्या खाया क्या आचरण किया जिससे इतना पुण्य का बंध हुआ और आकर्षक रुप मिला ? प्रभु गौतम के इस प्रश्न में बहुत बडा रहस्य भरा हुआ है.

प्रश्न बहुत सुबोध प्रतीत होता है किंतु उस प्रश्न में जीवन का स्पर्श रहा हुआ है । मनुष्य का वर्तमान जीवन ईन तीन बातों से संपन्न होता है । या तो वह कुछ देता है, दे कर पुण्यवानी बांधता है । या कुछ खाता है, या कुछ आचरण करता है । उसने कौन सा ऐसा कार्य किया जिससे, ऐसा जीवन मिला, ऐसा तन मिला, ईतनी रिद्धि मिली ? मनुष्य कुछ-न कुछ देता है, देता नहीं तो कुछ-न-कुछ खाता है । देने को तो आप सब कुछ जानते हैं । अपने पास जो शक्ति है, संपत्ति है, उसका ही सदुविनिमय करते हैं, किसी-न-किसी को सहायता पहुंचाते हैं, आर्थिक दृष्टि से कमजोर

व्यक्ति को सहयोग देना, साधार्मिक को सहयोग देना, ये जो शुभ भाव हैं वे पुण्यवानी का बंधन करनेवाले है । यदि सही पात्र को दिया तो पुण्यवानी बंधेगी. गुणी पुरुष को दिया तो धर्म भी होगा. व्यक्तिगत तौर पर सम दृष्टि भाव में रहनेवाली आत्मा को समदृष्टि भाव के साथ वात्सल्य भाव से कुछ दिया तो भी पुण्य संचय होगा.

पुण्यबंध के प्रकार

तीर्थंकरों ने पुण्य, बांधने के ९ साधन बताये हैं : अन्न, पुण्य, पान पुण्य, लयन पुण्य, शयन पुण्य, वस्त्र पुण्य, मन पुण्य, वचन पुण्य, काय पुण्य और नमस्कार पुण्य. ये जो ९ साधन बताये हैं, उनमें से जो भी देता है शुभ भावना से देता है और सम्यग्दृष्टि भाव का पोषण करता हुआ देता है, वह साधारण व्यक्ति को देने की अपेक्षा अधिक पुण्य लाभ कमाता है । इससे आगे यदि कोई व्रतधारी श्रावक है उसको सहयोग देता है, उसके व्रत में मददगार बनता है, व्रत का परिपालन करने में सहायक होता है तो वह धर्म कमाता है और पुण्य बंध करता है । इससे भी बढकर जो पांच महाव्रत धारी साधु है, जो पास में कुछ नहीं रखते, अकिंचन होते है, लेकिन होते हैं, सारे जगत के वंदनीय-पूजनीय, उनको देते हैं तो भावात्मकता इतनी बढ़ जाती है कि जिससे कर्मों के वृंद के वृंद टूट जाते हैं और धर्म प्राप्ति के साथ पुण्य का अंबार लग जाता है ।

ये वृत्तियां मनुष्य जीवन में सहज और सुगम है । इसलिए गौतम स्वामीने प्रश्न किया कि सुबाहु कुमार ने पूर्व जन्म में क्या दिया, खाया? सुबाहु कुमारने पूर्व जन्म में सुपात्र दान दिया. सुपात्र के तीन भेद बताये हैं । जघन्य सम्यगदृष्टि मध्यम, व्रतधारी श्रावक और उत्तम व्रतधारी साधु. सबसे उत्तम व्रतधारी साधु हैं ।

सुपात्र दान देने से सुबाहु कुमार की पुण्यवानी बहुत बढ़ गई. प्रभु गौतम ने दान के साथ खाने का भी उल्लेख किया है कि सुबाहु कुमार ने पूर्व जन्म में ऐसा कौन सा खाना खाया, जिससे उसकी सुंदरता इतनी बढ़ गई. ऐसा खाना यदि आपको मिल जाय तो फिर क्या चाहिए. यहां खाने का संबंध वर्तमान जीवन से नहीं पूर्व जन्म से है। संयम साधना की पुष्टि के लिए खाया जानेवाला भोजन पुण्य बंध और निर्जरा का कारण होता है।

दान से सौंदर्य

आपको मालूम होगा कि वैद्य जी ऐसी दवा देते है जिससे मनुष्य सुन्दर बन सकता है। किंतु वैद्य जी सुन्दर बनने की कितनी ही अच्छी दवा दे दें, उस दवा से सुबाहु कुमार जैसा सुन्दर शरीर नहीं बन सकता। यदि आप सादी सीधी खुराक बिना औषधि के लेते है, भोजन के समय रूखा सूखा जैसा भी भोजन आप हर रोज करते हैं, उसमें यदि आप रासायनिक तत्व घोल दें, रासायनिक तत्व का तात्पर्य यह नहीं समझें जैसा कि डाक्टर प्रयोग करते है, जिससे कोयल से हीरा बना देते हैं अथवा स्वर्ण से स्वर्ण भस्म बना देते हैं। अपितु भोजन करने से पहले आप यह भावना भावें कि यह भोजन मैं हर रोज करता हूं वैसा ही कर रहा हूं। यह भोजन मैं स्वाद के लिए नहीं कर रहा हूं, न मोह को बढ़ाने के लिए कर रहा हूं, लेकिन इस भोजन से मैं ऐसी साधना कर सकूं, जैसी सुबाहु कुमार ने की और अन्ततोगत्वा वह सदा सदा के लिए सुखी बन गया। वैसे ही यह भावना भावें कि भगवन्, मैं भोजन करने बैठ रहा हूं. भोजन करने से पहले कोई त्यागी पुरुष आजावें तो उनको दान दे कर फिर मैं भोजन करूं। यदि ऐसा योग नहीं बने तो पहले पांच नवकार मन्त्र गिने बिना भोजन नहीं करूं। संभव है आपको इस भावना की पद्धति में कष्ट होगा, लेकिन यदि इस तरह

की भावना भा कर और पांच नवकार मन्त्र गिनकर, आप भोजन करना चालू करते है तो एक आध्यात्मिक रासायनिक प्रक्रिया चालू हो जाती है । आपने भोजन पर बैठ कर भावना भाई, दान लेनेवाला कोई नहीं भी आया फिर भी आपको पुण्य बंध हो गया । खाते समय भी आप भावना करिये कि मेरा जीवन इस आहार को पा कर पवित्र बन जाय, मैं सामायिक का स्वरूप प्राप्त कर लूं । यदि सामायिक का वास्तविक स्वरुप मेरे जीवन में आ गया तो उसके सहारे मैं भी सुबाहु कुमार के समान बन जाऊंगा ।

वह आहार आपकी सामायिक साधना में सहयोगी बन जायेगा। उसमें समरस का रसायन मिल जायेगा ।

आप सामायिक के स्वरुप के संबंध में जानकारी प्राप्त कर रहे हैं । अभी सामायिक का स्वरुप जितना चाहिए उतना हृदयंगम नहीं हुआ है । आरंभ किया है और कुछ आगे बढ़ रहे है । ४८ मिनिट तक एक स्थान पर बैठ कर यह सम भाव की प्राप्ति कैसे हो । यदि यह सूत्र आचरण में आ जाता है तो व्यक्ति भविष्य में भी जैसा चाहे वैसा बन सकता है और वर्तमान में भी बन सकता है । मैं यह बात केवल भावनात्मकरुप से नहीं कह रहा हूं, यदि वर्तमान जीवन को बनाने की कला आ जाती है और सामायिक का योग सावद्य लेते है तो देखिये कि आपका जीवन कैसा शांत–प्रशांत बन जाता है । किंतु सामायिक योग साधना के लिए यह चिंतन आवश्यक है कि आप सामायिक करके आये हैं, उसमें कुछ नवीनता प्रगट करके आये हैं या रीति रिवाज की तरह करके आये हैं । आपने करेमिभंते के पाठ का उच्चारण कर लिया । सावद्य योगों का त्याग कर लिया, उस अवधि में कुछ स्तुति वगैरा बोल कर ४८ मिनिट पूरे कर दिये और सोच लिया कि हमारी सामायिक पूरी हो गइ । यही तो मौलिक भूल चल रही है । सामायिक का शाब्दिक अर्थ है सम+आय अर्थात्

सम भाव की प्राप्ति। यह जब तक प्राप्त न हो सामायिक अधूरी ही मानी जायेगी।

यह चर्चा सूक्ष्म अवश्य है, लेकिन सूक्ष्म विषय को समझे बिना सामायिक से जितना लाभ होना चाहिए उतना लाभ नहीं हो सकता। इसलिए आप सामायिक साधना उसके मौलिक रूप में करें। आपने जो सामायिक की साधना की है, सावद्य योग का त्याग है-४८ मिनिट के लिए, वह आपके भीतर में कितनी उतरी है। कोई डाक्टर आपसे यह कहता है कि आपके रोग निवारण के लिए यह आवश्यक है कि आप लूखी (बिना चुपडी) रोटी खाओ और बिना नमक मिर्ची की भाजी (सब्जी) खाओ तो आप डाक्टर की आज्ञा मान लेंगे, किंतु सामायिक के लिए गुरु महाराज की आज्ञा भी मानेंगे ?

सामायिक के रासायनिक प्रक्रिया

मैं आपसे पूछुं कि आपको सामायिक का रस आया या नहीं ? यदि कुछ आया तो उसका जीवन के व्यवहार में कुछ प्रभाव हुआ या नहीं ? कुछ सीमा तक भी समता का जागरण हुआ या नहीं ? यदि आप भोजन करने बैठे और दाल में नमक कम हो या अमुक चीज की कमी है तो आप क्रोध से लाल पीले तो नहीं होंगे, कटोरी या थाली उठाकर तो नहीं फेंक देंगे। यदि वहां समभाव नहीं रहा तो समझ लीजिए कि सामायिक का रस नहीं आया है, आपको अभी रासायनिक प्रक्रिया करनी नहीं आई है। यदि रासायनिक प्रक्रिया आ जाय तो देखिये उससे कैसी परिणति हो जाती है।

पीरदान जी चोथरा तिवरी के मूल निवासी थे। आज कल उनका परिवार दुर्ग में रहता है। वे रोज सामायिक करते थे और सन्तों के प्रवचन का प्रायः बिना व्यवधान लाभ लेते थे। उनको सामायिक का रस किस रूप में लगा यह नहीं कहा जा सकता,

लेकिन उनकी जीवन-चर्या से ज्ञात होता है कि उन्होंने उस साधना से कुछ पाया । एक दिन प्रवचन के प्रसंग में प्रसंग चला कि कुछ त्याग करना चाहिए, तो उन्होंने मुनि राज से कहा कि भगवन्, एक बात का त्याग करा दीजिए कि जो भोजन एक बार परोस देंगे वह खा लूंगा, मेरे हाथ से नहीं लूंगा । अधिक होगा तो निकाल दूंगा और कम होगा तो दुबारा नहीं मांगूगा । उन्होंने यह प्रतिज्ञा ग्रहण कर ली । यह मारवाड़ का प्रसंग है ।

रसना विजय एक श्रावक का

एक रोज उनकी पत्नी ने बाजरे का खीचड़ा बना कर रखा था, एक तरफ भैंसों को खिलाने का बांटा भी सिजो कर रख दिया उस समय मारवाड़ में पानी लाने के लिए दूर-दूर जाना पडता था। अब पानी की सुविधा हो गई हो तो मैं नहीं कह सकता । पानी लाने के लिए उनकी पत्नी जा रही थीं । जाते समय अपनी सास से बोल गई कि खीचड़ा तैयार है, यदि वे आवें तो आप परोस देना । पहले की बहिनें पति का नाम नहीं देती थीं । इसलिए 'वे' शब्द का प्रयोग किया करती थीं आज कल तो पति पत्नी को एक दूसरे को नाम ले कर पुकारना एक आम बात अथवा-फैशन सी हो गई है । माता को आंखों से दिखाई नहीं देता था । उसने कहा कि बीनणी जी, तुम जाओ, पीरु आयेगा तो मैं परोस दूंगी । पानी लाने के लिए दूर जाना पडता था। इसलिए लौटने में विलंब हुआ करता था ।

पत्नी के जाने के बाद पीरदान जी दुकान से घर पर आये और माता से कहा "माताजी, मैं आ गया हूं ।" माता ने कहा? "पीरू, बीनणी पानी लाने गई है, खीचड़ा तैयार पड़ा है, तुम ले कर जीम लो." पीरदानजी ने कहा "मेरे हाथ से लेने का त्याग है" माताने कहा "मुझे आंख से नहीं दीखता है, फिर भी तू बैठ मैं परोस

देती हूं।" आप जानते हैं माता के हृदय में पुत्र के प्रति कितना ममत्व होता है। माता दीवार के सहारे चल कर खीचड़े की हांडी के पास गई और हाथ से टटोल कर लकड़ी का चाटू चम्मच उठाया और भैंस के बांटे की हंडिया को खीचड़े की हंडिया समझ कर उसमें से दो चाटू चम्मच भर के बांटा थाली में परोस दिया और पीरदानजी के सामने रख दिया. पीरदान जी के सामने वस्तु आते ही उन्होंने भावना भाई और बांटा खा कर हाथ धो लिए और थाली एक तरफ रख कर पुनः अपने काम पर चले गये।

कुछ समय पश्चात् पीरदान जी की पत्नी पानी ले कर आई, उसने खीचड़े की हंडिया देखी तो वह वैसी की वैसी भरी हुई थी। उसने पूछा "सासू जी, क्या वे नहीं आये ?" माता ने कहा "पीरू आ गया और खीचड़ा खा कर चला गया." पत्नीने कहा कि खीचड़े की हांडी तो पूरी भरी हुई है, आपने उनको बांटा तो नहीं परोस दिया ? बांटे की हांडी देखी तो वह थोड़ी खाली थी. पत्नीने कहा "आपने उनको बांटा परोस दिया." माता को बड़ा दुख हुआ बोली "उनको हाथ से ले कर खाने की सौगंद थी. लेकिन यह तो कह सकता था कि यह बांटा है। मुझे तो दीखता नहीं था, लेकिन वह बांटा खा कर ही चला गया." माता को बड़ा पश्चाताप, हुआ इतने में पीरदानजी आ गये और माता ने कहा "तू बांटा खा कर चला गया, मुझे बताया भी नहीं कि यह बांटा है, खीचड़ा नहीं है." उन्होंने कहा "भैंस बांटा खाती है, उनके भी आत्मा है. मैं भी आत्मा हूं."

उन्होंने बांटा सम भाव से खाया. कहां तो बांटा खा लेना और कहां थोड़ा साग में नमक कम हो जावे तो परात थाली पटक देना,

थोड़ी सी कमी रहने पर आपका मन ऊंचा नीचा हो जाता है। सम भाव की कमी के कारण ऐसा होता है।

सुबाहु कुमार की तरह यदि आपकी इच्छा मोक्ष में जाने की है तो उस के लिए सबसे पहली साधना सामायिक की है। ४८ मिनिट तक क्या करना चाहिए, क्या सोचना चाहिए, क्या चिंतन करना चाहिए, सामायिक में सम भाव कैसे आता है, इन सब पर गंभीर चिंतन आवश्यक है। यही नहीं उसका प्रभाव जीवन में कैसे आये यह भी विचार आवश्यक है। उसका परीक्षण भोजन के समय विशेष रुप से होता है। खाते समय सम भाव से खाना चाहिए। ऊंचे नीचे परिणाम नहीं आने दें। मान लीजिए दो भाई एक साथ रहते हैं। छोटे भाई की पत्नी परोस रही है तो यह ख्याल नहीं रखना चाहिए कि उसने मेरे को क्या परोस दिया और छोटे भाई को क्या परोस दिया। उसका ध्यान अपनी तरफ नहीं जा कर दूसरे की तरफ जायेगा, तो वहां विषमता आ जायेगी। जो व्यक्ति अपनी शक्ति को नहीं देख कर दूसरों की तरफ दृष्टिपात करता है वह जीवन में समता प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे दूसरों को देखें वैसे ही अपने को देखें। दूसरा गलती कर रहा है तो वह देखे कि कहीं मैं भी गलती तो नहीं कर रहा हूं। एक रुपक है :

इन्द्रियों का परस्पर विश्वास

एक व्यक्ति जा रहा था–नेशनल पार्क की ओर। शरीर एक था लेकिन उसमें दो आंखे थी एक नाक था, दो कान थे, एक जिह्वा थी। आंखें दूर तक देख रही थीं। आंखों ने दूसरी इन्द्रियों से

कहा-"देखो यहां पहाड़ दिखाई दे रहा है, कितना बड़ा है। इस बात को कानों ने सुना और कहा कि कहीं पहाड़ है अगर पहाड़ होता तो सबसे पहले कानों में आवाज आती ? इसी तरह से नाक ने कहा कि अगर पहाड होता तो मुझे सुगन्ध आती। जिह्वाने कहा कि पहाड़ होता तो मुझे चखने को मिलता। स्पर्श इन्द्रिय कहने लगी कि मैं हाथ लगा कर अनुभव कर सकती थी। किंतु वह पहाड़ नहीं है। आंखों ने फिर कहा कि देखें-देखें ये भ्रमर उड रहे है। दूसरी इन्द्रियों ने कहा कि आज आंखों को क्या हो गया है, जो बेतुकी बात कह रही है। पहले कहा कि पहाड़ दिख रहा है और अब कह रही है कि भंवरे उड रहे हैं। बाकी की चारों इन्द्रियां आंखों के साथ संघर्ष करने लग गई। किसी शिक्षक ने बालकों को शिक्षा देने की दृष्टि से यह रुपक प्रस्तुत किया। वह कल्पना यह समझाने के लिए है कि आंखे देखने का कार्य करती हैं, लेकिन कान देखने का कार्य नहीं करते, वे सुनने का कार्य करते है, नाक सूंघने का कार्य करता है। उसी तरह से जीभ का कार्य अलग है और स्पर्श इन्द्रिय का कार्य अलग है। पांचो इन्द्रियों को अलग-अलग कार्य बंटा हुआ है। पांचो को अपना-अपना कार्य करते हुए एक दूसरे पर विश्वास करना चाहिए। आंखें अपनी दृष्टि से देख कर कह रही है कि पहाड़ है और भवरों की पंक्तियां उड रही है, तो जो बात कह रही है अन्य चारों इंद्रियों को विश्वास करना चाहिए, आंखें जो बात कर रही है वह सही है। इसलिए कहा गया है कि जो व्यक्ति अपने को देखने के साथ ही पर को देखता है और यथेष्ट चिंतन करता है तो वह व्यक्ति समता भाव से आगे बढ़ सकता है।

इस दृष्टि से अनुभवी व्यक्ति कहते हैं "तुम सामायिक की साधना करो। यह एक दिव्य आंख है। इस दिव्य आंख से देखने की चेष्टा करो। हर समय ध्यान में रखो कि मैं सामायिक कर रहा हूं मैंने सावद्य योग का त्याग किया है। यह साधना मुझे निश्चित ही आत्म शांति प्रदान करेंगी।"

दिनांक ४-८-८४
बोरीवली (पूर्व) बंबई

रक्षा बंधन का पर्व भारतीय संस्कृति का प्रतीकात्मक पर्व है। यह अपने गर्भ में अनेक ऐतिहासिक प्रागैतिहासिक घटना क्रमों को समेटे हुए है। यही नहीं इसके साथ अनेक किंवदन्तियां भी जुड़ी हुई हैं। जो इसकी प्रयोजनीयता को ध्वनित करती है।

इस पर्व ने कितनीदर्दीली मनः स्थितियो को सांत्वना प्रदान की है। कितने विरोधी सम्प्रदायों, जातियों एवं व्यक्तियो को एक दूसरे के करीब लाकर उनमें अद्भुत एकत्व, आत्मीयता, स्नेह, सौहार्द्र की स्थापना की है।

किंतु खेद है कि आज का रक्षा बंधन पर्व प्राण रहित देह का ढांचा मात्र बनकर रह गया है। लगता है इसकी आत्मा खो गई है—हमारे हाथ में केवल कलेवर रह गया है। रक्षा बंधन का पवित्र भावों से वेष्टित यह धागा चंद नोटों के आदानप्रदान का विषय बन कर रह गया है। या यों कहें इसका चंद पैसों में सौदा होने लगा है।

रक्षा बंधन का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक रूप कैसा होना चाहिए? रक्षा के धागे का क्या महत्व है? इसकी ऐतिहासिकता क्या है? इसके सांस्कृतिक मूल्य क्या हैं. आदि जिज्ञासाओं के समाधान के साथ ही समाज के कर्णधारों के प्रति समाज एवं संस्कृति के जागरण का एक सशक्त आह्वान पढ़िये प्रस्तुत प्रवचन में।

संपादक

रक्षा-संस्कृति की

रक्षा बंधन-संस्कृति की अविच्छिन्न धारा

आज रक्षाबंधन का पर्व है। पर्व की उपयोगिता एवं उपादेयता विदित हैं। कुछ पर्व ऐसे होते हैं जो बाहरी आमोद-प्रमोद के साथ ही हमारी प्राचीन सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करते हैं।

अनंत अनंत उपकार की, अमोघ धारा से आध्यात्मिक ज्ञान की वर्षा करनेवाले, निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का उदात्त एवं भव्य स्वरुप जनता के समक्ष प्रस्तुत करनेवाले तीर्थंकर देवों के उपकार का कोई और छोर नहीं देखा जा सकता उन्होने निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का जो उद्‌बोध किया है वह कितना व्यापक एवं विशाल है उसमें कितनी अमोघ शक्ति भरी हुई है। जिससे जन-जन के जीवन में अपूर्व शांतिएवं अपूर्व प्रकाश का अनुभव हो सकता है। एसी निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति-उच्चतम साधु जीवन की पवित्र संस्कृति इस विश्व में अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं हो सकती है। भारतीय संस्कृति अध्यात्म प्रधान संस्कृति है। इस संस्कृति में निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का अपना विशिष्ठ स्थान हैं।

आज के परिवेश में अनेक संस्कृतियां हो गई है। आधुनिक संस्कृतियां अधिकांशतया पांच इंद्रियों के आकर्षण में उलझाने वाली है लेकिन प्राचीन भारतीय संस्कृति पांच इंद्रियों के विषय की प्रवृत्ति को संशीधित करनेवाली है। और उसमें भी निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति तो आत्मा के स्वरुप को इतना संशोधित कर डालती है कि उस पर कभी भी अशांति की छाया न पड सके। समस्त वेदना और वाधाएं उसके निकट नहीं आ सकें। इसी निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के परि-

पैक्य से आज का बंधन का प्रसंग आपके समक्ष उपस्थित हो रहा है।

रक्षा बंधन का त्योहार भारतीय त्याहारों में विशेष स्थान रखता है। अन्य त्योंहारों में जातीयता एवं साम्प्रदायिकता का अंतर आ सकता है लेकिन इस त्योहार में भारतीय जनता चाहे किसी जाति या पार्टी में रही हूइ हो प्रायः एक मत हो कर चल रही है।

कुछ तो इस भारतीय भूमि का प्रभाव ही है कि इस में निवास करनेवाले धीरे धीरे अपने आपको इस की संस्कृति के अनुरुप ढाल लेते हैं। रक्षा बंधन की परिपाटी कब से कहां और कैसे चली, इस विषय में अनेक ऐतिहासिक अथवा प्रागैतिहासिक प्रसंग हैं।

रक्षाबंधन-पौराणिक दृष्टि

दानवराज बलि बहुत बड़ा यज्ञ करता है, जिससे देवराज इंद्र का सिंहासन हिल उठता है. वह इस डर से कि कहीं इस तप के द्वारा दानवराज मेरा सिंहासन नहीं हड़प ले, विष्णु की शरण में जाता है। विष्णु बलि की दान शाला में बौना रुप ले कर याचक बन कर जाते है और साढे तीन पैर जमीन मांगकर तीन पांव में तीनों लोक नाप कर आधे पांव में बलि को तीसरे पाताल लोक में पहुंचा देते है। वहां बलि की दान शीलता से प्रसन्न हो कर उसे वरदान मांगने को कहते है। बलि ने मांगा कि मैं पाताल का राजा बनुं और आप मेरे द्वारपाल बने। वचन बद्धता के अनुसार विष्णु ने वैसा स्वीकार कर लिया। इसीलिए आज ब्राह्मण लोग रक्षा सूत्र बांधते समय बोलते है—

येन बद्धो बलि राजा, दानवेन्द्रो महाबलि।
तेन तां प्रति बध्नामि, रक्षा मा चल मा चल॥

दानवों के राजा बलि और देवों के राजा इंद्र, यो दानव और देव, उपर से कुछ और सूचना कर रहे है लेकिन चिंतन की दृष्टि से दोनों भौतिकवादी विचारों का प्रतिपादन करनेवाले और आध्यात्मिक उत्तरदायित्व लेकर चलनेवाले विचारों के प्रतीक है ।

जैन दर्शन में रक्षा बंधन की ऐतिहासिका अकंपन आचार्य की कहानी और उसमें भी निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के संरक्षक ७०० मुनिराजों के संरक्षण के साथ जुडी हुई, एक मुनि ने आज के दिन निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की साधना करते हुए जिस उत्तरदायित्व का परिचय दिया, ७०० मुनिराजों का संरक्षण किया, वह कथा भी इस निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा की दृष्टि से बहुत विस्तृत है ।

रक्षाबंधन का ऐतिहासिक रुप

महाराज पद्मनाम भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व लेकर चलनेवाले थे. उनके नमूचि बलि आदि चार मंत्री अकारण ही मुनि द्वेषी बन गए थे उन्होने इस आध्यात्मिक निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति पर अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया और वह अत्याचार इतना आगे बढ़ गया कि स्वयं पद्मनाम महाराज विकट धर्म संकट में फंस गए. हुआ यो कि पद्मनाभ महाराज ने उनके एक किसी कार्य से प्रसन्न हो कर उन्हें कुछ वरदान दे दिया. महाराज की कृपा प्राप्त कर वे अत्यंत उद्दण्ड बन गए. इधर एक बार अकंपनाचार्य, जिनके साथ इन चारों मंत्रियों का द्वेष था, अपने ७०० शिष्यों के परिवार सहित पद्मनाभ की राजधानी में पहुंचे और नगर के बहार बगीचे में अपनी संयम यात्रा का निरवहन करते हुए रह रहे थे. उस समय उन नास्तिक वादी दूसरे शब्दों में भौतिकवादी या पांच इंद्रियों के विषय मे आसक्त रहनेवाले व्यक्तियों ने कुछ अपना प्रभाव दिखानां चालू किया. उन्होंने सम्राट से वरदान के रुप में सात दिन का राज्य ले लिया और निश्चय किया कि सातवें रोज उन ७०० मुनियों को अग्नि भस्म सात् कर देना है ।

पद्मनाभ महाराज का राज्य बहुत विशाल था और उस राज्य का पूर्ण अधिकार सात दिन के लिए उन मंत्रीयों को मिल गया था। उन्होंने ऐलान करा दिया कि निर्ग्रंथ श्रमण संस्कृति से हमको कोई प्रयोजन नहीं, इन श्रमणों की हमें कोई आवश्यकता नहीं। ये व्यक्ति हमारी भौतिक सुख सविधाओं में बाधक है। हमें जो पांच इंद्रियों के विषय सुलभता से प्राप्त है, ये इसमें विघ्न पैदा करते है यह हृदयों से पांच इंद्रियों के विषय छुड़वाते हैं और आध्यात्मिकता की बात कर के दुनिया को गुमराह करते है, ऐसे इन मुनियों को हम अपने राज्य में नहीं रहने देंगे. ये सब मुनि सात दिन के अंदर अंदर हमारे राज्य से बाहर चले जायें, वे इस राज्य में नहीं रहे अन्यथा सातवें दिन इनको अग्नि में होम दिया जायगा इतनी क्रूरता उन मंत्रियों में आ गई.

पद्मनाभ महाराज संत समुदाय का आदर करते थे, उनके सामने नतमस्तक होते थे. संत जीवन की गरिमा उनकी रग रग में समायी हुई थी लेकिन वे वचन बद्ध थे, इसलिए कुछ नहीं कर पा रहे थे।

उनके छोटे भ्राता छोटी वय में ही आध्यात्मिक साधना में ही संलग्न हो गये और निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की उदात्त एवं पवित्र छाया में आत्म विकास कर रहे थे. वे अपने गुरुमहाराज के पास साधना की दृष्टि से अरण्य में—पहाड की गुफा में साधना कर रहे थे. इधर दूसरे गुरु शिष्य भी अन्य गुफा में साधना कर रहे थे.

रक्षा—श्रमण संस्कृति की

आज श्रावणी पूर्णिमा की रात्रि को श्रवण नक्षत्र आकाश में चमक रहा था। गुफा में से शारीरिक चिन्ता निवृत्ति के साथ साथ स्वाध्याय की साधना करने की दृष्टि से आकाश प्रति लेखन को गुरु महाराज बाहर निकले आकाश में चमकते हुए तारे देखे। गुरुमहाराज की दृष्टि इस श्रवण नक्षत्र पर गई। वे श्रावण नक्षत्र को पहले से

देख चुके थे, आज भी देख रहे थे। आज श्रावण नक्षत्र प्रकंपित हो रहा था। उन्होंने देखा कि आज यह नक्षत्र प्रकंपित क्यों हो रहा है वे विशिष्ट ज्ञानी थे। अतः ज्ञान से अनुमान लगाया कि यह श्रावण नक्षत्र प्रकंपित हो रहा है इससे लगता है देश में धर्म एवं संस्कृति पर कुछ संकटमय परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। हो सकता है ७०० मुनिराज जो पद्मनाभ के राज्य में आये हुए हैं उन पर बहुत बडी विपत्ति हो, उनके प्राणों के समाप्त होने का प्रसंग लग रहा है, उन आचार्य उनके मुंह से सहसा निकल पडा "अहो कष्टम् अहो अष्टम्" ये शब्द अन्दर साधना करने वाले शिष्य ने भी सुने। उसने कल्पना की कि गुरू महाराज बाहर पधारे है, यह जंगल का प्रसंग है, जहां जंगली जंतु रहते हैं संभव है, उन पर कोई आपत्ति आ गई हो इसलिए ये शब्द उनके मुंह से निकले हो शिष्य ने अपनी साधना गौण की ओर बाहर आया तो देखा कि गुरुमहाराज तो सुरक्षित खडे है, उनकी दृष्टि आकाश मंडल की ओर लगी हुई है और उनके मुंह से शब्द निकले हैं अहो कष्टम्। शिष्य ने निवेदन किया कि गुरुदेव आज आपके मुंह से ये शब्द कैसे निकले? ऐसी आश्चर्यजनक बात कैसे आई? आप ज्ञानी हैं। गुरुमहाराज ने कहा कि शिष्य! क्या बताऊं, आज की रात्रि समाप्त होने के पश्चात् पद्मनाभ महाराज के राज्य में ७०० मुनिराजों का अन्त होनेवाला है। उनका संरक्षण करना आवश्यक है। यदि उनका संरक्षण नहीं हुआ तो निर्ग्रन्थ श्रमणं संस्कृति पर महान वज्राघात होगा, मेरे मन में यही वेदना है, इसी-लिए मेरे मुंह से अहो कष्ट का शब्द निकल गया। शिष्य ने कहा कि गुरुदेव इनका संरक्षण कौन कर सकता है? गुरु महाराज ने कहा कि भाई पद्मनाभ महाराज के लघु भ्राता विष्णु कुमार, वे इस कष्ट का निवारण करने में समर्थ हैं, लेकिन उनको जानकारी मिले तो वे यह कार्य कर सकते है शिष्य ने पूछा "गुरुदेव वे कहां है?" गुरु महाराज ने कहा "यहां से बहुत दूर एक गुफा में गुरु शिष्य दोनों साधना कर रहे हैं।" "गुरुदेव, उनके पास सूचना कैसे पहुंच

सकती है।" गुरु महाराज ने कहा "वत्स मैं भी यही चिंतन कर रहा हूं। या तो कोई आध्यात्मिक शक्ति से वहां जा सकता है या शीघ्रगामी कोई साधन हो तो उनके पास सूचना पहुंच सकती है।" शिष्य ने कहा कि गुरुदेव आपकी कृपा से मुझे आध्यात्मिक साधना से कुछ उपलब्धि हो रही है और मैं इतनी शक्ति संपादित कर चुका हूं कि मैं किसी भी सुदूर क्षेत्र में जा सकता हूं; यद्यपि इस शक्ति को मैं प्रयोग में नहीं लाना चाहता लेकिन ऐसे प्रसंग पर, जब कि आपके मुंह से अहो कष्टम् शब्द निकल रहे है, मैं अनुभव कर रहा हूं कि कोई बहुत बडी बात है। इस निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के लिए मुझे यदि शक्ति का प्रयोग करना पडे तो मैं बाद में प्रायश्चित्त कर सकता हूं। मैं मुनि विष्णु कुमार के पास शीघ्र पहुंच सकता हूं, लेकिन वापिस शीघ्र आने की शक्ति अभी तक संपादित नहीं कर पाया हूं। गुरुमहाराज ने कहा कि पुनः आने की फिक्र मत करो। एकबार उनके पास संदेश पहुंचा देते हो तो वे उनकी रक्षा करने में सफल हो जायेंगे।

शिष्य ने तथास्तु कह कर अपनी शक्ति का प्रयोग किया और विष्णु कुमार मुनि के पास पहुंचे गुरुमहाराज द्वारा बतलाये हुए उद्गार उनके समक्ष प्रस्तुत किये। विष्णु कुमार मुनि वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करके सूर्योदय होते होते पद्मनाभ महाराज के पास पहुंच गए।

भ्राता मुनिराज को देखकर पद्मनाभ महाराज प्रसन्न हुए, उनका सत्कार सन्मान किया तब मुनि ने कहा कि राजन मेरा क्या सत्कार सन्मान कर रहे हो। निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का सत्कार सन्मान करो। वह आज खतरे में पडी है। थोडा विलंब हुआ तो ७०० मुनिराजों का घात हो जायेगा और निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति भी विकट समस्या में पड जायेगी। सम्राट ने कहा—मैं क्या कर सकता हूं मुझसे बहुत बडी भूल हो गई। उन अजनबी मंत्रियों की तात्कालिक

उपलब्धियों को देखकर मैं वचनबद्ध हो गया। मुझे पता नहीं था कि ये लोग वरदान का दुरुपयोग करेंगे, अनीति और अत्याचार करेंगे। लेकिन मुंह से निकले वचनों के कारण वरदान दे दिया और ७ दिन के लिए राज्य उनके आधीन कर दिया। उसके बाद मैं निहत्था हो गया। सत्ता और शस्त्र मेरे पास नहीं रहे, समस्त अधिकार उनके पास चले गये। मुझे अत्यन्त दुख हो रहा है लेकिन मैं कर कुछ नहीं सकता। आप समर्थ है आप ही उन मुनियों की रक्षा करें। मुनि ने कहा "राजन, मैं अपनी स्थिति से जो करना चाहूंगा वह करूंगा," किंतु आप यह संकल्प करें कि इस प्रकार तत्क्षण लुभावने द्रश्य दिखानेवाले भौतिकवादियों के चक्करमें नहीं आयेंगे। ऐसे नाटकीय ढंग से ठगने वाले व्यक्ति दुनियां में बहुत होते है। उनके चक्कर में आने से पवित्र संस्कृति, जिसको भारतीय संस्कृति का सिरमोर बताया है, आज खतरे में पड गई है। महाराज ने कहा कि मैं आगे के लिए सावधानी रखूंगा सात दिन बाद सत्ता वापिस मेरे पास आ जायेगी, फिर अपनी स्थिति में चलूंगा। फिर किसी भी मुनि की ओर कोई अंगुली उठाकर नहीं देख सकेगा। पद्मनाभ के विचार सुनने के बाद विष्णु कुमार उन मंत्रियों के प्रधान के पास गये और कहा कि अब तो तुम राजनपति राजा हो गये हो, मुझे भी कुछ दान दोंगे? आप यज्ञ कर रहे है, उसमें कुछ दान भी दिया जाता है? उसने कहा "बोलो क्या चाहते हो?" उन्होंने कहा "मैं तो साधु हूं। मुझे क्या चाहिए, सिर्फ साढे तीन हाथ जमीन शयन के लिए चाहिए।" प्रधान ने कहा कि साढे तीन हाथ क्या और अधिक चाहिए तो ले लो। मैं देने के लिए तैयार हूं। नहीं मेरे लिए तो इतनी ही पर्याप्त है। उसको वचन में आबद्ध करके वैक्रिय लब्धि से विराट रुप बनाया। तीन हाथ में सारी जमीन नाप गये और बोले कि बताओ अब आधा हाथ कहां रखूं प्रधानों के आंतरिक विचार शीतल हुए, उनका अभिमान चूर चूर हो गया।

विष्णु कुमार के चरण पकडे और प्राणों की भिक्षा मांगने लगे-"मैं आपके शरण में हूं, अब कभी ऐसा कार्य नहीं करुंगा। मुनिराज ने उनको अभयदान दिया। लेकिन उनका जीवन बदल दिया। इस प्रसंगसे ७०० मुनिराजों की रक्षा हुई।

इधर पुराण की दृष्टि से देवों की रक्षा हुई। आसुरी प्रवृत्ति से देवी प्रवृत्ति की रक्षा हुई। और उधर भौतिक प्रवृत्ति से आध्यात्मिक प्रवृत्ति की रक्षा हुई। ये दोनों स्थितियां रक्षा बन्धन के इतिहास को स्पष्ट करती हैं।

तत्कालीन जन प्रमुखों ने उस समय की परिस्थिति को देखकर, देवी प्रकृति और आध्यात्मिक जीवन की रक्षात्मक उद्दात भावनाओं को प्रश्रय देने के लिए रक्षा बंधन का पर्व प्रचलित किया. पर्व किसी भी निमित्त से चला हो, उसका उद्देश्य महान और है. किंतु आज का पर्व प्रायः निष्प्राण सा हो गया है जैसे लौ रहित दीपक. जैसी बिना ज्योतिवाले दीपक की स्थिति है ठीक वही स्थिति आज रक्षाबंधन की बन रही है. यहां रक्षा की भावना जिस रूप से प्रचलित हुई? उस उद्देश्य को आज की जनता भूल गई. इस रक्षा के विपरीत उद्देश्य में प्रवृत्ति करने के लिए प्रकाश रहित रक्षा का डंडा लेकर चल रही है, लेकिन प्राण खो दिये हैं आज का पर्व इतने में ही सीमित हो गया है कि सूत के धागे में चमकीला पदार्थ लगा कर रक्षा बांध दी जाती है और भाई बहिन को कुछ दे देता है।

बंधुओ, क्या आप जानते हैं कि इसके पीछे भ्रात प्रेम की स्थिति कैसे सुरक्षित रहनी चाहिए। आज भ्राता रक्षा बांधने के बदले में पांच रुपये, दस रुपये, पचास रुपये या पांच सौ रुपये दे देगा, लेकिन वह बहिन यदि संकट में है कष्ट पा रही है, उसके जीवन की अत्यंत दयनीय दशा है. उसका परिवार दुःखी हो रहा है, उस समय

जिसके हाथ में बहिनने रक्षा बांधी, वह रक्षा बंधानेवाला व्यक्ति कहा गया ? और उसने बहिन के लिए क्या कुछ किया ? क्या वह उस समय वहिन की मदद करता है ? क्या वह रक्षा वंधन का कुछ महत्व समझता है ? मैं आपसे क्या कहूं ? इसका महत्व समझानेवाले विरले ही होते है । रक्षा वंधन का संवंध केवल धागे तक ही सीमित नहीं है । इसके पीछे बहुत बड़ा दायित्व छिपा हुआ है ।

रक्षा सूत्र और हुमायू

ऐतिहासिक तथ्यों से संवंधित एक घटना है–जब बादशाह हुमायू भारत भूमि पर राज्य कर रहा था । उस समय वहादुरशाह चित्तोड़ पर चढ़ कर आ गया. चित्तोड़ के किले को उसने चारों ओर से घेर लिया. चित्तोड़ के राजघराने का परिवार, मेवाड़ की सारी जनता खतरे में पड़ गई. राणा की इतनी ताकात नहीं थी कि वह बहादुरशाह की सेना हरा सके ।

हुमायू उस समय बंग देश को विजय करने कीं तैयारी कर रहा था विराट सेना ले कर बंगाल विजय की उम्मीद ले कर चल रहा था. उस समय मेवाड़ की महारानी किरणावती ने एक रक्षासूत्र राखी का धागा हुमायू के पास भेजा और साथ में पत्र भी. आपके राखी बांधती हूं. मैं आपकी धर्म बहिन हूं. आज आपकी बहिन खतरे में है और उसका परिवार संकटपूर्ण स्थिति में चल रहा है । आप इस रक्षा के धागे को मेरी ओर से हाथ में बांधे और बहिन, उससे संवंधित परिवार एवं राज्य की रक्षा करें. महारानी का आंतरिक स्वर लच्छेदार भाषा में मुहावरों के पुट के साथ नहीं पहुंचा. लेकिन सीधे सादे शब्दोमें पहुंचे ।

बादशाह हुमायू जाति और संस्कृति की दृष्टि से थोड़ा भिन्न पड़ता था. लेकिन भारतीय संस्कृति में राज्य होने से भारतीय

संस्कृति से अछूता नहीं रह सका. वह भी रक्षा बंधन से प्रभावित हुआ और जाति, व्यक्ति और पार्टी के भेद को गौण करके, अपने को मिलनेवाली विजय को पीठ दे कर अपनी ही जाति के बहादुरशाह से संघर्ष करने के लिए अपने दल बल सहित पहुंच गया और महारानी की रक्षा की.

वैसी ही नागौर की घटना है। दीलिपसिंह एवं रुद्रसिंह की मैं ऐतिहासिक अन्यान्य घटनाओं के विस्तार में नहीं पाकर संकेत मात्र दे रहा हूं।

आज का भाई इन बहिनों से रक्षा बंधवाता है, किन्तु रक्षा का धागा बंधवाने के बाद क्या उसके मन में रक्षा का उत्तरदायित्व जागता है? यदि उसने आज बहिन को कुछ देदिया और उसके कुछ माह बाद बहिन भूखों मर रही है उसके बाल बच्चे अन्न के लिए बिलख रहे हैं और भाई के पास अपार समृद्धि है. तो क्या वह भाई उस बहिन के दुर्भाग्य से संघर्ष करने के लिए अग्रसर होगा? क्या रक्षा के धागे की रक्षा करेगा? किसे क्या कहा जाय! समाज की इस दयनीय दशा पर तरस आता है.

भारतीय संस्कृति की रक्षा

आज भारतीय संस्कृति भारतवासियों के कर कमलों में रक्षा का धागा बांध रही है। त्योहार सूचित कर रहा है कि मैं भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व ले कर आया हूं। भारतवासियों! तुम चाहे किसी भी पोस्ट पर बैठे हुए हो, चाहे धर्म के सिंहासन पर हो या राजस्थान या महाराष्ट्र के सिंहासन पर हो साधारण व्यक्ति हो या उसका हाथ चुना हुआ पद लेता हो, आप भारतीय संस्कृति के अञ्चल में पले हुए हैं, उसके दाक्षिण्य और माहात्म्य को ले कर चलते हैं.

जिसके हाथ में बहिनने रक्षा बांधी, वह रक्षा बंधानेवाला व्यक्ति कहा गया ? और उसने बहिन के लिए क्या कुछ किया ? क्या वह उस समय बहिन की मदद करता है ? क्या वह रक्षा बंधन का कुछ महत्व समझता है ? मैं आपसे क्या कहूं ? इसका महत्व समझाने-वाले विरले ही होते हैं । रक्षा बंधन का संबंध केवल धागे तक ही सीमित नहीं है । इसके पीछे बहुत बड़ा दायित्व छिपा हुआ है ।

रक्षा सूत्र और हुमायू

ऐतिहासिक तथ्यों से संबंधित एक घटना है—जब बादशाह हुमायू भारत भूमि पर राज्य कर रहा था । उस समय बहादुरशाह चित्तोड़ पर चढ़ कर आ गया. चित्तोड़ के किले को उसने चारों ओर से घेर लिया. चित्तोड़ के राजघराने का परिवार, मेवाड़ की सारी जनता खतरे में पड़ गई. राणा की इतनी ताकात नहीं थी कि वह बहादुरशाह की सेना हरा सके ।

हुमायू उस समय बंग देश को विजय करने की तैयारी कर रहा था विराट सेना ले कर बंगाल विजय की उम्मीद ले कर चल रहा था. उस समय मेवाड़ की महारानी किरणावती ने एक रक्षासूत्र राखी का धागा हुमायू के पास भेजा और साथ में पत्र भी. आपके राखी बांधती हूं. मैं आपकी धर्म बहिन हूं. आज आपकी बहिन खतरे में है और उसका परिवार संकटपूर्ण स्थिति में चल रहा है । आप इस रक्षा के धागे को मेरी ओर से हाथ में बांधे और बहिन, उससे संबंधित परिवार एवं राज्य की रक्षा करें. महारानी का आंतरिक स्वर लच्छेदार भाषा में मुहावरों के पुट के साथ नहीं पहुंचा. लेकिन सीधे सादे शब्दोंमें पहुंचे ।

बादशाह हुमायू जाति और संस्कृति की दृष्टि से थोड़ा भिन्न पड़ता था. लेकिन भारतीय संस्कृति में राज्य होने से भारतीय

संस्कृति से अछूता नहीं रह सका. वह भी रक्षा बंधन से प्रभावित हुआ और जाति, व्यक्ति और पार्टी के भेद को गौण करके, अपने को मिलनेवाली विजय को पीठ दे कर अपनी ही जाति के बहादुरशाह से संघर्ष करने के लिए अपने दल बल सहित पहुंच गया और महारानी कीं रक्षा की.

वैसी ही नागौर की घटना है। दीलिपसिंह एवं रुद्रसिंह की मैं ऐतिहासिक अन्यान्य घटनाओं के विस्तार में नहीं पाकर संकेत मात्र दे रहा हूं।

आज का भाई इन बहिनों से रक्षा बंधवाता है, किन्तु रक्षा का धागा बंधवाने के बाद क्या उसके मन में रक्षा का उत्तरदायित्व जागता है? यदि उसने आज वहिन को कुछ देदिया और उसके कुछ माह बाद वहिन भूखों मर रही है उसके बाल बच्चे अन्न के लिए विलख रहे हैं और भाई के पास अपार समृद्धि है, तो क्या वह भाई उस वहिन के दुर्भाग्य से संघर्ष करने के लिए अग्रसर होगा? क्या रक्षा के धागे की रक्षा करेगा? किसे क्या कहा जाय! समाज की इस दयनीय दशा पर तरस आती हैं.

भारतीय संस्कृति की रक्षा

आज भारतीय संस्कृति भारतवासियों के कर कमलों में रक्षा का धागा बांध रही है। त्योहार सूचित कर रहा है कि मैं भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व ले कर आया हूं। भारतवासियों! तुम चाहे किसी भी पोस्ट पर रहे हुए हों, चाहे धर्म के सिंहासन पर हों या राजस्थान या महाराष्ट्र के सिंहासन पर हों साधारण व्यक्ति हो या जनता द्वारा चुना हुआ बडा नेता हो, आप भारतीय संस्कृति के अन्न-जल से पले पुषे हैं, उसके दायित्व और महत्व को ले कर चलते हैं.

जनता भारतीय संस्कृति का रक्षा सूत्र, जिनके पास भेजती है उन सबका रक्षाबंधन हो जाता है । भारतीय जनता की रक्षा का उत्तरदायित्व सारे भारतवासियों पर आ जाता है, चाहे वह हिन्दु हो, मुसलमान हो या और कोई हो, जिन्होंने भारतीय धरा का अन्न जल लिया है उसकी सुरक्षा के लिए उन्हे कटिबद्ध होना चाहिए, क्या भारतवासी इस भारतीय संस्कृति की सुरक्षा के लिए तत्पर हैं ?

मैं किसको क्या कहूं, आप जितने यहाँ बैठे हैं उनको संकेत करता हूं. यदि आप ठीक समझते हैं तो भारतीय धरती पर आज जो हिंसा हो रही है. कत्लखाने चल रहे है. मुर्गी उद्योग चल रहे है, मच्छी उद्योग चल रहे है. अंडों का प्रचार हो रहा है, यह सब भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल है. मानव जाति के लिए हितावह नहीं है. ये संस्कृति के लिए खतरा पहुंचाने वाली प्रवृत्तियां है.

संस्कृति की दयनीय दशा

वैसे ही पाश्चात्य संस्कृति के संस्कार स्कूल, कालेजों के माध्यम से भरे जा रहे है. जो भारतीय जमीन पर पले पुषे है, फिर भी पाश्चात्य संस्कृति में वह रहे हैं उनको सोचना है–वे परतंत्र है और पाश्चात्य संस्कृति से ओत प्रोत हो रहे है, यह बहुत बडा आक्रमण है हमारी संस्कृति पर। यह बहादुरशाह के आक्रमण से भी बढकर है. यह इस प्रकार का आक्रमण है कि भीतर के संस्कारों की दृष्टि से भारतीय संस्कृति को समाप्त करने की कोशिश की जा रही है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक भारतीय को वीरता दिखानी चाहिए। उसकी रग रग में अहिंसा एवं संस्कृति का बहनेवाला खून ठंडा नहीं पडना चाहिए। युवा वर्ग में संस्कार जगने चाहिए।

आज इस भारतीय संस्कृति की दयनीय दशा हो रही हैं। यह संस्कृति किसी व्यक्ति, जाति, पार्टी की नहीं है। यह संपूर्ण विश्व को विश्व शांति का अमोघ संदेश देनेवाली है। किंतु आज यह निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति खतरे में पडी है। उस पर आधुनिक वासियों का खतरा बढ रहा है. वे जमाने के नाम पर इन्हें नोचने की कोशिश कर रहे है। जैसे द्रोपदी का चीर हरण करने के लिए दुशासन आया था। आज उसी तरह के कई व्यक्ति खडे हो गये है। वे कह रहे है कि रुढीवाद को समाप्त करो, जो युग के साथ नहीं बदला वह टिक नहीं पायेगा। आज जैन संस्कृति एक सीमित क्षेत्रीय दायरे में ही रह गई है, अतः हमें प्रचारक बन कर इसे सर्वत्र फैलाना चाहिए। भावुक जनता उन आधुनिकों की भावना में वह रही हैं। निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कति में पले पुषे व्यक्ति भी आधुनिकता के वायुमंडल में वह रहे हैं। भौतिकवादियों के साथ इस संस्कृति को नीचे गिराने का प्रयास कर रहे हैं। उन महानुभावों को मेरा परामर्श है कि वे रुढिवाद एवं प्रगति वाद को ठीक से समझ तो लें। क्या संस्कृति के मूल को तहस–नहस करके संस्कृति का प्रचार करना प्रगति वाद है? समय एवं प्रचार के नाम पर मौलिक सांस्कृतिक मूल्यों को विकृत कर देना प्रगति है? रुढिवाद का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम मूल सिद्धांतों पर स्थिर न रहें. यदि हम रुढिवाद के परिवर्तन की ओट में मूल सिद्धांतों को तोडते जावें तो यह प्रगति है या अवनति? क्या वे यह नहीं समझते कि ऐसा करते हुए वे अपना ही अवमूल्यन नहीं कर रहे हैं, अपितु भारतीय संस्कृति की प्राणरुप संस्कृति का अवमूल्यन कर रहे हैं। इसका परिणाम क्या होगा, यह तो भविष्य ही बतायेगा। मैं भी निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की अनुछाया में पलनेवाला एक साधक हूं। आपको कर्तव्य की दृष्टि से संकेत दे रहा हूं। आप रक्षा बंधन का महत्वपूर्ण संकेत समझें.

संघ प्रमुखों के दायित्व

एक दृष्टि से देखा जाय तो निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के उपासकों की संख्या इस बंबई महानगरी में वहुत अधिक है. यहां ३२ संघ बने हुए हैं। महा संघ के प्रमुख एक रोज आये थे गिज्जुभाई, डाक्टर छाडवा साहब भी संघ प्रमुख हैं। संघ के अगुवा के नाते इस संस्कृति को आगे वढाने का इनका कर्तव्य है। ३२ संघो में से और भी कुछ आये थे। श्रमण संस्कृति बहिन आप सभी प्रमुखों को रक्षा बांध रही है और कह रही है कि वीरा हमारी रक्षा करो. बंबई महासंघ के सभी संघो के प्रमुख यदि इस संस्कृति के लिए अपना कर्तव्य संभाले, तो सहज ही इसकी सुरक्षा हो सकती है। आज पाश्चात्य संस्कृति, भौतिकवादी–अवसरवादी राक्षसी प्रवृत्ति इस संस्कृति को तहस नहस कर रही हैं। महासंघ के नेता यदि कान में तेल डाल कर सोते रहे, तो क्या स्थिति होगी, यह तो समय बतायेगा क्या कहुं. हुमायूं, जाति का मुसलमान था। लेकिन जाति भाइयों से लडने गया था और धर्म बहिन की रक्षा की थी। क्या महासंघ के महानुभाव ईस संस्कृति की रक्षा करने के लिए आगे आयेंगे। मैं जिस रोज यहां आया था उस रोज भी मैंने आप लोगों को आगाह किया था, शायद उस समय उनके मन में विशेष हलचल नहीं हुई। इस संस्कृति की रक्षा के लिए आप पर उत्तरदायित्व है. अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वहन नहीं किया तो क्या पता क्या स्थिति बनेगी.

अभी तो आपको कुछ वाह वाही प्रसिद्धि मिल जायगी कि हमारे अध्यक्ष अच्छे हैं. लेकिन वह वाहवाही टेंपरेरी है, यह रिश्वत है। रिश्वत दे कर संस्कृति को नीचे गिराने का प्रयास है। आप हुमायूं की तरह इस संस्कृति की रक्षा करें. यह बहिन राखी बांधती है तो भाई प्राण एवं यश किर्ति की परवाह नहीं करके रक्षा करता है.

मैं इस महानगरी के प्रतिनिधियों के माध्यम से सारे हिंदुस्तान के जैन समाज को संबोधित कर रहा हूं. वह चिंतन मनन करें और निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की रक्षा करने के अपने कर्तव्य में सक्रिय बनें. प्रमुख को बहुत कुछ ध्यान रखने की आवश्यकता है। मैं समझता हुं कि यहां पर महासंघ के प्रमुख नहीं- बोरीवली संघ प्रमुख डाक्टर साहब आये हुए है। मैंने भावनगर में इनके विचार सुने थे. रतलाम में भी दीक्षाओं के प्रसंग पर उपस्थित हुए थे। इन्हें निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति से प्रेम है। अतः इनके माध्यम से मैं सभी को संबोधित कर रहा हूं।

डाक्टर साहब गरीजों को रोजाना संभालने की कोशिष करते है। लेकिन उन पर शरीर का ही उत्तरदायित्व नहीं है, उन परऔर भी अधिक ऊत्तरदायित्व है। जिनको आप वंदनीय पूजनीय मानते है उनको आप सम्मान के साथ उपर रखें और उनसे कहें कि आप अपनी मर्यादा के अनुसार सीमा में रहें, बाकी काम हम करेंगे जैसे शरीर का काम करते हैं वैसे ही आध्यात्मिक दृष्टि से अपने कर्तव्य का पालन तन मन से करेंगे. डाक्टर साहब के साथ जो दो सज्जन आये हैं उनमें से एक प्रिंसिपल और एक प्रोफेसर हैं. ऐसी स्थिति में यह कार्य और भी सुगम हो गया। भारतीय संस्कृति के प्रति उनका भी उत्तरदायित्व है, कालेज में पढने के लिए आनेवाले बच्चों के अंदर उनकी रग रग में संस्कृति के अनुरुप भाव भरें! ऐसी संस्कृति आपको दुनिया में और कहीं नहीं मिलेगी। यदि आपको शांति की श्वांस लेनी है तो इसी की शरण में आना पडेगा पाश्चात्य संस्कृति में पलनेवाले उच्चस्थिति के वैज्ञानिक भौतिकवाद को गौण करके आध्यात्म की ओर बढ रहे है. रुस के बहुत बडे वैज्ञानिक फायदो ने अपने मन के जरिये मन के संदेश का संप्रेशन १५०० मील की दूरी पार बैठे मनुष्य के मन में तरंगित किया. आगे चल

कर यदि यह रफतार बढी तो यह मनोविज्ञान–टेलिपेथी वेतार, टेलिफोन टेलिविजन आदि सब को पीछे छोड देगा. भारतीय संस्कृति में बढनेवाले वैज्ञानिकों को भी आगे बढना है या नहीं ? पाश्चात्य संस्कृति में पलनेवाले वैज्ञानिक खोज करते करते यहां तक पहुंचे हैं। यदि उनका संतुलन ठीक चला तो नास्तिक कहलाने वाले कैसे आगे बढ जायेंगे ? आस्तिक कहलानेवाले यदि कान में तेल डाल कर सोये रहे तो सोते ही रह जायेंगे । संत लोग कभी कभी उदाहरण देते हैं ।

एक पुरुष अपनी वीरता और सजगता की डींग हांका करता था । मैं ऐसा हूं । वैसा हूं । उसकी पत्नी भी उसकी तारीफ किया करती थी । एक रोज उसके मकान में चोरोंने प्रवेश किया । उसकी पत्नीने कहा "पति देव, मकान में चोरों ने प्रवेश कर दिया है ।" पतिने कहा उनको प्रवेश करने दो मैं जग रहा हूं । सावचेत हूं । "पत्नीने कहा–" पति देव, चोर अपना माल और सामान उठा रहे हैं । "उसने कहा "उठाने दो मैं जागृत हूं ।" पतिदेव वे सामान उठाकर जा रहे है । "जाने दो, मैं सावधान हूं । वे सामान ले कर चले गये ।" जाने दो मैं सावधान हूं । इस बहादुरी और सावधानी सें क्या रहा । कहीं यही स्थिति तो समाज के कर्णधारों की नहीं है ? क्या संस्कृति लुप्त हो जायेगी तभी वे उठेंगे ? नहीं ऐसा नहीं होना चाहिए, पानी आने से पहले पाल बांध लेनी चाहिए ।

इस संस्कृति की रक्षा कैसे होगी ? इसका उत्तरदायित्व सब पर है । कालेज के प्रिंसिपल और प्रोफेसरों पर तो और भी अधिक दायित्व है । वे युवा पीढ़ी को संस्कारित करें । आज युवकों एवं बालकों की क्या स्थिति है ? वे किस दिशा में जा रहे है । उनमें किन संस्कारों की आवश्यकता है ? यह अतीव विचारणीय विषय है । यदि हम अभी से संस्कारों की दृष्टि से सावधान नहीं होंगे तो

आनेवाले समय में हमारी संस्कृति की रक्षा बहुत मुश्किल हो जायेगी। मैं आशा करता हूं कि वे लोग अपना कर्तव्य सोचेंगे। समय की दृष्टि से समाज प्रमुखों को सावधान होना चाहिए।

मैं रक्षा बंधन के प्रसंग से बात कह रहा हूं। यह पर्व भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। इसको अंतर हृदय से समझें, यह बाहरी धागा केवल धागा ही नहीं है, इसका गौरवपूर्ण इतिहास है। इसको हम समझ कर चलेंगे तो जीवन मंगलमय बन सकता है।

मैं भी भारतीय निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का एक अनुयायी हूं। मेरा कर्तव्य है, मेरे भाई और साथियो को मित्रवत् सही मार्ग दर्शन देना, इस बारे में बहुत कुछ कह गया हूं। कालेज के प्रिंसिपल, प्रोफेसर, विद्यार्थी ये सब जनता का प्रतिनिधित्व ले कर चलते हैं। समाज के जो मुखिया है। जन सेवा, समाज सेवा करने वाले जो भी हैं, उन सबको अपने अपने स्थान पर रहते हुए ठीक तरह से चिंतन मनन करने की आवश्यकता है।

महासती कस्तूरकंवर जी तप के द्वारा अपनी आत्म शुद्धि करने में लगी हुई है। उनके परिवार के सभ्य भी आ गये हैं। अमरमुनि जी के पांच भ्राता है उनमें से उनके दो बडे भ्राता यहां आये हैं। अमर मुनि जी के पुत्र और पौत्र जो महासती जी के संसार पक्ष के पुत्र और पौत्र है वे भी आये हैं। इनके परिवार के लगभग १३ सभ्य परिवार से निकल कर इस पवित्र मार्ग पर लगे हैं। महासती जी के आज ४७ तपस्या है। इन्हीं के परिवार की दूसरी महासती के ३० की तपस्या है। अन्य संत संतियों की भी तपस्या चल रही है। इसी तरह से भाई बहिनों के भी तपस्या चल रही है। तपस्याएं आत्मशुद्धि के लिए चल रही है न कि किसी राजनीतिक

मांग के लिए । आप भी इस तपोत्सव में सम्मिलित हो कर इतना तो अवश्य करे कि निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का अवमूल्यन हो ऐसा कार्य नहीं करेंगे । अगर इतना सा संकल्प जागृत हुआ तो समजिये रक्षा बंधन मनाना सार्थक हो जायेगा ।

(इति)

दिनांक ११-८-८४
बोरीवली, (पूर्व) बंबई

परिशिष्ट (१)

卐

समाधान

卐

रविवार के प्रश्नोत्तर

अध्यात्म संबंधी युगीन जिज्ञासाओं के तर्क संगत समाधान समता विभूति समीक्षण ध्यानयोगी धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. द्वारा.

—संपादन

दो शब्द

जिज्ञासा मानव मन का केंद्रीय भाव हैं। विश्व के नूतन एवं पुरातन समस्त तत्वों–पदार्थों–दृश्यों एवं विभिन्न क्रिया कलापों–विधि विधानों को देखकर प्रत्येक चिंतन शील प्राणि के मानस में सहज संख्यातीत जिज्ञासाएं प्रादुर्भूत हो जाती हैं कि ऐसा क्यों होता है? यह सब किस लिए–किस प्रकार के हैं? इनका उद्देश्य क्या है, आदि.

उसमें भी अध्यात्म जगत तो जिज्ञासा का केंद्र ही है, चूंकि अध्यात्म दर्शन अथवा अध्यात्म शास्त्र हमें जीवन की चली आ रही रूढ़ परंपराओं से एक अलग ही–स्वस्थ दिशा की ओर गति देता है, अतः उसके विषय में अधिक जिज्ञासाओं का उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है.

जीवन स्वयं ही एक जटिल पहेली है, उसमें भी अध्यात्म–दर्शन तो सामान्य जनमानस की पहुंच से दूर होने के कारण जटिलतम पहेली बना ही हुआ है, फिर इसके सूक्ष्मतम विधि–विधान आज के आम व्यक्ति की समज में जल्दी से नहीं आते हैं, विज्ञान की नूतन आविष्कृतियों ने तो अध्यात्म साधना एवं पुरातन मान्यताओं पर बड़े–बड़े प्रश्नवाचक चिह्न खड़े कर दिये हैं.

ऐसी स्थिति में यह नितांत आवश्यक है कि कोई अध्यात्म दर्शन का तल स्पर्शी अध्येता एवं गूढ़ व्याख्याता आज के युवा मानस में स्फूरित होने वाली विविध आयामी जिज्ञासाओं का तर्क संगत ही नहीं, विज्ञान सम्मत समाधान प्रस्तुत कर धर्म से विचलित होती हुई इस नई पीढ़ी को अध्यात्म की स्वस्थ दिशा प्रदान करें.

अतीव हर्ष का विषय है कि भारतीय दर्शनों के उच्च कोटि के विद्वान एवं प्रखरतम वाग्मी समता–विभूति जैनाचार्य श्री नानालाल जी म. सा. ने इस विषय में पहल की है, आचार्य प्रवर ने अपने बंबई आगमन के दिवस ही जिसमें बंबई महासंघ के अध्यक्ष आदि गण मान्य सज्जन उपस्थित थे, स्वागत समारोह के उत्तर देते हुए

स्पष्ट शब्दों में उद्‌दीष किया था कि मैं बंबई महानगरी में समाज के प्रबुद्ध चेता कर्मठ बुद्धिजीवियों से संपर्क का दृष्टि कोण भी लेकर आया हूं, बंबई महासंघ ख्याति प्राप्त संघ है, यहां के कार्यकर्ता बुद्धिजीवी है, वे खुले दिल दिमाग से समाज उत्थान एवं श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के संदर्भ में खुलकर चर्चा करें और शुद्ध सैद्धांतिक धरातल पर भावात्मक एकता के प्रयास करें, इस आव्हान को सातत्य प्रदान करने हेतु आचार्य श्री ने बंबई महानगरी के समस्त अध्यात्म प्रेमी बुद्धिजीवियों को खुला आव्हान किया है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की जिज्ञासा लेकर उपस्थिति हो, उसे तर्क संगत समाधान देने का प्रयास किया जायेगा, और रविवार दि: ५ एवं 22-7-84 को प्रश्नोत्तरी का कार्यक्रम प्रातः 9-30 से 11-30 बजे तक आयोजित किया गया, उन्हीं प्रश्नोत्तरों के संकलन-संपादन का यह विनम्र प्रयास है।-

शांति मुनि

15–7–84
बोरीवलि

प्रश्न. 1.: जिज्ञासु श्री पन्नालालजी चोरडिया:

कच्चे पानी में असंख्य जीव बताये गये हैं, किंतु धोवण पानी और गर्म पानी में जीव नहीं होते–यह कैसा माना जाये?

उत्तर: प्रश्न बहुत सुंदर और व्यावहारिक है, इसे हर व्यक्ति को समझने की आवश्यकता है, अतः कुछ विस्तृत उत्तर अपेक्षित है, यह जो पानी बरस रहा है यह सब कच्चा पानी है, तालाब में, नदी में, टैंक में, समुद्र में, कुए में जो पानी है, वह सब कच्चा पानी है, इस कच्चे पानी में असंख्य जीव माने गये हैं, असंख्य शब्द की आगमिक परिभाषा यह है कि जिसकी गिनती नहीं की जा सके, इस कच्चे पानी में एकेंद्रिय जीवों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के जीव भी पाये जाते हैं, एकेंद्रिय असंख्य जीव तो हैं ही, बेइंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, पांच इंद्रियवाले जीव भी होते हैं और लीलन फूलन के जीव भी होते हैं.

कल्पना करिये एक घड़ा कच्चे पानी से भरा हो उसमें उपर्युक्त वर्ग के जीव पाये जाते हैं, एकेंद्रिय जीव इतने कोमल है कि घड़े में एक बार गिलास डालेंगे तो कुछ जीव गिलास के स्पर्श से मर जाते है और सारे पानी को हिलाने, चलाने से भी अनेक जीव मर जाते हैं। पानी के उस घड़े में जितने जीव हैं वे सब नहीं मरे फिर भी उन्हें कष्ट तो हुआ ही, अतः उन सबकी हिंसा का पाप आपको लगा, दुबारा और तीबारा पानी में गिलास डाली या जितनी बार गिलास डाली या हाथ डाला उतना उतना पाप हर समय लगेगा, क्योंकि कच्चे पानी में पुनः पुनः जीवोत्पत्ति होती रहती है.

अब रहा प्रश्न धोवण और गर्म पानी का, इसे अचित पानी कहते हैं. कच्चे पानी के जीव कोमल हैं और उनके साथ–साथ कुछ सख्त चलते फिरते जीव भी हैं, आप कल्पना करेंगे कि कच्चे पानी

में इतने जीव हमें दिखते कहां है, ? किन्तु पानी में अंगुली डाल कर बाहर निकालेंगे तो अंगुली गीली दिखती है, और कुछ नहीं दिखता, लेकिन अंगुली से एक टीपा (बूंद) पानी नीचे आया तो खोज करने वाले वैज्ञानिकों ने सूक्ष्मदर्शक यंत्र लगाकर देखा, उनको सैंकडों जीव नजर आये, उन्होंने उन जीवों की फोटो ली तो 36450 जीव एक बूंद में पाये गये, यह वैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्यक्ष हो गया, यह गणना तो चलते फिरते प्राणियों की है, एकेंद्रिय जीव तो गिनती में ही नहीं आते, ये सभी जीव कच्चा पानी पीने वालों के पैट में जाते हैं, पानी छान कर पीते हैं तो कुछ बच जाते हैं—अन्यथा सभी जीव पीने वाले के पेट में जाते हैं और कई प्रकार की बीमारियां पैदा करते हैं, शरीर में अनेक रोग घर बना लेते हैं, कोई धार्मिक दृष्टि से नहीं समझते हैं तो भी बिना छाने पानी नहीं पीना चाहिए, जब बीमार हो जाते हैं तो डाक्टर कहते हैं कि पानी उबला हुआ पीना चाहिए, मैं जब नोखा में था, वहां पोलियो की बीमारी बहुत फैल गई थी तब सरकार की ओर से घोषणा हुई कि सब उबला हुआ पानी पीएं.

पानी के जीव कोमल होते हैं किसी प्रकार का कठोर या क्षार युक्त स्पर्श होने से वे मर जाते हैं, राख से वर्तन मांजै—पानी से छीये, वेसन, आटा, दूध आदि का स्पर्श होने पर वे नष्ट हो जायेंगे, ऐसी स्थिति में वह पानी अचित हो जायेगा, गर्म पानी करने के लिए पानी को उबालते हैं तो चलते फिरते और दूसरी प्रकार के सभी जीव नष्ट हो जाते हैं, फलतः वह पानी भी अचित हो जायेगा, एक बार तो हिंसा हो गई , पाप लग गया अब उस पानी में गिलास पचास बार भी डालेंगे तो पानी संबंधी जीवों का पाप नहीं लगेगा क्योंकि वह जीव रहित हो जाता है, यहां यह जिज्ञासा हो सकती है कि धावन पानी अथवा गर्म पानी में जीव नहीं रहे, किंतु उसमें हिंसा तो हो ही गई, फिर हिंसा के दोष से कैसे बचा जाय ?

इस जिज्ञासा का समाधान यह है कि धोवन पानी प्रत्येक घर

अर्थादण्ड–सप्रयोजन है, किंतु एक गिलास पानी व्यर्थ में गिरा दिया तो वह अनर्थादंड का अधिक पाप का कार्य हो जायेगा,

प्रश्न 3 (अ) एकेंद्रिय जीवों मारने पर और पंचेंद्रिय जीवों को मारने पर एक सरीखा पाप लगता है या अलग अलग ?

उत्तर : अलग अलग. एकेंद्रिय जीव की हिंसा के पाप में और पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा के पाप में अंतर है.

प्रश्न 3 (ब) : कितना अंतर है ?

उत्तर : संकल्प पूर्वक की जाने वाली पंचेंद्रिय जीवों की हिंसा में महान पाप लगता है, किंतु एकेंद्रिय जीवों की हिंसा में पंचेन्द्रिय जितना पाप नहीं लगता है....इस विषय को समझाने के लिए कुछ विस्तार में जाना होगा, हिंसा का अर्थ है किसी प्राणी का हनन करना, "प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा, ।" जैन दर्शन में दस प्राण बताये गये हैं–पांच इंद्रिय, मन, वचन, काया, श्वासोच्छ्वास और आयु, इन दस में जिस प्राणी के जितने कम प्राण हैं उसकी हिंसा में अपेक्षाकृत उतना कम पाप लगता है। एकेंद्रिय के चार प्राण है और पंचेंद्रिय के दस, अतः एकेंद्रिय की हिंसा में अल्प पाप है और पंचेंद्रिय की संकल्पजा हिंसा में महापाप.

इसे एक व्यावहारिक रूपक से समझें–एक व्यक्ति किसी ग्रामीण को चांटा मार देता है तो उसे क्या सजा मिलेगी ! वह ग्रामीण दो चार गाली दे देगा। किंतु उसी व्यक्ति ने किसी नगर पालिका के चेअरमेन को, मिनिस्टर, चीफ मिनिस्टर अथवा प्राईमिनिस्टर को चांटा मार दिया तो क्या होगा ? उसकी सजा का अनुपात उसी क्रम से बढता जायेगा, यद्यपि उपर्युक्त सभी व्यक्ति मनुष्यत्त्व की दृष्टि से समान है, किंतु उनको योग्यता–प्रतिनिधित्व में बहुत अंतर है। इसी प्रकार जीव–जीव के समान होते हुए भी एकेंद्रिय एवं पंचेंद्रिय की हिंसा में महान अंतर है।

प्रश्न 4 : यदि पंचेंद्रिय जीव की रक्षा करने के लिए असंख्य

छोटे जीवों को मारने का प्रसंग आता है, तो उसको पाप लगा या नहीं ? एक मरते हुए मनुष्य को पानी पिलाया तो क्या होगा ?

उत्तर : पंचेंद्रिय जीव की रक्षा करने के लिए किसी ने अनेक छोटे जीव मार दिये किंतु उसकी भावना पंचेंद्रिय जीव की रक्षा करने की थी–मारने की नहीं. लाचारी वश जो साधन उसने काम में लिए उससे छोटे जीव मर गये. प्रथम तो कल्पना करिये पक्का पानी पिला दिया. रोटी खिला दी. तो इसमें जीव मारने का प्रसंग नहीं आया. कदाचित् किसी ने कुछ पानी पिला दिया, उसमें जीव मर गये, लेकिन पंचेंद्रिय जीव की रक्षा तो उसने की, इसमें उसे अल्प पाप लगा किंतु पंचेंद्रिय की रक्षा का महान लाभ मिला. क्योंकि गृहस्थ में रहने वाले व्यक्ति की आरंभ जनक हिंसा तो खुली ही है. वह हिंसा नहीं कर रहा है तब भी उसके पाप की क्रिया उसे आ रही है. अब यदि उसने उसी लगते हुए पाप में से किसी पंचेंद्रिय की रक्षा कर ली तो पुण्य कमा लिया.

एक छोटा सा रूपक दूं यह बंबई शहर है, इसमें एक व्यक्ति को बंबई में शादी करनी है. शादी ६ महिने बाद होनेवाली है. लेकिन बंबइ में शादी करने लायक सार्वजनिक स्थान जल्दी से नहीं मिलते है । इसलिए उस व्यक्ति ने देखा कि ६ महीने पहले ही, आज जो मकान मिल रहा है उसका बुकिंग कर लूं, यह सोच कर उसने शादी लायक मकान किराये पर ले लिया । उसका किराया चार हजार या पांच हजार जो कुछ भी था, जिस रोज बुकिंग कराया उसी रोज से चालू हो गया.

इसी बीच उसके पड़ोसी ने आकर उससे कहा कि आपके बच्चे की शादी तो ६ माह बाद होनेवाली है, मेरी लड़की की शादी कल ही है और दूसरा मकान मिल नहीं रहा है आप कृपा करके आप द्वारा किराये पर लिया हुआ मकान दो दिन के लिए मुझे दे दीजिए.

आपने दया करके, शुभ भावना रख कर या उसका प्रेम संपादन करनेके लिए दो रोज के लिए पड़ोसी को मकान दे दिया.

तो आपको इसके लिए नया किराया नहीं देना पड़ा. उसी चालू किराये में आपने पड़ोसी का प्रेम संपादित कर लिया.

अब कल्पना करिए कि दो रोज तो वे निकल गये और शेषकाल में कोई महात्मा इधर पधार गये, दूसरे मकान की स्थिति नहीं थी. संघ के मुखिया व्यक्ति, जो आपके साधर्मी थे उन्होंने आपके पास आ कर कहा कि कोई महात्मा पधार रहे हैं उनको ठहराने के लिए तथा हमारे धर्म की आराधना के लिए २९ रात्रि के लिए आपका चाहिए. आपने धर्म कार्य के लिए महीने भर के लिए मकान उनको दे दिया, तो क्या आपको नया किराया लगा ? नहीं लगा. और आपने धार्मिक लाभ उठा लिया.

अब ऐसी स्थिति आ गई कि स्थिति आ गई कि एक बड़े आचार्य का चातुर्मास यहां खुल गया. संघ के प्रमुख लोग फिर आपके पास आये और कहने लगे कि संतो का चौमासा कराना है– चार महिनों के लिए मकान दीजिए। आपने संतों के लिए मकान दे दिया। आपका किराया चालू ही था।

अब सोचिये उसी चालू किराये में आपने पडोसी का प्रेम संपादित कर लिया, शेष काल में संतो को ठहराने का लाभ ले लिया, और संतों का चातुर्मास करवा कर साधर्मी भाईयों को खुश भी कर दिया.

वैसे ही गृहस्थाश्रम के व्यक्तियों के लिए भगवान् ने अहिंसा व्रत में बताया है– निरपराधी, निरपेक्ष चलते फिरते प्राणी की संकल्प पूर्वक हिंसा नहीं करना जो। व्यक्ति आपका अपराध नहीं कर रहा है, निर्दोष है उसको नहीं मरना। वैसे ही पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय के छोटे छोटे जीव, खेती करते हैं तो खेती करने में मरनेवाले जीव, अनजान में मर जाते हैं तो उनकी हिंसा आपके लिए खुली है– जैसे चालू किराये का चक्का चालू है उसी तरह से छ काय के जीवों की हिंसा चालू है. उसी चालू हिंसा में यदि आपने मरते हुए मनुष्य को पानी

पिलाया तो आपकी हिंसा तो चालू है वही है। कच्चे पानी की हिंसा चालू थी ही, लेकिन उस पंचेंद्रिय जीव की रक्षा करने का अतिरिक्त लाभ हो गया. नये सिरे से हिंसा नहीं हुई. अभी आप यहां बैठे हैं कुछ भी काम नहीं कर रहे हैं फिर भी आपको हिंसा लग रही है. विवेक करके त्याग करते तब तो बात अलग थी- जितनी हिंसा खुली है उसका पाप आपको लगता ही है। अतः पानी पिलाने में नयी हिंसा का पाप नहीं लगा।

प्रश्न 5. जिज्ञासु कमल खिवेसरा :

साधु सचित नहीं ले सकता-किंतु दीक्षा देते समय सचित शिष्य को कैसे ग्रहण करते हैं ?

उत्तर : सचित-सचित में अंतर है. एक सचित ऐसा है. जिसके हाथ लगने से वह मर जाता है. दूसरा हाथ लगने से कष्ट पाता है. एक ऐसा है, जो हाथ लगने से आनंद का अनुभव करता है. समझ लीजिए आप सचित हैं- आप यह समझते होंगे प्रणाम करने पर पिताजी आपके सिर पर हाथ रखें तो आप खुश होंगे या नाराज होंगे ? जो खुशी का कार्य है उससे वर्ष होता है. अब रहा सवाल साधु बनने का. साधु कौन बनता है ? जो अपना आत्म कल्याण करना चाहता है वही गुरु के पास पहुंचता है या जबर्दस्ती किसी को बुलाया जाता है ? जो दीक्षा लेना चाहता है उसको जब तक दीक्षा नहीं दी जाती तब तक वह मन ही मन दुखी होता रहता है. दीक्षा पचकाने पर प्रसन्न हो जाता है. जो संसार में रहेगा वह अनंत अनंत जीवों का संहार करेगा। दूसरी बात, जब तक उसके संरक्षको की आज्ञा नहीं होती तब तक उसे दीक्षित नहीं किया जाता है. संरक्षक कहते हैं कि इसे आप अपने चरणों में ग्रहण करो, तभी उसे अहिंसक सेना में भर्ती किया जाता है। वह हाथ लगाने से अत्यंत प्रमोदितो होता है. अतः दीक्षा देकर सचित शिष्य को ग्रहण करना हिंसा नहीं, अहिंसा की उच्चत्तम आराधना है.

प्रश्न 6. जिज्ञासु महेंद्र जी मेहता :

ज्ञान बड़ा है, फिर क्यों पुरुष साधु ऊपर बैठता है और साध्वियां नीचे बैठती हैं, जब कि कई साध्वियां कई साधुओं से अधिक 'विद्वान' होती हैं ?

उत्तर : ज्ञान दो तरह के हैं—एक भौतिक ज्ञान और दूसरा आध्यात्मिक ज्ञान, इस आध्यात्मिक ज्ञान के भी दो प्रकार हैं—एक चारित्र के साथ परिपक्व हुआ ज्ञान और दूसरा बिना चारित्र के केवल मस्तिष्क से—बुद्धि से होने वाला ज्ञान. संभव है, एक विद्वान में ज्यादा हो ! एक दिन के दीक्षित साधु में उतना ज्ञान नहीं होता, किंतु एक गृहस्थ में रहनेवाला विद्वान 32 शास्त्रों का ज्ञान साधु को करवाता है, तो क्या वह साधु उस पंडित को नमस्कार करेगा अथवा अपने से ऊपर बिठायेगा ? क्यों नहीं बिठायगा ? जब कि ज्ञान बड़ा है ? इसलिए नहीं बिठायगा कि वह चरित्र संपन्न नहीं है । आचरण से बड़ा-छोटा होता है. आचरण में भी विवेक हो लेकिन आचरण ऊंचा और ज्ञान नीचा होने पर भी जिसका पद ऊंचा होता है उस दृष्टि से उस व्यक्ति को महत्व दिया जाता है,

आप कल्पना करिये कि एक पुरुष भतीजे के पद पर है और एक पुरुष चाचा के पद पर है. चाचा के पद पर रहनेवाला 10 वर्ष का है—उसमें विवेक नहीं, ज्ञान नहीं, भतीजा 25 वर्ष का है सामायिक, प्रतिक्रमण जानता है, आचरण की दृष्टि से भी भतीजा बड़ा है लेकिन नमस्कार कौन करेगा ? भतीजा करेगा. क्यों दूसरा काका के पद पर है ! पद की दृष्टि से नमस्कार होता है और उसी दृष्टि से ऊपर नीचे बैठने का प्रसंग आता है,

दूसरा उदाहरण लें—एक बहू करीब 50 वर्ष की है और 35 वर्ष की अवस्था में उसने शील व्रत ले लिया है, पति पत्नी भाई बहन की तरह रहते हैं. वह खूब तपस्या करती है. उसकी सासू जी 60 या 62 वर्ष की है. सासु जी काल कर गई. ससुरजी से रहा नहीं गया, इसलिए 16 वर्ष की लड़की के साथ शादी कर ली. वह 16 वर्ष की

बहिन कुछ नहीं जानती है. मूर्ख है, क्योंकि ऐसे बुड्ढे को तो वैसी ही स्त्री मिलेगी. शादी करके ससुरजी उसको घर में ले आये. अब कौन पगे लगेगी या नमस्कार करेगी ? वह तो इतनी ज्ञानवान और चारित्र संपन्न है तथा उम्र में भी बड़ी है किंतु फिर भी उम्र में छोटी सास के पगे लगेगी, क्योंकि सास का पद बड़ा है.

एक पिता के पहले पुत्र का जन्म हुआ फिर पुत्री का फिर पुत्र का और फिर पुत्री का तो बड़ा कौन हुआ ?

कल्पना करिये भगवान महावीर हम सबके पिता हैं, उन्होंने चार तीर्थों की स्थापना की. सबसे पहले उन्होंने साधु पुत्र को जन्म दिया और बाद में साध्वी को, फिर श्रावक को और उसके बाद श्राविका को. इस दृष्टि से साधु बड़ा हुआ इसलिए साध्वियां चाहे ज्ञान में बड़ी हैं, चारित्र में बड़ी हैं, लेकिन भगवान ने पहले साधु को जन्म दिया. इसलिए साधु ऊपर बैठते हैं. पद संबंधी विवेचन में एक और उदाहरण लीजिये । पांच सौ या हजार साधु हैं, जो एक आचार्य के नेतृत्व में हैं–सभी उनकी आज्ञा में चलते हैं, वे आचार्य उन सभी संतों पर दृष्टि डालते हैं; कि कौन उनका उत्तराधिकारी आचार्य बनने योग्य है. कई पुराने साधु हैं जो 50–60 वर्षों से संयम पालन कर रहे हैं, फिर भी उनमें से एक भी साधु उनका उत्तराधिकारी बनने योग्य आचार्य की दृष्टि में नहीं आया. एक साधु एक दिन का दीक्षित है—आचार्य ने देखा कि यह योग्य है. हालांकि ज्ञान में औरों से कम है. लेकिन ज्ञान तो सीख लेगा. आचार्य पद की क्षमता इसमें है, इसलिए उसको अपना उत्तराधिकारी बना लिया. अब आप ही बताइये हजार साधुओं में बड़ा कौन हो गया ? यहां योग्यता के साथ पद का महत्त्व होता है ।

अमेरिका की एक बहुत बड़ी महिला जिसकी ख्याति दुनियां में है. उसने कहा है कि बहिनों को पुरुषों के समान अधिकार की बात नहीं सोचनी चाहिए. पुरुष का हमसे ज्यादा असर है. चाहे वह अर्थ की दृष्टि से समान हो सकती है. लेकिन शरीर की संरचना की दृष्टि

से नारी का स्थान पुरुष से दूसरा है. यह आज की पढी लिखी महिला का कथन है.

पशु जगत में भी बंदरों का टोला होता है, वह एक नर बंदर, जो उनका लीडर होता है, उसके अंदर में रहता है और उसका अनुशासन मानता है. यह कुदरत की संरचना है. इसी प्रकार शारीरिक दृष्टि से भी स्त्री को द्वितीय स्थान ही प्राप्त होता है. नारी पर बलात्कार हो सकता है. पुरुष पर नहीं. क्योंकि उनकी शरीर रचना ही दूसरी प्रकार की है. ऐसे अनेक दृष्टियों से यह सिद्ध होता है कि नारी को द्वितीय स्थान ही प्राप्त होता है.

प्र. 7 : जिज्ञासु प्रीति घाडीवाल :

प्रतिक्रमण का सार इच्छामि ठामि है, ऐसा क्यों ?

उत्तर : देखिये यह प्रश्न कॉमन नहीं है, सबकी समझ में आये जैसा नहीं है, लेकिन धाड़ीवाल ने पूछ लिया इसलिए मैं संक्षिप्त उत्तर दे रहा हूं. प्रत्येक क्षेत्र में विस्तार का संक्षिप्तिकरण होता है. दस नींबू का रस कितना होता है और सत्व कितना होता है ? तो जो विशाल होता है उसका संक्षिप्त रूप अवश्य होना चाहिए. प्रतिक्रमण का संक्षिप्त रूप ईच्छामि ठामि में हैं. क्योंकि इस एक छोटी सी पाटी में वह पूरा सार भर दिया है, जो पूरे विस्तृत प्रतिक्रमण में आता है.

प्रश्न 8. जिज्ञासु श्री सूरजमलीजी :

श्रावक के लिए भोजन का सिद्धांत क्या महत्व रखता है. श्रावक का भोजन कैसा होना चाहिए 2

उत्तर : श्रावक के लिए सात्विक भोजन होना चाहिए. सात्विक भोजन का तात्पर्य यह है कि महापाप का भोजन नहीं होना चाहिए. पंचेंद्रिय की घातवाला भोजन–मांस, माछली, अंडा आदि महापाप का भोजन है. यह श्रावक के लिए कतई अभिष्ट नहीं है, लेकिन जो अल्प पाप की स्थिति का प्रसंग है, श्रावक के लिए विशेषण है....वह अल्पा-

रंभी, अल्प परिग्रही होता है-खेती करनेवाला श्रावक अल्पारंभी होता है. श्रावक अपने जीवन निर्वाह के लिए कभी खेती भी करता है. आगम में उल्लेख है कि आनंदजी के पास 500 हलवा जमीन थी. एक हलवा में ढाई बीघा जमीन होती है, अतः वे 1250 बीघा जमीन में खेती करते या करवाते थे. खेती या वनस्पति से संबंधित आहार श्रावक के लिए निषिद्ध नहीं है. श्रावक मांस, मछली, अंडा आदि हिंसक एवं तामासिकता से रहित सात्विक आहार ग्रहण कर सकता है. इसमें यह विवेक भी आवश्यक है कि श्रावक का भोजन यथा शक्ति नैतिकता से उपार्जित हो.

प्रश्न. 9 : जिज्ञासु श्री धीरज कोठारी :

आज की दुनियाचांद या चंद्रमा से भी आगे जा रही है, तो आपने माइक पर बोलना क्यों वर्जित किया-आप माइक का प्रयोग क्यों नहीं करते ?

उत्तर : माइक के बारे में मैंने व्याख्यान में समझा दिया था. भाई कोठारी ने पुनः वही प्रश्न उठाया है-मैं बहुत खुश हूं, इसलिए कि युवकों में चेतना आई है.

भगवान ने दो तरह के मार्ग बताये-एक साधु मार्ग और दूसरा गृहस्थ मार्ग. गृहस्थ में रहनेवालों को पूर्ण हिंसा का त्याग नहीं है. उनके लिए निरपराध निरपेक्ष चलते हुए जीवों को संकल्प पूर्वक नहीं मारना, नहीं मरवाना, हिंसा का इतना ही त्याग.

लेकिन हमारे साधु जीवन के लिए भगवान ने निर्देश दिया है कि तुमको छोटे से छोटे और बड़े से बड़े जीव की हिंसा करनी नहीं, करानी नहीं और हिंसा करनेवालों को अच्छा समझना नहीं, मन से, वचन से और काया से । हमारे लिये कोई हिंसा खुली नहीं है । छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा जीव हमारे प्राण तुल्य है, आपेक्षिक दृष्टि से वह हमारे परिवार का सदस्य है चाहे वह पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल या वनस्पति का जीव हो. परिवार का सदस्य छोटा हो या बड़ा उनमें भेद की बात नहीं होती.

माइक बिजली से चलता है और बिजली में अग्निकायिक जीव होते है, उनका हनन हमारे लिये वर्जित है. केवल उपदेश सुनाना ही साधु जीवन का लक्ष्य नहीं हैं. उपदेश सुनानेवाले बहुत से लोग मिलेंगे. आपमें जो विद्वान है, वे भी अच्छा भाषण दे सकते हैं. लेकिन समस्त प्राणियों को बचा कर चलने की साधना आपकी नहीं हो सकती. बिना माइक के साधु थोडे ही लोगों को उपदेश सुनायेगा, लेकिन जितनों को सुनायेगा वह महत्वपूर्ण होगा.

मेरा रायपुर में चातुर्मास था. उस समय तोलारामजी भूरा, जो दीपचंदजी भूरा के बडे भाई थे—दर्शनार्थ रेलगाड़ी में बैठकर आ रहे थे. रास्ते में एकविदेशी—रसियन सज्जन ने उनसे पूछा कि कहां जा रहे हो? तो उन्होंने कहा कि महात्माजी के दर्शनार्थ रायपुर जा रहे है. उसने फिर पूछा कि आपके साधु कैसे होते है? उन्होंने साधुओं के बारे में विस्तार से बताया उस विदेशी भाई ने कहा कि क्या कोई मनुष्य इस तरह का जीवन बिताता हुआ जिंदा रह सकता है? तोलारामजी भूरा ने कहा कि जिंदा है, तभी तो हम उनके दर्शन करने जा रहे है.

यदि ऐसा कोई भी व्यक्ति 24 घंटे ऐसे साधुओं के पास आ कर रह जाय, साधु चाहे मौन रहे, लेकिन साधु के पास रहने से उस पर जो प्रभाव पड़ेगा, वह उपदेश से नहीं.

मान लीजिए आपने उपवास पचक लिया है और साधर्मी वात्सल्य का भोजन है, जिसमें करीब दस हजार लोग जीमने के लिए आये है। किसी कारणवश उनको शंका हो गई कि इस भोजन सामग्री में पॉइजन—जहर है, इसलिए लोग कहने लगे कि हम नहीं जीमेंगे, जीमानेवाला कहता है कि आप जीमिये. अंत में वे सहमत हो जाते हैं; किंतु उनकी एक शर्त है, वह यह कि धीरज भाई कोठारी भोजन करें तो हम भी भोजन कर लेंगे. वह नहीं जीमते हैं तो हम सब भूखे जायेंगे. तो क्या आप जीम लेंगे और दस हजार लोगों को जीमा देंगे ?

श्री धीरजभाई : हां, जीम लूंगा.

आचार्य श्री : उस समय कोई आपसे पूछे कि आपके तो उपवास है—फिर आप भोजन कैसे कर रहे है? तो आप नैतिकता के नाते कहेंगे कि उपवास तो था लेकिन उपकार के लिए तोड़ दिया. गृहस्थ का उपवास वृक्ष के पत्ते के तुल्य उत्तरगुण है लेकिन महाव्रत मूल के तुल्य है. आपने पत्ते को तोड़ दिया. वह फिर आ सकता है किंतु किसी ने मूल महाव्रत को तोड़ दिया और यदि कोई उससे पूछे कि आप महाव्रत धारी महात्मा है ? तो वह क्या उत्तर देगा ? उसकी नैतिकता का तकाजा क्या है ? क्या वह अपने आपको पंच महाव्रत धारी कह सकेगा ? यदि वह कहता है कि मैं पंच महाव्रत धारी हूं तो नैतिकता का अनुपालन आपने अधिक किया या उसने ? इस विषय में आप स्वयं निर्णय दें। यदि माइक आदि साधनों के प्रयोग से हमने अपने मूल महाव्रतों को खंडित कर दिया, तो हम साधु कहलायेंगे ? या प्रचारक ? यदि हमें साधु कहलाना है तो ईमानदारी से महाव्रतों का पालन करना होगा. अब आप ही निर्णय दीजिए कि हमे प्रचार हेतु विद्युत के साधनों का उपयोग करना चाहिए या नहीं ? धीरज—"नहीं, अब मैं अच्छी तरह समझ गया हूं."

प्रश्न. 9 : व. जिज्ञासु एक अन्य व्यक्ति :

आप प्रायश्चित्त ले सकते है.

धीरज—बीच में ही—यह कैसा प्रायश्चित्त ?

आचार्य श्री : इन भाई का प्रश्न है कि माइक पर बोल कर प्रायश्चित्त ले लें. यदि हम अपने मूल को तोड़ कर प्रायश्चित लेंगे, तो उसका प्रायश्चित्त होगा, फिर से साधु बनें. जैसे वृक्ष के मूल से उखड़ जाने पर पुनः नया वृक्ष लगाना पड़ता है.

ये बंधु कह रहे हैं कि परोपकार के लिए व्रत तोड़ देना चाहिए, प्रायश्चित्त ले लेना चाहिए, किंतु यह स्मरण रहे कि परोपकार के लिए व्रत नहीं तोड़ा जाता है. कदाचित परोपकार के लिए व्रत तोड़ दिया

गया तो हमें यही तो कहना पड़ेगा कि अब हमारे अहिंसा व्रत नहीं है. जैसे किसी के पास एक लाख रु. थे, उसने उनका परोपकार में दान कर दिया. अब वह अपने को लखपति नहीं कहेगा. कल मैंने सरकारी मूल्य सूची तोड़ने का उदाहरण दिया था. इस तरह से मूल्य सूचि तोड़ने पर सरकार भी माफ नहीं करती तो मूल व्रत तोड़ने पर क्या भगवान हमको माफ कर देंगे? क्योंकि महाव्रत की साधना भगवान महावीर के द्वारा निर्दिष्ट साधना पद्धति की मूल्य सूचि के रूप में है. उसका अवमूल्यन करने का हमें कोई अधिकार नहीं हैं. कोई व्यक्ति मूल्य सूचि को तोड़ कर उसकी आय को परोपकार में भी क्यों न लगाता हो, सरकार उसे क्षमा नहीं करेगी, ठीक यही स्थिति हमारी साधना की है. परोपकार की दृष्टि में मर्यादाओं के भंग की अनुमति हमारी साधना पद्धति नहीं देती है. यदि मुनि जीवन का उद्देश्य प्रचार प्रसार का ही होता तो प्रभु महावीर के सैंकड़ो शिष्य वैक्रियलब्धि के धारक थे. प्रभु उनसे कह कर चमत्कार दिखाकर प्रचार करवा सकते थे. किंतु प्रभु ने ऐसा नहीं किया क्योंकि वैक्रियलब्धि का प्रयोग विद्युत जैसा हिंसक नहीं होते हुए भी मुनि के लिए निषिद्ध माना गया है। जब तक आप लोगों को मुनि मर्यादाओं का ज्ञान नहीं है. तब तक तो आप कह सकते हैं किसी भी साधनों का उपयोग करके प्रचार-प्रसार करना चाहिए, किंतु ज्यों ही आपको साधु चर्या के नियमों का ज्ञान होगा, आप खुद ही कहेंगे—"महाराज अपने महाव्रतों में ब्लेक करके उपदेश दे रहे हैं." ऐसी स्थिति में हमारे कथन का आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा.

इसी संदर्भ में एक बात और समझ लें—साधक के व्यक्तित्व का जो प्रभाव होता है, वह उसके वक्तृत्व का नहीं. यदि हमारी मर्यादाएं स्थिर हैं, तो उनका प्रभाव बिना ही प्रवचन के होगा, किंतु मर्यादाओं को भंग कर उपदेश देने पर वह उपदेश स्थाई प्रभाव नहीं डाल सकेगा.

प्रश्न 10 : रतलाम में इतने लोग इकट्ठे हुए थे, यदि किसी

का बच्चा गुम जाता और माइक पर सूचना नहीं देते, तो क्या हाल होता ?

उत्तर : शायद आपको मालूम होगा कि वहां पर इतने लोग इकट्ठे हुए थे, उनमें से किसी का बच्चा गुम हुआ था क्या ? कदाचित् ऐसा हो जाए तो आप गृहस्थ हैं, खुले हैं सड़क पर कुछ भी करें, हमें क्या आपत्ति है. जिस पांडाल में कार्यक्रम हो, वहां कुछ नहीं होना चाहिए.

प्रश्न 11 : मानव समाज में रहन, सहन, आदि में जैसा परिवर्तन होता है, उसी के अनुरूप धार्मिक नियमों में परिवर्तन करने में क्या आपत्ति है ?

उत्तर : आपने इतिहास पढा होगा–कितने वर्ष पुराना इतिहास मिलता है ? हजारों वर्ष पुराना इतिहास मिलता है. उस समय मनुष्य की स्थिति क्या थी ? आंखें कहां थी ? हृदय कहां था ? जैसे जो शरीर के मूल अंग हैं उनमें परिवर्तन कभी नहीं होता. उसी तरह, जैसा कि मैं अभी समझा चुका हूं, सत्य तीन काल में भी सत्य ही रहेगा. उसमें परिवर्तन नहीं होगा. अहिंसा अहिंसा ही रहेगी, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता. मूल महाव्रतों में परिवर्तन करने पर साधु–साधु न रह कर प्रचारक बन जाएगा । हमारे लिए जो नियम बने हुए हैं उन्हें हमने नहीं बनाया, वे तीर्थंकरों के बनाये हुए हैं. उन मूल नियमों में इतने काल में भी परिवर्तन नहीं आया. यदि हम परिवर्तन करते हैं तो तीर्थंकरों के अपराधी बनते हैं.

प्रश्न 12 : जिज्ञासु (सिलोर की बहिन)
भवी और अभवी को ज्ञान और समकित आती है क्या ?

उत्तर : अभवी अज्ञानी और मिथ्यात्वी है उसे तीन काल में भी सम्यक्त्व नहीं आ सकती है. निकट भवी को ज्ञान और समकित आता है.

प्रश्न 13 : जिज्ञासु अशोक बाफना :

चातुर्मास काल में जो लोग दर्शनार्थ इधर उधर जाते है, तो क्या वे ज्ञान प्राप्त करने जाते हैं ? वहां जाने वालों के द्वारा होने-वाली हिंसा का पाप किसको लगेगा ? क्या संतों को उस हिंसा का पाप लगेगा ?

उत्तर : प्रश्न कुछ मौलिक एवं सामयिक है, अतः कुछ विस्तृत उत्तर दे रहा हूं. जसलोक अस्पताल, बंबई में बहुत बड़ा अस्पताल माना जाता है. वहां पर इलाज कराने के लिए हिंदुस्तान के कोने कोने से रेल द्वारा या यातायात के अन्य साधनों द्वारा लोग आते रहते हैं. उनके आने जाने में जो जीव हिंसा लगती है, क्या वह हिंसा वहाँ के डाक्टरों को लगती है ? नहीं, उन्हें ही जो रोग निवृत्ति के लिए आते हैं. वैसे सभी सांसारिक प्राणियों को आरंभजा हिंसा तब तक लगती रहती है, जब तक वे उसका संकल्प पूर्वक प्रत्याख्यान नहीं कर लेते. अतः आगमिक दृष्टि से हिंसा का दोष तो लग ही रहा था.

आपकी हिंसा जन्म से ही चालू है, चाहे दर्शन करने जावें या न जावें. यदि साधु के दर्शन के लिए जाते हैं, तो दर्शन करने से लाभ ही होता है. जैसा कि भगवती सूत्र में कहा है—

तं महाफलं खलु देवाणुप्पिया. तहारूवाणं थेराणं भगवंताणं नाम-गोयस्स विसंवणयाए, किमंग पुर्ण अभिगमणं—वंदणं—नमंसणं—पडिपुच्छण—पज्जुवासणयाए जावगहणयाए ?

भावार्थ—हे देवानुप्रियो ! तथारूप के स्थविर भगवंतों के नाम गोत्र के श्रवण से भी महाफल होता है, तो उनके सामने जाना, वंदना करना, नमस्कार करना, कुशल समाचार पूछना और उनकी सेवा करना यावत् उनसे प्रश्न पूछ कर अर्थों को ग्रहण करना इत्यादि बातों के फल का तो कहना ही क्या ? इस प्रकार के महाफल के प्रसंग को ध्यान में रखकर अनेकों भव्य प्राणी पंचमहाव्रत धारी संत—महा-त्माओं के नाम—गोत्र सुनकर प्रमुदित होते हैं एवं यथावसर उनके

दर्शन आदि का लाभ प्राप्त कर उनके मंगल वचन श्रवण करते हैं.

वर्तमान के तर्क प्रधान युग में कुछ व्यक्ति यह भी तर्क उपस्थित करते हैं कि संतों के दर्शन को एवं उनकी मंगलमय वाणी को श्रवण करने के निमित्त नहीं जाना चाहिए, क्योंकि आने-जाने की क्रिया में आश्रव होना स्वाभाविक है. अतः संतों के दर्शन आदि के निमित्त से संत सेवा में जाने से महाफल की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उक्त तर्क जिज्ञासा की दृष्टि से योग्य है, पर इस प्रकार की धारणा बना लेना भयंकर भूल है तथा ऐसी प्ररूपणा करना तो उत्सूत्र प्ररूपणा करना है. क्योंकि ऊपर जो भगवती सूत्र का पाठ दिया गया है उसमें स्पष्ट निर्देश है कि-"अभिगमण-वंदणं...." अर्थात उन संत-महापुरुषों के सम्मुख चलें, वंदन नमस्कार करे आदि. श्रावक का कर्तव्य बतलाया गया है इस प्रकार आगमों में स्थान-स्थान पर श्रमण भगवंतों के अभिगमन-दर्शनार्थ जाने के उदाहरण चरितानुयोग में विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं.

भगवान महावीर अथवा उनके पट्टधर प्रथम आचार्य श्री सुधर्मा स्वामी आदि का जब पदार्पण होता, तब नागरिक जन सामूहिक रूप से उनके दर्शनार्थ उपस्थित होते थे. जहां सम्राटों का संत सेवा में पहुंचने का उल्लेख है वहां बतलाया गया है कि वे चतुरंगिणी सेना सहित दर्शनार्थ पहुंचते थे, चतुरंगिणी सेना (हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल) जब चलती थी तब उससे हिंसा होना स्वाभाविक था.

ज्ञाता-धर्म कथांग सूत्र में भगवान ने स्वयं कहा कि....सेणिए राया भिंभिसारे ण्हाए सव्वालंकार विभूसिए हत्थि खंध वरगए सकोरेंट मल्ल दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवर चामरे हय गय महया भड चडगर कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे, मम पाय वंदए हव्वमागच्छइ. तएणं से दद्दुरे सेणियस्स रण्णो एगेणं आस किसोरेणं वामपाएणं अक्कंते समाणे अंत निग्घाइए कएयावि होत्था.... तएणं से दद्दुरे काल मासे कालं किच्चा जाव सोहम्मे कप्पे..."

अर्थात् भंभसार इस अपर नाम वाला श्रेणिक राजा स्नान आदि से निवृत्त हो कर सभी अलंकारों (आभूषणों) से विभूषित हो श्रेष्ठ हस्ती पर बैठ कर कोरंट नामक पुष्पों की माला से शोभित, छत्र को धारण कर भृत्यों द्वारा श्रेष्ठ श्वेत चामर ढोलाये जाता हुआ, हाथी, घोड़े, रथ, पैदल रूप चतुरंगिणी सेना से घिरा हुआ मेरी चरणवंदना के लिए शीघ्र आ रहा था. इधर मेढ़क अपनी तीव्र गति से चल कर आ रहा था, वह श्रेणिक राजा के एक किशोर अश्व के वाम पैर से आक्रांत हो गया जिससे उसकी आंते टूट गयी....यावत् वह मेढ़क काल करके सौधर्म कल्प विमान में..."

इस प्रकार भगवान स्वयं जानते थे कि गमनागमन से हिंसा होती है और उसका उल्लेख भी किया. किंतु दर्शनार्थ उपस्थित होने वाले को यह नहीं कहा कि संत-दर्शन के निमित्त गमनागमन की क्रिया नहीं करनी चाहिए. तथा संतों के दर्शन करने जाने से आने जाने की क्रिया से हिंसा होगी, ऐसा जानते हुए भी राजा-महाराजा चतुरंगिणी सेना के साथ तथा अन्य गणमान्य सज्जन स्वअनुरूप साजसज्जा के साथ संत दर्शन के निमित्त चल कर पहुंचते थे.

इसी प्रकार चक्रवर्ती भरत, वासुदेव' श्रीकृष्ण एवं दशार्णभद्र, कोणिक, जितशत्रु, शतानीक, उदायन आदि बड़े-बड़े सम्राटों का चतुरंगिणी सेना सहित तीर्थंकरों की सेवा में पहुंचने का उल्लेख मिलता है. उपासक-दशांग सूत्र में भी आनंद आदि श्रावकों का तथा भगवती सूत्र में शंख जी आदि श्रावकों का स्वअनुरूप साज सज्जा के साथ प्रभु महावीर के दर्शन करने एवं पर्युपासना करने का वर्णन मिलता है.

इतना ही नहीं, देवगण असंख्य योजनों से उत्तर वैक्रिय करके भगवान की सेवा में पहुंचते थे. उनके गमना-गमन से हिंसा तो होती ही थी तथा वे भगवान के दर्शन एवं पर्युपासना करने के निमित्त से ही उपस्थित होते थे. ऐसा आगम में केवल एक दो जगह ही नहीं, अनेकों स्थलों पर उल्लेख मिलता है. अतः संतों के दर्शन आदि के

निमित्त संतों की सेवा में नहीं पहुंचना, ऐसा मानना आगम से सर्वथा विरुद्ध है.

इसके अतिरिक्त संत किसी से नहीं कहते हैं कि आप हमारे दर्शन हेतु आओ. आप अपनी खुशी से आते हैं. आपके आने से संतों को पाप क्यों लगेगा. जैसे कि जसलोक अस्पताल में आनेवालों का पाप डोक्टरों को नहीं लगता जैसे शारीरिक रोगी अस्पताल पहुंचते हैं वैसे ही मानसिक रोगी और आत्मिक रोगी जानते हैं कि अमुक स्थान पर जायेंगे तो हमको शांति मिलेगी. वे अपनी इच्छा से आत्मिक रोग मिटाने के लिए आते हैं. अतः साधु को पाप नहीं लगेगा. इसी प्रकार दर्शनार्थ आने वालों को भी आरंभजा हिंसा के अलावा धर्म लाभ ही होगा.

प्रश्न 14 : समकित लेने पर एक ही गुरु को आराध्य मानते हैं तो क्या दूसरे संप्रदाय के गुरुओं को नहीं मानना चाहिए?

उत्तर : प्रश्न अध्यात्म से संबंधित है, इसे सैद्धान्तिक दृष्टि से समझना होगा. भगवान महावीर ने हमारे समक्ष प्रत्येक तत्व की परिभाषा रख दी है. हम हर तत्व को उस कसौटी पर कस कर देख सकते हैं. समकित का लक्षण बताते हुए कहा है. अरिहन्तो महदेवो जावज्जिवाए सुसाहुणो गुरुणो। जिण पण्णत्तं तत्तं इअ सम्मत्तं मए गहियं. अर्थात् मेरे देव अरिहंत हैं. सुसाधु निर्ग्रंथ मेरे गुरु हैं. भगवान ने यह परिभाषा दे रखी है. इसको कसौटी बना लीजिए. साधु होना ही पर्याप्त नहीं है. कोई साधु एकाकी रहता है तो क्या करता है. क्या नहीं करता है? कुछ ज्ञात नहीं होता है. जो साधु भी हैं और आचार्य के अनुशासन में नहीं हैं तो पता नहीं वे क्या करेंगे?

सुनने में आया कि मद्रास की तरफ दो साधु आये–उनके जीवन के बारे में किसी को पता नहीं था. यह भी पता नहीं था कि वे किसके शिष्य हैं. वे धीरे धीरे पैसा बटोरने लगे. जब श्रावकों को यह शंका हुई कि ये साधु क्या कर रहे हैं. लोगों ने उन पर नजर

रखना आरंभ किया. जब उन्होंने देखा कि पोल खुल जायेगी तो पैसा ले कर दोनों वहां से निकल गये और रेल में बैठकर कलकत्ता पहुंच गये. अतः आचार्य का नेतृत्व आवश्यक माना गया है.

साधु संयम की अच्छी पालना करें लेकिन अच्छे आचार्य के नेतृत्व में विधि सहित नियमों का पालन करें, वही वंदनीय, पूजनीय है. आप अपने पास कसौटी रखिए, जो कि शास्त्रीय है. इस कसौटी पर जो भी खरा उतरे उसे वंदन करने से समकित में दोष नहीं लग सकता है.

प्रश्न 15 : यह नियम क्यों नहीं बना लिया जाय कि धर्मस्थान में सभी मुंहपत्ति बांधकर आवें ?

उत्तर : यदि यह चिंतन वैज्ञानिक तरीके से समझ लें तो जैन धर्म की साधना पद्धति के चार चांद लग जायें. मैं कल सामायिक की व्याख्या करते समय बोल गया था कि भगवान के समवसरण में लोग उत्तरासन लगा कर जाते थे, वहां जीवयुक्त पदार्थ नहीं ला सकते थे, फूलों की माला और इलायची बाहर रखी जाती थी. धर्म स्थान में आने से पहले विवेक रखना आवश्यक है. इस रूप में नियम तो उत्तरासन का बना ही हुआ है. आप लोग पालन नहीं करे तो यह दोष आपका है.

प्रश्न 16 : जिज्ञासु (श्री गौतम) :

आज के जमाने में जैन धर्म लोप क्यों हो रहा है और जैन धर्म की जानकारी लोगों को क्यों नहीं है ? कई लोग अपने आपको जैन कहलाने में भी संकोच करते हैं. ऐसा क्यों है ?

उत्तर : इसके कारण की खोज में जाने के लिए थोड़ा गहराई में पहुंचना पड़ेगा. क्या जन्मसे ही बच्चा धर्म, परिवार और समाज को जानता है ? वह नहीं समझता है—उसको समझानेवाले उसके माता-पिता हैं. बचपन में उसे जैसे संस्कार मिलते हैं वे अमिट हो जाते हैं. तो सबसे पहली कमजोरी है माता-पिता की। माता-पिता ही

चरित्र का निर्माण करते हैं. अतः उनका कर्तव्य है कि वे सुंदर जीवन निर्माण हो ऐसी शिक्षा दें. जब बच्चा बड़ा होता है तो उसको नयी चीज समझने कि जिज्ञासा होती है. धर्म स्थान पर पिता के साथ जाता है तो संतों को देख कर पूछता है कि ये कौन हैं? यदि माता उसकी जिज्ञासा का युक्तियुक्त समाधान देती है तो उसका उत्साह बढ़ता है. यदि उसको झिड़कते हैं तो उत्साह नहीं बढ़ेगा. कभी माता-पिता उसे नास्तिक कह देते हैं तो वह धर्म स्थान पर नहीं जाता. यदि धर्म स्थान पर ले जाते हैं और वह कुछ पूछता है तो उससे कहें कि मुझे जितना ज्ञान था, उतना बता दिया आगे की समाधान संत करेंगे. वहां समाधान नहीं होता है तो दूसरे स्थान पर ले जावें, इस प्रकार धार्मिक संस्कारों का क्रम चालू रहे. आज के युवक बारीक बातें समझते हैं इसलिए जैन धर्म की बारीक बातें समझाने का सुंदर अवसर है. युवक जितना समझेंगे उतना पकडेंगे.

कुछ लोग धर्म को परलोक की चीज बता देते हैं और युवक कहते हैं कि हम तो वर्तमान की बात चाहते हैं.

ईसाई लोग रविवार को सभी बच्चों को गिरजाघरों में ले जाते हैं. मुसलमान लोग छोटे बच्चों को कुरानशरीफ से धार्मिक संस्कार देते हैं. हिंदु समाज और हमारी समाज प्रायः बच्चों को पैसों की मशीन बना देना चाहते है. वे रोजी रोटी की जितनी आवश्यकता समझते हैं उतनी धर्म की नहीं समजते. यही प्रमुख कारण है कि जैसे धर्म जितनी चाहिए उतनी प्रगति नहीं कर पा रहा है. इनके अतिरिक्त आज आपकी समाज में स्वाध्याय की बहुत कमी है और इसी कारण जैन तत्वज्ञान में आपका प्रवेश नहीं हो पाता. इस ज्ञान के अभाव में आपके आचरण गलत हो जाते हैं तो आपको अपने को जैन कहलाने में शर्म आयेगी ही.

प्रश्न 17 : जैन धर्मावलंबी इतने डरपोक क्यों हैं-जैन कहलाना ठीक क्यों नहीं समझते ?

उत्तर : इसका भी मुख्य कारण जैनतत्वज्ञान का अभाव ही है. ज्ञान हो जायगा तो डरपोकपना भाग जायेगा. जैन धर्म कायरों का नहीं वीरों का धर्म है. यह वीरता ही नहीं, महावीरता सिखता हैं.

प्रश्न 18. : जिज्ञासु श्री हुकमीचंदजी खिंवेसरा :

आज कल के युवक तिरूपति बालाजी के वहां जाते हैं, जहां पांच घंटों पहले दर्शन नहीं होते, पांच घंटे लगाने पर भी दर्शन होंगे तो करेंगे, सांईबाबा के यहां जायेंगे तो वहां उनकी मनोकामना पूरी होती है, वे कहते हैं कि तिरूपति और सांईबाबा के वहां जा कर आया–वहां मनोकामना पूरी हुई, लोग कैसे मानते हैं कि मनोकामना पूरी हुई ?

उत्तर : वास्तविक तिरूपति बालाजी क्या हैं, यह सामान्य जनमानस नहीं समझता है, तिरूपति का मूल स्वरूप आज की मान्यता से सर्वथा भिन्न है, वे ऐसी किन्हीं मनौतियों को पूरी नहीं करते, आज के मनुष्यों की मनोकामना यह है कि धनवान बन जाऊं, यदि तिरूपति बाला जी के वहां और सांईबाबा के वहां जाने से मनोकामना पूरी होती, तो सबके सब धनवान हो जाते, लेकिन एक माहौल हो जाता है और मनुष्य की ऐसी कल्पना बन जाती है.

आचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज साहब फरमाते थे कि एक किसान को बुखार हो गया, वह भेरूजी हनुमानजी के वहां गया मनोतियों मनाई लेकिन उसका बुखार नहीं उतरा 26 दिन बीत गये, फिर उसका ध्यान गया कि मेरा बैल सयाना है, उसके पैर के नीचे से निकलूं तो बुखार चला जायगा, बैल के पैर के नीचे से नीकला उसका बुखार उतर गया, वैसे उसे 27 दिन का टाइफाइड था औषधि चल रही थीं, वह एक दिन बाद वैसे ही ठीक होनेवाला था, किंतु उस भोले बंधु ने यह प्रचार कर दिया कि मेरे बैल के नीचे से निकलने से बुखार उतर जाता है, और हजारों व्यक्ति बैल के नीचे से निकलने लगे, यह अंधविश्वास यहीं तक सीमित नहीं रहा, बैल

जब दिन भर परेशान होने लगा तो उसे एक पिंजरे में बंद कर दिया और लोग आ आ कर उस पिंजरे के चक्कर लगा जाते और बैल को नमस्कार कर जाते.

इसी तरह रायपुर के पास गुडियारी गांव में मुझे एक भाई ने बताया कि उड़िसा में एक अंगुली बाबा था. उसके पास जाने पर भी कुछ लोग रोग मुक्त हो गये, हजारों की भीड़ लगने लगी, व्यवस्था के अभाव में लोग और अधिक बीमार हो हो कर आने लगे, अंत में इस पर सरकार को प्रतिबंध लगाना पड़ा और उस बाबा को बंदी बना लिया गया.

दरअसल में ज्ञान की कमी के कारण ही लोग इधर उधर की बातें सोचते हैं, ज्ञान की मात्रा आ जाय तो घर बैठे गंगा है, यदि सही ज्ञान नहीं हैं तो मनोकामना पूरी नहीं होती.

दिनांक 22-7-84.

प्रश्न 19 : जिज्ञासु श्री मनसुखलाल कटारिया :

जैन धर्म की एकता हेतु, सभी संप्रदाय एक झंडे के तले आकर संगठन हेतु बहुत जोर लगाये जा रहे हैं, भाषणबाजी हो रही है, लेकिन सफलता नहीं मिल पा रही है, क्यों ?

उत्तर : प्रश्न सामयिक एवं मौलिक है, प्रत्येक व्यक्ति की यह सहज भावना रहती है कि हमारी समाज सुसंगठित हो कर चले, और यह सोचना उचित भी है, किंतु सुसंगठम की आधार भूमि क्या है, यह एक विचारणीय विषय है, आज संगठन में जो सफलताएं नहीं मिल रही है, इसका मूल कारण भी आधार भूमि का असंतुलन है, बिना किसी ठोस भूमिका के, ऊपर-ऊपर के प्रयास सफल नहीं हो सकते हैं, असफलता का दूसरा कारण है संगठनें की कथनी-करनी में अंतर, यदि समाज में, धर्म और संप्रदाय में भावात्मक एकता लानी है तो सभी लोग मन से, वचन से और काया से एक रूप हो जाये तो सफलता मिलने में देर नहीं लगती.

प्रश्न 20 : जिज्ञासु धर्मेन्द्र के. जैन :

जैन साधु भी श्वेत वस्त्र पहनते हैं और क्रिश्चियन पादरी जिनको "फादर" कहते हैं, वे भी श्वेत वस्त्र पहनते हैं, तो हम सब को मिल कर क्यों नहीं चर्च में जाना चाहिए. ?

उत्तर : इस छोटे से बच्चे ने प्रश्न करने का साहस किया यह, प्रशंसनीय हैं, मैं उस बच्चे से कहना चाहूंगा कि यदि श्वेत वस्त्रों से ही धर्म स्थान का संबंध हो तो हम वहां जायं इसके बजाय यह भी तो हो सकता है कि सभी पादरी यहीं क्यों नहीं आ जायें ? वास्तव में धर्म सिद्धांतों में हैं पोषाकों में नहीं, कल्पना करें दो विद्यालयों का यूनिफार्म समान हो तो क्या एक दूसरे के विद्यार्थियों को एक दूसरे विद्यालय में चले जाना चाहिए ? वास्तव में जहां पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्य, पूर्ण अचौर्य, पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण अपरिग्रह संपन्न जीवन का स्वरूप है, वहीं जीवन की पोषाक है, आत्मा की पोषाक है, वह पोषाक जो सजा लेता है और वह जिस स्थान पर मिलती है वह स्थान सबके लिए उपादेय होता है.

प्रश्न 21 : जिज्ञासु श्री उत्तमचंदजी (सिंधी समाज के प्रमुख सदस्यः)

हमारे चहेते अगर हमसे दुर्बुद्धि से चलें तो हमें क्या करना चाहिए ?

उत्तर : प्रश्न आप सभी के ध्यान में आ गया होगा ? मैं कुछ स्पष्ट कर दूं. आपका प्रश्न है कि हमको चाहते रहे हैं, फिर भी उनमें दुर्बुद्धि चलती है, तो क्या करना चाहिए ? ऐसे व्यक्तियों की चाह ऊपरी चाह होती है । वे आपको उपर से चाहते हैं, अंदर से नहीं, इसीलिए दुर्बुद्धि से चल रहे हैं, सच्चे मन से चाहेंगे तो आपके साथ दुर्बुद्धि का व्यवहार नहीं करेंगे. तथापि आप उनके साथ समभाव से व्यवहार करेंगे तथा दुर्बुद्धि का प्रतिकार शांति के सहारे सभ्य तरीके से करेंगे तो–एक न एक दिन अच्छा रिजल्ट आयगा. उनकी दुर्बुद्धि सद्बुद्धि में परिवर्तित हो जायगी. आपकी

सद्भावना का प्रभाव सामने वाले व्यक्ति पर अवश्य होगा. उसे एक-न एक दिन अवश्य बदलना पड़ेगा.

प्रश्न 22. जिज्ञासु प्रीति घांड़ीवाल :

पंडाल में बैठे व्यक्तियों की सामायिक है, अचानक आंधी, तूफान व बारिस आ जाय, सभी लोग भीग रहे हों व रहने के लिए कोई आसपास स्थान न हो तो उन व्यक्तियों द्वारा क्या किया जायगा ?

उत्तर : प्रथम तो ऐसे स्थान पर कोई सामायिक नहीं करेगा जहां इस प्रकार की अव्यवस्था की संभावना है, तथा ऐसा प्रायः नहीं होता है कि आसपास में कोई स्थान न मिले, सामायिक करनेवाला पहले ही विवेक रखेगा, पहले व्यवस्था देख कर चलेगा, कदाचित् ऐसी स्थिति उपस्थित हो जाये तो सामायिक की समाप्ति के पश्चात् आलोचन करके प्रायश्चित लेना चाहिए.

प्रश्न 23. जिज्ञासु श्री सुभाष नागोरी :

किन्हीं दो राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों की गलत नीति के कारण उनके बीच युद्ध होता है लेकिन युद्ध की हानि उन राष्ट्रों के नागरिकों को भी, जिनका की कोई दोष नहीं है, उठानी पड़ती है, इसे हम किसके कर्मों का उदय समझें ? क्या सभी नागरिकों ने, जिन्हें हानि पहुंचती है, पूर्व जन्म में एक साथ एक ही समान कर्म बांधे थे ?

उत्तर : प्रश्न युगीन संदर्भों से अनुबंधित होते हुए भी अतीव मौलिक है, साथ ही यह कर्म सिद्धांत की व्यवस्था को भी अपने में समेटे हुए है, राष्ट्राध्यक्ष कोई अपने मन से नहीं बनते, आज की जनतांत्रिक पद्धति में आम व्यक्ति को राष्ट्राध्यक्ष चुनने का अधिकार है, ऐसी स्थिति में राष्ट्राध्यक्ष पूरे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, अतः उनके निर्णयों का प्रभाव आम प्रजा पर होना स्वाभाविक है, कर्म सिद्धांत ने इस व्यवस्था को सामुदायिक कर्म की संज्ञा दी है। जैसे पांच हजार व्यक्ति एक साथ कोई चलचित्र देख रहे हैं, उसके दृश्यों के अनुसार प्रायः सभी में एक समान भावनाएं उत्पन्न होतीं

है और समान कर्मों का बंध हो जाता है, जिसका एक साथ उदय हो सकता है, मूलतः राष्ट्राध्यक्ष कोई स्वतंत्र इकाई नहीं है वह सामान्य जनता के प्रतिनिधित्व अधिकार से अनुबंधित है.

प्रश्न 24. : जिज्ञासु अशोक दिनेश ओस्तवाल :
मानवीय जीवन क्या है और कैसे मिलता है ?

उत्तर : प्रश्न अत्यंत मौलिक है, इस प्रश्न को कुछ गहराई से समझने की आवश्यकता है, मानव जीवन की परिभाषा एवं उसके मूल्य को नहीं समझने के कारण ही आज आम व्यक्ति इस बहुमूल्य उपलब्धि के लाभ से वंचित-सा जी रहा है, मैंने जीवन की संक्षिप्त परिभाषा दी है- "सम्यग् निर्णायकं समतामयं, च यत्तज्जीवनम्" अर्थात् जीवन वह है जो अपने हिताहित का विवेक रख सकता हो और समतामय हो, इस परिभाषा के अनुसार मानव जीवन हमारे आत्म कल्याण के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, जिसे संसार की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि कही जा सकती है, महर्षि व्यास ने कहा है-"नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित् प्रश्न का दूसरा पहलू है पूर्वजन्म के किन अनुष्ठानों से मानवीय जीवन मिलता है ? मानवीय जीवन की प्राप्ति के लिए शुभ कर्म अपेक्षित है, यहां शुभ कर्मों का तात्पर्य यह है कि स्वभाव से-प्रकृति से भद्रिक हो, छली-पाखंडी न हो, स्वभाव से-प्रकृति से विनम्र हो, बडे बुजुर्गों का विनय या आदर करे, छोटों के साथ मधुर और आत्मीय भावना से चले, क्रोध, मान, माया, लोभ की स्थिति से दूर रहे, अति सरल जीवन हो, इस प्रकार के दिव्य गुण अपनावे तो उसे पुनः मानव जीवन मिल सकता है.

मानवीय जीवन का सही मूल्य भी यही है कि वह इस जीवन में रहता हुआ एक दूसरे को आत्मीय भावना से देखे. जहां ऐसी वृत्ति आ जाती है, वह मानवीय जीवन है.

प्रश्न 25 : कोई आदमी बन कर संसार में आया उसके बाद कर्म मानव योनि के अनुकूल नहीं किये तो क्या होगा ?

उत्तर : पशु योनी में चला जायगा और भी नीचे चला जायगा. किसी के साथ कपट किया, धोखा किया तो नीची योनि में जायगा.

प्रश्न 26 : क्या मानव जीवन से फिर मानव जीवन मील सकता है ?

उत्तर : मानव बनने के लायक कर्म करे तो पुनः मानव योनि मिल सकती है.

प्रश्न 27 : मानव जीवन से तो मोक्ष प्राप्त होता है, क्या अन्य किसी योनि से भी मोक्ष मिलता है ?

उत्तर : ऐसा दूसरा कोई जीवन नहीं है जिसमें परिपूर्ण साधना की जा सके, जब तक दुर्जन बना रहेगा, हिंसा करता रहेगा तब तक सम भावी नहीं बनेगा और उसके अभाव से मोक्ष भी नहीं मिलेगा.

प्रश्न 28 : मानव जीवन मिल गया, लेकिन साधु बने बिना मोक्ष मिलता है या नहीं ?

उत्तर : मानव यदि सब के साथ समता भाव ले आता है, समता का व्यवहार करता है और समता के अनुवाद ही बोलता है तो समझिये वह साधु जीवन में प्रवेश कर गया. अब रहा सवाल परिवेश-पोषाक का, तो भी स्वतः बदल जायेगी किंतु भावात्मक साधुता आये बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है । कोई भी व्यक्ति पांचवी कक्षा से सीधी एम.ए. की डिग्री नहीं ले सकता. उसको क्रमिक रूप से अध्ययन करना पड़ेगा उसी तरह से साधना में भी क्रमिक रूप से आगे बढना पड़ेगा, तभी अंत में जा कर मोक्ष का अधिकारी बन सकता है. 5वीं कक्षा का छात्र चाहे कि एम. ए. की डिग्री सीधी मिल जाय तो मिलेगी क्या ? गृहस्थाश्रम पांचवी कक्षा जितना ही है. अतः उससे मुक्ति नहीं मिल सकती है.

प्रश्न 28 : मोक्ष के लिए क्या साधु बनना जरूरी है ?

उत्तर : हां, बिना साधु बने मुक्ति नहीं हो सकती है. भाव से साधुता आयेगी तभी मुक्ति होगी. भरत महाराज का उदाहरण भी यही बताता है कि उन्हें भाव साधुता आ गई थी. तभी केवल ज्ञान हुआ. इसीलिए उन्होंने तुरंत मुनि वेश धारण कर लिया था.

प्रश्न 29 : जिज्ञासु सुश्री वर्षा श्री श्रीमाल :

क्या कारण है कि महिलाए खड़े हो कर ध्यान नहीं कर सकतीं हैं जब कि पुरुष वर्ग कर सकता है ?

उत्तर : वैसे तो यह प्रश्न व्यक्तिगत हो जाता है फिर भी उत्तर दे दूं. महिला वर्ग इसलिए खड़े हो कर ध्यान नहीं कर सकती कि उनके शरीर की संरचना ऐसी है कि कोई व्यक्ति विपरीत या उद्दंडक प्रकृति का हो तो खतरा आ सकता इसलिए उनके लिए बैठे बैठे ही ध्यान करने का विधान है.

प्रश्न 30 : जिज्ञासु श्री रमेशचंद्र ब्यावर :

व्यापार में स्वयं के नहीं चाहने पर भी चोरी बेईमानी करनी पड़ती है, उससे छुटकार कैसे पाया जाय ?

उत्तर : छुटकारा पाने का रास्ता वह है कि अपने जीवन को सादा बनाया जाय. ईमानदारी और सत्यनिष्ठा से कार्य करनेवाले को जितनी और जैसी उपलब्धि हो उसी के अनुरूप जीवन ढालने की कोशिस की जाय. कुरीति रिवाजों को न पनपने दें. सादगी पूर्वक जीवन बितावें. जैसे पशु पक्षी उन्हें बेईमानी नहीं करनी पड़ती हैं लेकिन इंसान ऐसा नहीं करता. इसलिए उसको बेईमानी और चोरी करनी पड़ती है. वह ऐसा आराम नहीं छोड़ना चाहता, फेसिलिटी का त्याग नहीं करना चाहता इसलिए दुविधा में रहता है. यदि जीवन की आवश्यकताओं को सीमित किया जाये तो बिना बेईमानी के भी जीवन का गुजारा तो हो ही सकता है. अधिक सुविधा बाद ने ही अनैतिकता में वृध्धि की है.

प्रश्न 31 : जिज्ञासु श्री हुकमीचंद खींवसरा :

एक तरफ तो ऐसा सुना जाता है कि साधर्मी भाई की सेवा के लिए भोजन व्यवस्था पर टिकट लगाने के पूर्वाचार्य विरुध्द थे. जब कि संघ को पूरा खर्च उठाते हुए अनूठी और स्थायी साधर्मी भाई की सेवा का और मौका मिल जाता है. दूसरी तरफ ऐसा भी सुना जाता है पूर्व में इस तरह की सुंदर व्यवस्था कभी संघ के सन्मुख आई ही नहीं थी. सही बात क्या है व इस विषय में आपका मार्ग दर्शन क्या है, खुलासा करने की कृपा करें ?

उत्तर : यह विषय मुख्य तौर पर आपसे गृहस्थो से संबंधित है. संत और सती वर्ग आरंभ समारंभ में नहीं पड़ते हैं. पूर्वाचार्यों का जहां तक संबंध है, और जहां तक मेरी स्मृति में है पूर्वाचार्यों ने न हां कहा और न ना कहा. संघ की सुव्यवस्था की दृष्टि से टिकट भी लगे तो पूर्वाचार्य हां ना में नहीं रहे. आचार्य श्री गणेशीलाल जी म.सा का चातुर्मास जयपुर हुआ था तब प्रश्न उठा था कि टिकिट लगे । लेकिन आचार्य श्री न हां मे थे, न ना में । साधर्मी की स्थिति के बारे में संतों के नाम से चर्चा न करें. आपको जैसी सुविधा हो वैसा सोचें. साधर्मी वात्सल्य यह आपके चिंतन का विषय है. संतों को हां ना इसलिए नहीं कहनी है कि यदि वे हां कहते हैं तो समारंभ आरंभ का दोष लगता है और ना कहते हैं तो अंतराय लगती है. आप अपना ध्यान रख कर जैसा उपयुक्त हो, सोच सकते हैं. यहां की क्या स्थिति है, यह आपके सोचने समझने की बात है. हमको कुछ नहीं करना और न हमें कुछ कहना है. इसलिए संत सती वर्ग को और पूर्वाचार्यों को हां या ना में लिप्त न करें.

प्रश्न 32 : जिज्ञासु श्री नाथा भाई :

जैन बालक हिंसा की ओर जा रहे हैं इसके लिए जैन साधु मिल कर क्यों नहीं प्रयास करते ?

उत्तर : आपका प्रश्न मौलिक है, अच्छा है. यह प्रश्न साधु

संतों पर कितना निर्भर करता हैं, यह विचारणीय है. आप साधु संतों पर उत्तरदायित्व डालते हैं उससे अधिक उत्तरदायित्व आपको लेना चाहिए. ज़ो बाल बच्चे आपके घर में जन्म लेते हैं. शरीर से जन्म देना और बात है और संस्कारों से जन्म देना दूसरी बात है. शरीर से जन्म पशु पक्षी भी देते हैं लेकिन वे संस्कार नहीं दे सकते. चिडियां, कबूतर, आदि मांस का खाना नहीं खाते हैं. मांस खानेवाले प्राणियों के कुछ और चिह्न होते हैं । और नहीं खानेवालों के और चिन्ह होते हैं. पशुओं और पक्षिओं में भी अंतर है. सिंह भालू, कुत्ता मांस खानेवाले हैं. ये जबान से पानी पीते हैं और इनके दांत लंबे होते हैं. गाय, भैंस मांसाहारी नहीं है. होंठ से पानी पीते हैं. इनके दांत चपटे होते हैं. यह कुदरती–प्राकृतिक अंतर है. मनुष्य, गाय, बैल, भेंस की तरह पानी पीता है. तो मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी नही है. यह मांसाहार परिस्थिति वश या गलत संपर्क से आ गया. माता पिता का कर्तव्य है कि बच्चों को अच्छे संस्कार दिये जायं. फिर वे खोटा खाना नही खायेंगे. माता पिता से अच्छे संस्कार मिल जाते हैं तो बच्चा विपरीत आचरण में नहीं आता. एक उदाहरण भोपाल का देता हूं. भोपाल मध्य प्रदेश की राजधानी है. एक वकील साहब का लड़का भीमसिंह एम. ए. में पढ़ रहा था. उसके बचपन के संस्कार मांस, मदिरा के नहीं थे. माता पिता ने भी उसे उन्नत संस्कार दिये.

एक दिन भीमसिंह के कक्षा के विद्यार्थियों ने, जो प्राय: सभी उत्तम कुल जैसे ब्राह्मण, माहेश्वरी, ओस्वाल आदि थे, सोचा कि कल रविवार है पिकनिक मनायी जाय और सभी अपने घर से टिफन ले कर आवें. पिकनिक में सभी विद्यार्थियों ने टिफन खोले तो कुछ में अंडे निकले । भीमसिंह को यह बात अच्छी नहीं लगी. भीमसिंह ने कहा कि यह मनुष्य का खाना नहीं है, वे इंकार करने लगे तब जबर्दस्ती से विद्यार्थी उनको खिलाना चाहते थे. उन्होने अध्यापक को पुकारा–

अध्यापक ने कहा कि अंडा खा लोगे तो क्या हो जायगा ? भीमसिंह ने सोचा कि यहां तो कुए में भांग पड़ी हुई है. वे वहां से भाग कर अपने घर चले गये और अपने पिताजी को सारी घटना सुनाई– पिता ने कानूनी कार्यवाही की और विद्यार्थी एवं स्टाफ को डांट पिलाई. जहां माता पिता से मधुर धार्मिक संस्कार मिल जाता हैं वहां विद्यार्थी संस्कारों के विपरीत नहीं जाता. जहां माता पिता खाली शरीर पिंड का पोषण करते हैं. पवित्र विचारों का पोषण नहीं करते वहां चरित्र गिरता है. आगे चल कर जब बच्चा स्कूल कालेजों में जाता है, वह भी अंग्रेजी माध्यम की स्कूलों में. तो वहां अध्यापक अपनी संस्कृति के अनुरूप शिक्षा देते हैं. आज उत्तम कुल की कहलाने वाली आपकी समाज है, उसको किसी बात की कमी नहीं है, लेकिन भावात्मक एकता की कमी है. उच्च कुल की तरह पवित्र संस्कार देनेवाली स्कूलें और कालेजों का निर्माण आप नहीं कर सकते क्या ? आपमें क्षमता है लेकिन रुचि नहीं है. आपने बच्चों के संस्कार निर्माण की तरफ ध्यान नहीं दिया तो क्या स्थिति होगी ? इस ओर ध्यान दें. यदि आप यह नहीं कर सकते तो संतों से धार्मिक शिक्षण दिलायें. खुले दिल से बच्चे संतों के पास पहुंचे प्रश्न करें, समाधान लें. संत घरों में जा कर संस्कार देने की स्थिति में नहीं है. इस दृष्टिकोण से जो संतान गलत रास्ते पर जा रहे हैं उनके माता पिता को पहले ध्यान रखना है. तथा संतों को भी अपने कर्तव्य दृष्टि से ध्यान रखना है. मूलरूप में उच्च वर्ग में मांसाहार के अधिक प्रचार का कारण संस्कारों का अभाव है.

प्रश्न 33 : जिज्ञासु श्री रतनचंद सुराणा :

जैन धर्म के सब संप्रदायों द्वारा इतना आध्यात्मिक व रचनात्मक कार्य का प्रचार होते हुए भी आज की नव युवक पीढ़ी का धर्म के प्रति लगाव इतना कम क्यों है ? क्या इसमें और कोई सुधार आवश्यक है ?

उत्तर : सुधार की बहुत आवश्यकता है. कई छोटे बच्चों की धर्म के प्रति जिज्ञासा होती है, वे समझने के लिए प्रश्न उपस्थित करते हैं यदि माता पिता प्रश्नों का समाधान ठीक तरह से दे दें तो विद्यार्थी धर्म की ओर अग्रसर होते हैं. लेकिन माता पिता समाधान ठीक तरह से नहीं दे सकें और अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए कहते हैं कि तुम तो नास्तिक हो गये हो. तो विद्यार्थी धर्म के विरुद्ध हो जाते हैं और धर्म के सन्मुख आने से डर जाते हैं. यदि माता पिता उनको खुली छूट दे दें कि प्रश्न का समाधान संतों के पास जा कर लो और संत उनको योग्य समाधान दे देते हैं तो वे धर्म से विमुख नहीं होंगे. यदि संतों से उत्तर नहीं बन पड़े और वे भी कहने लग जायं कि तुम नास्तिक हो गये हो, जो ऐसे प्रश्न करते हो, तो भी विद्यार्थी धर्म से किनारा करने लग जाते हैं और 4 विद्यार्थी 10 को और अपने साथ ले जाते हैं. स्कूल कालेजों के अध्यापक भी इस ओर ध्यान नहीं देते, इसलिए उनके संस्कार धर्म के विरूद्ध हो जाते हैं. यदि संतजन उन्हें स्नेह से समझायें मार्गदर्शन दें और अपनी अक्षमता पर सरलतापूर्वक स्पष्ट कह दें कि आप और किन्हीं विद्वान मुनियों से समाधान लें, हमारी शक्ति के अनुसार हमने बता दिया है तो युवक सहज ही उनकी नम्रता एवं सरलता से प्रभावित होंगे और धर्म के प्रति श्रद्धान्वित भी. इसके साथ ही माता –पिता बच्चों को धर्म स्थानों पर ले जाने में संकोच करते हैं. सिनेमा में पहले ले जाते हैं तो उन पर सिनेमा का बुरा असर पड़ता है. सिनेमा एवं अश्लील उपन्यास आदि के संस्कारों से आवारापन, डकैती आदि कुसंस्कार पड़ते हैं, जिन्हें आप आये दिन समाचार पत्रों में देखते हैं. ये ही मूल कारण हैं उनके धर्म के विमुख होने के. जिन विद्यार्थियों के प्रश्नों का समाधान हो जाता है वे धर्म के विपरीत नहीं जाता.

प्रश्न 34 : जिज्ञासु श्री बाबुलाल बंबकी :
जैन धर्म का विज्ञान से क्या संबंध हैं ?

उत्तर : चुंकि जैन धर्म स्वयं वैज्ञानिक धर्म है, अतः इसका विज्ञान से संबंध अपरिहार्य है. किंतु आधुनिक विज्ञान का जो केवल भौतिक प्रगति में ही गतिशील है, जैन धर्म से उतना ही संबंध है जितना कि वह मानव कल्याण में उपयुक्त होता है अर्थात् यदि विज्ञान मानव हित में काम करे तो जैनधर्म विज्ञान के विरुद्ध नहीं है. यदि विज्ञान संहार का काम करता है हिंसाकारी अस्त्र-शस्त्र बनाता है तो जैन धर्म उसके विरुद्ध है. यदि विज्ञान आत्म स्वरूप को नहीं समझता तो धर्म उसके विरुद्ध है. यदि विज्ञान अपनी शक्ति पाप में न लगाकर धर्म में विश्व कल्याण में लगावे तो विज्ञान धर्म के विरुद्ध नहीं है.

प्रश्न 35 : जिज्ञासु श्री नीति जैन :

पाप, पुण्य और धर्म में क्या अंतर है ? मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर : पाप अशुभ कर्म है और पुण्य शुभ कर्म है. पाप पुण्य की स्थिति में रात दिन का अंतर है. पाप पत्थर की नाव है और पुण्य लकड़ी की नाव है. समुद्र पार करने के लिए पत्थर की नाव सबसे पहले छोडी जाती है और लकड़ी की नाव का सहारा लिया जाता है वैसे ही पाप को सबसे पहले छोड़ा जाता है और पुण्य को बाद में । क्योंकि पुण्य के परिणाम स्वरूप मनुष्य शरीर मिलता है और उसके सहारे आत्मा मोक्ष की ओर गति करती है. श्रुत धर्म, चारित्र धर्म पुण्य से प्राप्त शरीर के माध्यम से जीवन में उतर जाय तो उससे मोक्ष मिलता है, पुण्य और पाप दोनों छूटते हैं. जब तक मोक्ष की स्थिति न हो तब तक पुण्य का सहारा लिया जाता है. इसलिए पुण्य धर्म के साथ सहयोगी है. पुण्य अंत में छूटता है और पाप सबसे पहले छूटता है । यह पुण्य और पाप में अंतर है. किंतु धर्म पुण्य से भिन्न है. धर्म आत्म विशुद्धिपूर्वक मुक्ति की ओर गति प्रदान करने वाली एक प्रक्रिया है.

प्रश्न 36 : जिज्ञासु श्री बंशीधर मेहता :

आप अद्वैतवाद में विश्वास करते हैं. या भगवान के भिन्न भिन्न रूप मानते है ?

उत्तर : भाई बंशीधर जी ने प्रश्न ज्ञान के अनुरूप रखा. आत्म का स्वरूप एक हैं इस दृष्टि से सब आत्माएं एक हैं. जैसे मनुष्य जाति एक है, इस दृष्टि से अद्वैत को माना जा सकता है किंतु प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र है. वैसे ही प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है, परमात्मा के तुल्य शक्ति रखती है. वह विकास करती है तो एक रोज परमात्मा बन जाती है तो विभेद की स्थिति नहीं रहती. इस प्रकार प्रत्येक आत्मा परमात्मा का रूप लिये हुए है अत : जैन दर्शन अपेक्षा दृष्टि से एक हैं. द्वेत एवं अद्वेत दोनों में विश्वास रखता है. अद्वेत की दृष्टि से सभी आत्माएं आत्मत्व की दृष्टि से एक हैं. और द्वेत की दृष्टि से सभी का अस्तित्व भिन्न भिन्न है.

प्रश्न 37 : नवकार मंत्र में पांच पद हैं. सिर्फ पांचवें पद में ही णमो लोए सव्व साहुणं क्यों कहा, बाकी चार में सव्व शब्द क्यों नहीं कहा. क्रिया पालने में ढीले होने पर वंदना करने का मना किया जाता है. मार्ग में कोई भी साधु मिले, वंदना करना या नहीं ?

उत्तर : इस प्रश्न को कुछ विस्तार से समझने का प्रयास करें– व्याकरण शास्त्र में समास प्रकरण में यह नियम है कि–"द्वंद्वादौ द्वंद्रान्तेव श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभि संबंध्यते" अर्थात् द्वंद्व समास में पद के आदि में और अंत में रहा हुआ पद सर्वत्र संयुक्त होता है.

जैसे राम, श्याम, दिनेश और महेश को कहो. यहां और शब्द एक जगह आया है किंतु इसका संबंध सभी जगह है, जैसे राम और श्याम और दिनेश आदि....। ठीक इसी प्रकार पंचम पद से आगत सव्व शब्द उपर के पदों में भी संयुक्त होता है दूसरी बात प्रश्नकर्ता को यह ज्ञात होगा ही कि स्कूल में जहां 50 अध्यापक बैठे हों उन में प्रिंसिपल प्रोफेसर. आदि अलग अलग कोटि के

अध्यापक बैठे हैं. कोई व्यक्ति उनमें से दो चार का नाम ले कर नमस्कार करेगा. उसके बाद सब का नाम लेने में देर लगेगी इसलिए कहेगा कि सब गुरुजनों को नमस्कार है. अध्यापक की योग्यता रखनेवालों को नमस्कार है. जो योग्यता नहीं रखते हैं उनको नमस्कार नहीं है वैसे ही जहां साधु का रूप है वह शरीर से नहीं, पोशाक से नहीं, पोशाक तो पहचान के लिए है. लेकिन परिपूर्ण अहिंसा, परिपूर्ण सत्य, परिपूर्ण अचौर्य परिपूर्ण ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करनेवाले हैं अर्थात् छोटे प्राणी की जीव हिंसा नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, बिना आज्ञा के वस्तु नहीं लेना, जगत की स्त्री जाति को माता और बहिन के समान समझना. अपरिग्रह में रुपये पैसे टिकिट आदि अपने पास नहीं रखना. धातु मात्र की कोई चीज नहीं रखना. चश्मे में भी धातु या लोहे की कील न हो. अपरिग्रह का पूर्ण आदर्श जिसमें है वह साधु है, भगवान ने उसे साधु बताया है. उससे विशेष योग्यता वाले साधु उपाध्याय होते हैं. उनसे अधिक योग्यतावाले आचार्य. आचार्य से ऊपर बढ़ते हैं तो अरिहंत होते हैं और उसके बाद सिद्ध बन जाते हैं ये पांच पद हैं. जैसे सब मास्टरों को नमस्कार है वैसे ही सव्व साहुणं में सब साधुओं को नमस्कार है. चार पदों में अलग अलग नमस्कार कर दिया. नमो लोए सव्व साहुणं पांच महाव्रतों के धारक जो साधु पद के योग्य हैं उन सब को नमस्कार है और जो साधु पद के योग्य नहीं है उनको नमस्कार नहीं किया. साधना की पहचान के आधार पर नमस्कार है.

प्रश्न ३८ : जिज्ञासु श्री अशोक बापणा :

कहते हैं कि पर्युषण पर्व व संवत्सरी शास्त्रों पर आधारित है. क्या शास्त्र हमें भिन्न भिन्न पर्युषण मनाने का निर्देश देते हैं या हम ही शास्त्रों को सही ढंग से नहीं समझ पाये हैं ?

उत्तर : प्रश्न मौलिक है. संवत्सरी का दिन आत्मशुद्धि का है. यह वर्ष में एक बार आता है. शास्त्रों में इतना उल्लेख है कि जिस दिन से चातुर्मास प्रारंभ हो उस दिन से एक महिना बीस रात्र

व्यतीत होने पर संवत्सरी मनावें. घड़ियों के अनुसार 49 वां या 50 वां दिन आता है; यह शास्त्रीय उल्लेख है. शास्त्रीय गणित जितना चाहिए उतना उपलब्ध नहीं हुआ. अतः अजमेर बृहत सम्मेलन में हिंदुस्तान के प्रमुख संतों ने निर्णय किया कि चातुर्मास बैठने के पश्चात् चाहे दो श्रावण हो या दो भादवा हो संवत्सरी पर्व 50 वें दिन मनाना चाहिए जो कि दो श्रावण एवं दो भाद्र पद होने पर प्रथम भाद्र पद में आयेगा. जिससे एक नियम हो जाय. समाज एक रूप बना रहे.

भगवान महावीर की निर्वाण शताब्दी के प्रसंग से जब यह प्रसंग से जब यह प्रश्न चला जब मैं सरदार शहर में था उस समय संपतमलजी गदिया मेरे पास आये और उन्होंने पूछा कि निर्वाण शताब्दि के संबंध में आपका क्या कार्यक्रम है. मैंने कहा कि हमने तो पूरा जीवन ही समर्पित कर दिया है और उस पर चल रहे हैं. फिर भी मेरा एक सुझाव है कि सारा जैन समाज–स्थानकवासी, तेरापंथी, मूर्तिपूजक एवं दिगंबर सब एकरोज संवत्सरी मनाना निश्चित कर लें तो अच्छा रहेगा. इसमें जो तिथि का भेद आता है उसको सब मिलकर एक ही रोज के लिए निर्णय कर लें. तो 25 वीं निर्वाण शताब्दी की यह बहुत बड़ी उपलब्धि हो सकती है. इस पर उन्होंने पूछा कि इसमें आप क्या योगदान देना चाहते हैं ?

मैंने कहा कि मेरा पूरा योगदान मिलेगा. सारी समाज मिल कर जिसे रोज भी एक संवत्सरी निश्चित कर देगी, मैं बिना किसी शर्त के उस रोज सम्वत्सरी मनाने तत्पर हूं. मुझे पूछने की भी आवश्यकता नहीं है.

उनको ऐसा लगा कि जैसे दूसरे क्षेत्र के व्यक्ति बोलते कुछ हैं और करते कुछ हैं ऐसा ही यहां होगा. इस उन्होंने पूछा कि क्या यह बात शासकीय स्तर की मीटिंग जयपुर में होनेवाली है, उसमें रख दी जाय ?

मैंने कहा कि जरूर रख दीजिए, मेरी तरफ से एकरूपता है. वे

जयपुर गये और वहां पर एक कमेटी राज्य सरकार की ओर से बनी हुई थी उस कमेटी के सभ्यों के सामने यह बात रखी. सब खुश हुए.

उन्होंने प्रयत्न किया होगा. लेकिन जब वे मेरे पास वापस आये तो मैंने पूछा कि संवत्सरी के बारे में क्या हुआ ? उन्होंने कहा कि जैसा आपने आश्वासन दिया वैसी उदारता सभी दिखाते तो एक दिन निश्चित होने में देर नहीं लगती, लेकिन कई लोग तर्क करते हैं, ऊंचे नीचे होते हैं. इसलिए एकदिन निश्चित नहीं हो सका. मैंने कहा कि आप प्रयत्न करते रहिए मेरी तरफ से छूट है.

सारा जैन समाज एकदिन संवत्सरी मनाने में एक मत हो जाता है. तो यह सभी दृष्टियों से एक बड़ी उपलब्धि होगी. मैं सदा-सदा इसके लिए तत्पर रहा हूं और रहूंगा.

सरदार शहर की इस घटना से लगभग चार वर्ष पश्चात् जोधपुर वर्षावास में भारत जैन महामंडल का शिष्टमंडल एवं कलकत्ता से प्रकाशित दैनिक विश्व मित्र के संपादक आदि उपस्थित हुए, उस समय जब उन्होंने पुन: संवत्सरी एकता विषयक राय पूछी तो मैंने कहा कि मैं सरदार शहर में अपने मुक्त विचार व्यक्त कर चुका हूं. इसके अतिरिक्त यदि पूरे जैन समाज द्वारा विक्रम संवत् के स्थान पर शक संवत् जो कि राष्ट्रीय संवत् है. को मान्यता दे दी जाय तो भी इस समस्या का समाधान हो सकता है. क्योंकि शक संवत ईस्वी सन् के समान तारीखों के आधार पर चलता है. जैसे वीर निर्वाण की कुछ शताब्दियों पश्चात् ही विक्रम संवत को अपनाया गया. इसी प्रकार शक संवत को भी अपनाया जा सकता है. प्रारंभ में कुछ दिन कठिनाईयां अटपटा पन लग सकता है किंतु शनै: शनै: यह विक्रम संवत के समान ही व्यवस्थित बन सकता है.

इस पर आगंतुक सदस्य कहने लगे कि यह तो एक नया ही मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ है. इस रूप में मैं मेरी स्थिति से पूरा ध्यान कर रहा हूं.

卐

दिनांक 29-7-84

प्रश्न : 39 : जिज्ञासु श्री अशोककुमार खाविया :

जैन धर्म में मनोविज्ञान का क्या स्थान है ?

उत्तर : भाई खाविया एक चिंतनशील बुद्धि जीवी युवक हैं. अपने चिंतन के अनुरूप ही इन्होंने एक गंभीर प्रश्न प्रस्तुत किया है. स्पष्ट शब्दों में कहूं तो जैन दर्शन में जो मनोविज्ञान का स्थान है, वह इतर दर्शनों में नहीं है. मनोविज्ञान का अर्थ है मन की समस्त वृत्तियों का विज्ञान, जिन्हें हम सामान्य मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान एवं परा मनोविज्ञान कहते हैं उन सब का विश्लेषनात्मकज्ञान मनोविज्ञान है. जैन दर्शन में मतिज्ञान के जो मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता और अभिनिबोध आदि पर्याय बताये गये हैं, उनमें उपर्युक्त तीनों प्रकार के मनोविज्ञानों का अंतर्भाव हो जाता है.

मनोविज्ञान शब्द भले ही हमें आधुनिक लगता है. लेकिन जैन तत्वदर्शन में मन के विज्ञान का विश्लेषण बहुत गहराई तक पहुंचा है. जैन तत्व दर्शन में बाल संस्कार से लेकर युवा चेतना एवं वृद्ध व्यवस्था तक की समस्त समस्याओं को मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में समाहित किया गया है. अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जैन दर्शन मनोवैज्ञानिक एवं उससे ऊपर उठकर आत्म विज्ञानी दर्शन है.

प्रश्न 40 : जिज्ञासु : मनोहर जैन :

क्या अपना स्थानकवासी समाज अखिल भारतीय स्तर पर एक हो सकता है? इसमें आपका क्या योगदान हो सकता है और इसके लिए आप वर्तमान में क्या-क्या प्रयत्न कर रहे हैं?

उत्तर : प्रश्न सामयिक है, उत्तर के पूर्व जरा स्थानकवासी शब्द के अभिप्राय को समझ लें. यह स्थानकवासी संज्ञा तो बाद में बन गई है. वस्तुतः स्थानकवासी समाज का मूल नाम साधुमार्गी है. इससे समग्र जैन समाज का ग्रहण हो जाता है. साधु मार्गी

अर्थात् सुंदर मार्ग जो साधक साधु जीवन की भूमिका के आचार-विचार को मन, वाणी और कर्म से एक होकर अनुसरण करता है. दुनिया से स्वल्प ले कर और अधिक से अधिक जन-कल्याण हेतु समता का प्रचार प्रसार करता है. अपनी मर्यादा के अनुसार सीमा में रहता हुआ जितना योगदान कर सके करता है, वह साधक साधुमार्ग का अनुसर्ता कहलाता है. इसी का उपनाम स्थानकवासी है. इस प्रश्न के मूल पहलू पर आर्य-स्थानकवासी समाज की एकता की दृष्टि से भी बहुत प्रयत्न हुए हैं और वर्तमान में भी चल रहे हैं.

संवत 2009 में सादड़ी सम्मेलन में स्थानकवासी समाज के अधिसंख्य प्रतिनिधि एकत्रित हुए थे। उन्होंने अपनी मर्यादा के अनुकूल जो आचार संहिता सर्वानुमति से बनाई उस पर सभी समाज के अग्रणी साधु आरूढ़ हो जायें तो आज भी एकीकरण संभव है. मैं इस उद्देश्य को ले कर चल रहा हूं और जहां भी जाता हूं प्रायः इसे दोहराता हूं. समता समाज रचना के सिद्धांत पर सब एक मत हो जायें तो एकता हो सकती है. इसके लिए प्रयास पहले भी चल रहे थे और आज भी चल रहे हैं. मैंने इसकी भूमिका के रूप में सांवत्सरिक एकता के लिए पहल की है. जिसका स्पष्टीकरण मैं कई बार कर चुका हूं.

प्रश्न 41 : जिज्ञासु श्री कोमल जैन :

एक आदमी अपनी धर्मपत्नी का देहांत होने के बाद दूसरा विवाह कर सकता है और करता है. जब कि जैन स्थानकवासी एक लड़की उसकी शादी के बाद एक महिने में उसका पति मर जाता है, तो उसको सारी जिंदगी विधवा बन कर व्यतीत करना पड़ता है, जैन धर्म इस विषय में क्या कहता है ?

उत्तर : प्रश्न सामाजिक होते हुए भी सामयिक है. आज की परिस्थितियों एवं प्रसंगों में यह [illegible] सामयिक है. किन्तु इन भावनाओं से विधुर विवाह हो रहे हैं. इस स्थिति में [illegible] के

संबंध में प्रश्न उठना सहज है. किंतु यहां विचारणीय इतना ही है कि धर्म-दर्शन ईस विषय में क्या कहता है ?

इस बात को आप अच्छी तरह समझ लें कि धर्म का उद्देश्य है आत्म कल्याण की प्रेरणा देना एवं उसके विधि-विधानों को प्रस्तुत करना. विवाह संबंध एक सामाजिक रीति रिवाज है. अध्यात्मदर्शन संयम-ब्रह्मचर्य की प्रेरणा देता है. व्यक्ति को अधिक-से-अधिक संयमित रहना चाहिए.

इस दृष्टि से धर्म न तो विधुर विवाह की अनुमति देता है और न विधवा विवाह की. धर्म की दृष्टि से तो विधुर को भी पुनर्विवाह नहीं करके ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और विधवा को भी.

चूंकि प्रथम विवाह के समय ही विवाहकर्ता व्यक्ति (नारी-पुरुष) जगत् साक्षी से यह प्रतिज्ञा करता है कि संबंधित होने वाले एक व्यक्ति के अतिरिक्त संसार के समस्त पुरुष-नारियों को भाई बहिन की दृष्टि से देखूंगा. अब आप ही सोचिए कि दूसरा विवाह करनेवाला क्या भाई बहन से विवाह नहीं कर रहा है ?

प्रश्न. 42 : जिज्ञासु मीना देसरड़ा :

यदि विश्वधर्म सम्मेलन का आयोजन विदेश यानि यूरोपीय देश में होता है और आपको जैन धर्म का प्रतिनिधित्व करने का आमंत्रण मिलता है तो आप जायेंगे या नहीं ? यदि नहीं जायेंगे तो क्यों ? क्या आप आपके किसी शिष्य को भेजेंगे ? या किसी नवयुवक को जो दीक्षा में नहीं है, तैयार करके भेजेंगे ?

उत्तर : प्रश्न मौलिक है. बहिन को चिंतन करना चाहिए कि जब हमने जगत साक्षी से परिपूर्ण अहिंसा का व्रत अंगीकार किया है परिपूर्ण अपरिग्रह की मर्यादा में चल रहे हैं, तो ऐसी स्थिति में भगवान् महावीर ने कहा कि तुम परिपूर्ण अहिंसक तभी, रह सकोगे. जबकि छोटे से छोटे जीव का उपमर्दन स्वयं करो नहीं, करते को

अच्छा समझते नहीं. यह हमारी प्रतिज्ञा है. इसका पालन करने के लिए हिंसा करके हम धर्म प्रचार नहीं कर सकते. इसीलिए हमने कपड़ा मुंह पर बांध रखा है. इससे वायुकाय के जीवों की रक्षा कर सकते हैं. यदि हम जीवों को, जो कि अपेक्षा से हमारे स्वपरिवार के सदस्य हैं, काय हनन करते हुए उपदेश दें तो यह संयमी जीवन में दोष लगाना होगा. विदेश जाने के लिए निश्चित रूप से हिंसा का प्रसंग आयेगा, वाहन में जाना पड़ेगा. इस स्थिति में हिंसा करके उपदेश नहीं दे सकते. विदेश में जाने की बात तो बहुत बड़ी है, लेकिन जहां पर हम ठहरे हुए हैं, वहां से यहां पांडाल तक आना है और बरसात की छोटी छोटी बूंदें गिर रही हैं, तो हम आ नहीं सकते क्योंकि इससे पानी के जीवों की हिंसा होती है. विदेश जाने में तो बहुत बड़ी हिंसा का प्रसंग है. परिपूर्ण समता भाव की साधना करनेवाला साधक अपनी मर्यादा में रह कर ही प्रचार-प्रसार कर सकता है जिन्होंने प्रण नहीं लिया है और जो विद्वान हैं, जीवादि तत्वों की अच्छी जानकारी रखते हैं, वे अपनी मर्यादा समझ कर विदेशों में प्रचार-प्रसार का कार्य कर सकते हैं. हम अपनी मर्यादा में रह कर ही प्रचार-प्रसार का कार्य कर सकते हैं.

प्रश्न 43 : जिज्ञासु : श्री रायचंद मगनलाल शाह :

भूतकालमां कदीपण न थई एटली भयंकर हिंसा वर्तमान कालमां भारतमां तथा विश्वमां थई रही छे. भारतनी मांसाहारी प्रजानी जरूरियात उपरांत परदेशीओना पोषण माटे भारतमांथी पशु हिंसा माटे निकास करवामां आवे छे. सरकार एने प्रोत्साहन आपे छे एने कानूनथी रोकवा माटे कोई उपाय बताववा कृपा करशो.

उत्तर : आपका प्रश्न अहिंसा से संबंधित एवं मौलिक है. आज विश्व में हिंसक भावनाओं का जिस प्रकार विस्तार हो रहा है, इस स्थिति में अहिंसा प्रेमियों के मानस में कुतूहल उत्पन्न होना स्वाभाविक है. रहा सवाल इसे रोकने का, तो इसके लिए व्यापक

स्तर पर वातावरण बनाने की आवश्यकता है. जनता को पुण्य और पाप के अतिरिक्त मांसाहार से होनेवाली हानियाँ समझाई जाय, शाकाहार के लाभ और वह मानव प्रकृति के अनुकूल है. यह समझाया जाय. जनता जागृत हो जाती है तो सरकार, जो जनता की ही है. उसे अपने आप तैयार होना पड़ेगा. जिस देशमें अहिंसा की बदौलत स्वाधीनता मिली हो उसमें हिंसा बढ़े यह अत्यंत विचारणीय ही नहीं चिंताजनक भी है.

प्रश्न 44 जिज्ञासु : श्री संपत छल्लानी :

जैन धर्म सर्वोच्च धर्म होते हुए भी विश्व में नहीं फैल सका क्या इसके लिए हमारी आपसी फूट कों जिम्मेदार ठहराया जा सकता है.

उत्तर : वास्तव में जैन धर्म के सिद्धांत सर्वोत्तम हैं, किंतु इसका अधिक प्रचार नहीं हो पाना इसकी सर्वोत्तमता में संदेह उत्पन्न नहीं कर सकता है. यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि सर्वोत्तम अथवा श्रेष्ठ तत्त्वों की उपलब्धि कम ही हुआ करती है. विश्व में कंकड, पत्थर अधिक होंगे किंतु बहुमूल्य जवाहरात कितने होंगे ? डालडा के मुकाबले शुद्ध घी कितनी मात्रा में मिलेगा ?

इसके उपरांत भी जैन धर्म के यथोचित मात्रा में प्रचारित नहीं होने में आपसी मत भेदों को भी कारण ठहराया जा सकता है. किंतु एक कारण यह भी है कि यह आप व्यापारियों के हाथ में आ गया, जिनहें धनोपार्जन के अतिरिक्त धर्म के प्रचार प्रसार का अवकाश ही नहीं मिलता है.

प्रश्न. 45 : जिज्ञासु श्री अशोक ओस्तवाल :

ध्यान योग और केवल ज्ञान की अवस्था में क्या फर्क है ? ध्यान योग गृहस्थी को होता है या नहीं ? होता है तो किन परिस्थितियों में और यदि नहीं तो क्यों ?

उत्तर : ध्यान योग एवं केवल ज्ञान का संबंध साध्य साधन भाव का माना जा सकता है. ध्यान योग की साधना जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है तो केवल ज्ञान हो जाता है.

प्रश्न का दूसरा पहलू है—गृहस्थ जीवन में ध्यान योग होता है या नहीं शास्त्रोकारों ने ध्यान के आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल चार भेद बताये हैं. इनमें दो अप्रशस्त एवं दो प्रशस्त हैं. प्रशस्त ध्यानों में से धर्म ध्यान श्रावक को हो सकता है. इस अर्थ में श्रावक को ध्यान योग हो सकता है. यह एक अलग बात है कि गृहस्थ अवस्था में रहता हुआ व्यक्ति कितनी मात्रा में ध्यान योग कर सकता है, कितना आगे बढ़ सकता है, कितनी मात्रा में सत्य और अहिंसा का पालन कर सकता है. यह विचारणीय है. जितनी मात्रा में अहिंसा, सत्य. अपरिग्रह का पालन कर सकता है उतनी ही मात्रा में वह आगे बढ़ सकता है. गृहस्थावस्था में रहता हुआ व्यक्ति सर्वथा हिंसा का त्याग नहीं कर सकता. सर्वथा सत्य का पालन नहीं कर सकता. और इनका पालन किये बिना ध्यान योग की साधना आगे नहीं बढ़ सकती. गृहस्थाश्रम में रहता हुआ व्यक्ति ध्यान योग की साधना कर सकता है लेकिन केवल ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता. एम. ए. की डिग्री लेनी है तो उसके लिए उतना ही अध्ययन करना होगा. पांचवीं कक्षा पास करनी है तो पांचवीं कक्षा का अध्ययन करना होगा. और वह क्रमशः आगे बढ़ता हुआ एक दिन एम. ए. की डिग्री भी ले सकेगा. इसी प्रकार गुणस्थान की अपेक्षा से श्रावक की पांचवीं कक्षा से ऊपर उठकर साधुत्व की उच्च कक्षाओं में प्रवेश कर ही केवल ज्ञान हो सकता है.

प्रश्न : केवल ज्ञान परिपूर्ण अहिंसा के बिना नहीं हो सकता तो भरत चक्रवर्ती को कैसे हो गया ?

उत्तर : भरत चक्रवर्ती की ज्ञान की धारा अंतर्मुहूर्त में अहिंसा के साथ आगे बढ़ती गई और वे 13 वें गुणस्थान में आ गये.

स्तर पर वातावरण बनाने की आवश्यकता है. जनता को पुण्य और पाप के अतिरिक्त मांसाहार से होनेवाली हानियाँ समझाई जाय, शाकाहार के लाभ और वह मानव प्रकृति के अनुकूल है. यह समझाया जाय. जनता जागृत हो जाती है तो सरकार, जो जनता की ही है. उसे अपने आप तैयार होना पड़ेगा. जिस देशमें अहिंसा की बदौलत स्वाधीनता मिली हो उसमें हिंसा बढ़े यह अत्यंत विचारणीय ही नहीं चिंताजनक भी है.

प्रश्न 44 जिज्ञासु : श्री संपत छल्लानी :

जैन धर्म सर्वोच्च धर्म होते हुए भी विश्व में नहीं फैल सका क्या इसके लिए हमारी आपसी फूट कों जिम्मेदार ठहराया जा सकता है.

उत्तर : वास्तव में जैन धर्म के सिद्धांत सर्वोत्तम हैं, किंतु इसका अधिक प्रचार नहीं हो पाना इसकी सर्वोत्तमता में संदेह उत्पन्न नहीं कर सकता है. यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि सर्वोत्तम अथवा श्रेष्ठ तत्त्वों की उपलब्धि कम ही हुआ करती है. विश्व में कंकड, पत्थर अधिक होंगे किंतु बहुमूल्य जवाहरात कितने होंगे ? डालडा के मुकाबले शुद्ध घी कितनी मात्रा में मिलेगा ?

इसके उपरांत भी जैन धर्म के यथोचित मात्रा में प्रचारित नहीं होने में आपसी मत भेदों को भी कारण ठहराया जा सकता है. किंतु एक कारण यह भी है कि यह आप व्यापारियों के हाथ में आ गया, जिनहें धनोपार्जन के अतिरिक्त धर्म के प्रचार प्रसार का अवकाश ही नहीं मिलता है.

प्रश्न. 45 : जिज्ञासु श्री अशोक ओस्तवाल :

ध्यान योग और केवल ज्ञान की अवस्था में क्या फर्क है ? ध्यान योग गृहस्थी को होता है या नहीं ? होता है तो किन परिस्थितियों में और यदि नहीं तो क्यों ?

उत्तर : ध्यान योग एवं केवल ज्ञान का संबंध साध्य साधन भाव का माना जा सकता है. ध्यान योग की साधना जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है तो केवल ज्ञान हो जाता है.

प्रश्न का दूसरा पहलू है—गृहस्थ जीवन में ध्यान योग होता है या नहीं शास्त्रोकारों ने ध्यान के आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल चार भेद बताये हैं. इनमें दो अप्रशस्त एवं दो प्रशस्त हैं. प्रशस्त ध्यानों में से धर्म ध्यान श्रावक को हो सकता है. इस अर्थ में श्रावक को ध्यान योग हो सकता है. यह एक अलग बात है कि गृहस्थ अवस्था में रहता हुआ व्यक्ति कितनी मात्रा में ध्यान योग कर सकता है, कितना आगे बढ़ सकता है, कितनी मात्रा में सत्य और अहिंसा का पालन कर सकता है. यह विचारणीय है. जितनी मात्रा में अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह का पालन कर सकता है उतनी ही मात्रा में वह आगे बढ़ सकता है. गृहस्थावस्था में रहता हुआ व्यक्ति सर्वथा हिंसा का त्याग नहीं कर सकता. सर्वथा सत्य का पालन नहीं कर सकता. और इनका पालन किये बिना ध्यान योग की साधना आगे नहीं बढ़ सकती. गृहस्थाश्रम में रहता हुआ व्यक्ति ध्यान योग की साधना कर सकता है लेकिन केवल ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता. एम. ए. की डिग्री लेनी है तो उसके लिए उतना ही अध्ययन करना होगा. पांचवीं कक्षा पास करनी है तो पाचवीं कक्षा का अध्ययन करना होगा. और वह क्रमशः आगे बढ़ता हुआ एक दिन एम. ए. की डिग्री भी ले सकेगा. इसी प्रकार गुणस्थान की अपेक्षा से श्रावक की पांचवी कक्षा से उपर उठकर साधुत्व की उच्च कक्षाओं में प्रवेश पर ही केवल ज्ञान हो सकता है.

प्रश्न : केवल ज्ञान परिपूर्ण अहिंसा के बिना नहीं हो सकता तो भरत चक्रवर्ती को कैसे हो गया ?

उत्तर : भरत चक्रवर्ती की ज्ञान की धारा अंतर्मुहूर्त में अहिंसा के साथ आगे बढ़ती गई और वे 13 वें गुणस्थान में आ गये.

केवलज्ञान होने के बाद फिर वे गृहस्थ में नहीं रहे. वैसी पराकाष्ठा की स्थिति आने पर ही केवलज्ञात होगा. भरत के साथ जब तक राज्य की व्यवस्था थी तब तक केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सके. उनके हाथ की अंगुली से अंगुठी गिरी, मोह ममत्व छूटा. शरीर का भी ममत्व छूटा और समता प्राप्त हुई, और वे भाव से साधु को गए. वैसी स्थिति आने पर ही केवलज्ञान हुआ.

प्रश्न 47 : जिज्ञासु श्री राजमल खटोड़ ?

महावीर भगवान के समय से ही आज तक साध्वीजी की संख्या अधिक है, जब कि संत समुदाय कम है, इसका क्या कारण है ?

उत्तर : भाई राजमल जी को मालूम है कि बहिनों का हृदय वात्सल्य भावना से अधिक परिपूर्ण होता है धर्म का संबंध हृदय की सरलता एवं निर्मलता से अधिक होता है और वह सरलता–नारी हृदय में अधिक पाई जाती है इसीलिए वे धर्म भावनाओं में भी आगे रहती है. बहिनों में कोमलता और वात्सल्य भाव कम हो जाय और पुरुषों में अधिक हो जाय तो पुरुष आगे नंबर ले सकते हैं. पुरुषों में प्रायः वैसा वात्सल्य भाव नहीं है पुरुषों में कठोरता है. बहिनों में सम भाव की मात्रा भी अधिक होती है. ये अपनी साधना के प्रति जागरुक रहती है, उनका स्वभाव वात्सल्य भाव से युक्त रहता है. पुरुष बहिनों जैसा वात्सल्य भाव नहीं रख सकते, इसलिए बहिनें धर्म ध्यान में आगे रहती है. आध्यात्मिक जीवन में भी उनसे अधिक सहयोग मिलता हैं. यही कारण हैं कि उनकी संख्या साधुओं से अधिक हैं.

प्रश्न : 48 : जिज्ञासु : श्री एस. एस. जैन :

क्या साधु समाज देश और समाज के पहलुओं से परे रह सकता है. अगर नहीं तो वह किस हद व सीमा तक अपने आपको सम्मिलित कर सकता है.

उत्तर : वकील साहब का प्रश्न मौलिक है. साधु, जिसने पूर्ण साधुता को समझा है, जो परिपूर्ण मर्यादा में रहते हुए व्यक्ति, समाज, परिवार और राष्ट्र में भावात्मक एकता और जनकल्याण के कार्यों में प्राण फूंक सकता है. वह समाज एवं देश से अलग नहीं रहता है. वह एक सीमा में रहता हुआ समाज से अनुवद्ध रहता है. तथापि वह व्यक्तिगत जीवन की दृष्टि से अलग भी होता है. एक वगीचे या फुलवारी में पुष्प अपने आप में सुगंध भर लेता है वह अपनी स्थिति से अलग हट कर प्रचार प्रसार के लिए नहीं जाता, किसी समाज या पार्टी के वीच में नहीं जाता. जिसको भी सुगंध और आक्सीजन की आवश्यकता है वह उसके समीप जाकर आक्सीजन लेकर अपने प्राणों की सुरक्षा कर सकता है. वह पुष्प जिस प्रकार व्यक्ति समाज और पार्टी को सुगंध का दान देता है, प्राण-दान देता है. वह समाज, व्यक्ति और राष्ट्र से परे होते हुए भी अपने मौलिक स्वरुप के साथ संवंधित है. वैसे ही संत समाज पूर्ण सुगंध से भरा हुआ है. वह अपनी आत्मिक साधना में रत रहता है समता मय सुगंध युक्त है. उनके पास जानेवालों में शांति का संचार होता है. इस प्रकार संत वर्ग समाज से संवंधित भी हैं और अलग भी.

प्रश्न 49 : जिज्ञासु : श्री [illegible] :

जैसा कि केवली भगवान किसी व्यक्ति का भविष्य वतला देते हैं, जैसा कि कुछ महान व्यक्तियों का मोक्ष जाना निश्चित है. इसी प्रकार हमारा भी भविष्य पूर्व निश्चित है तो फिर हमें पुरुषार्थ करने और धर्म करने की क्या जरूरत है?

उत्तर : आपका प्रश्न अच्छा है. केवलज्ञानियों की वात [illegible] में लेना. पहले आप चिंतन करिये कि भोजन करने से [illegible] होती है और भोजन से शरीर को ताकत मिलती है. वह [illegible] है. भोजन करेंगे तो भूख मिटेगी. कोई यह सोचे कि [illegible]

नहीं हिलाने है, चुपचाप कमरे में बैठ जाऊं, वह चुपचाप बैठ जाएंगा तो अन्न अपने आप भूख मिटा देगा या हाथ पैर हिलाने पड़ेंगे? पुरुषार्थ करना पड़ेगा? भूख मिटाने की ताकत अन्न में है, लेकिन हाथ पैर हिला कर भोजन करना पड़ेगा. कदाचित् हाथ पैर नहीं हिलावे और माता से भोजन देने के लिए कहे तो माता का हृदय वात्सल्य भावना से ओतप्रोत होता है, अतः वह सीधा भोजन ला कर पुत्र के सामने रख दे तो क्या इतने मात्र से उसकी भूख मिट जायेगी या पुत्र को कष्ट करना पड़ेगा. और थाली में से उठा कर मुंह में रखना पडेगा? कदाचित् वह स्वयं नवाला मुंह में नहीं ले और माता से कहे, माता अपने हाथ से उठाकर क्या उसके मुंह में रखने को तैयार हो जाय तो भी मुंह खोलने का पुरुषार्थ तो उसको ही करना पड़ेगा. यदि मुंह में क्या चला गया तो चवाने का पुरुषार्थ तो उसे ही करना पड़ेगा. चबाने का पुरुषार्थ करेगा—आंतरिक जठराग्नि पुरुषार्थ करेंगी तभी रस बनेगा और रस दनने पर ताकत आयेगी.

वही स्थिति आध्यात्मि जीवन के साथ है. केवल ज्ञानी पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का अवलोकन करते हैं. वे यह स्पष्ट देखते—जानते है कि अमुक व्यक्ति अमुक पुरुषार्थ करेगा, उसे अमुक अमुक उपलब्धि होगी। अमुक व्यक्ति पुरुषार्थ हीन हो कर बैठा रहेगा, उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा. अतः उनके ज्ञान से हमारा पुरुषार्थ प्रभावित नहीं होता है. हमें क्या पता कि केवलियों की दृष्टि में हमारा पुरुषार्थी जीवन झलक रहा है या अपुराषार्थी? अतः पुरुषार्थ ही सब कुछ है. आप पुरुषार्थ से शक्ति का विकास कर सकते हैं.

पुरुषार्थ ही भाग्य बनाता है और पुरुषार्थ से ही शुभाशुभ फल मिलता है, इसलिए भाग्य भरोसे नहीं रह कर पुरुषार्थ एवं धर्म साधना करने की आवश्यकता है. क्योंकि समस्त तीर्थंकरों ने भी पुरुषार्थ पर ही वल दिया है—यथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पुरुषाकारपराक्रम.

प्रश्न 50 : जिज्ञासु : श्री अनिल उत्तमचंदजी खिवसरा :

आत्मा इस जीवन में जो कर्म बांधता है वे सब कर्म इसी जीवन में क्यों नहीं भोगता है। उसे अगले जन्म में या और भी अगले जन्म में क्यों भोगना पडता है।

उत्तर : कर्म बंध के संबंध में एक बात समझ लें कि कर्मों का बंधन भावनाओं के अनुसार होता है. उनकी काल मर्यादा का निर्धारण कषाय के तारतम्य पर निर्भर है. यदि सामान्य कषाय के अनुसार कर्म बंध हुआ है तो उसकी स्थिति अल्प कालिक होगी और तीव्र कषाय के द्वारा दीर्घ कालिक, जो कि अनेक जन्मों तक भी टिक सकती है. एक व्यावहारिक उदाहरण लें–किसान एरंड, मक्का, जवार, गेहूं, बाजरा आदि बोता है उसका फल अल्पकाल में ले सकता है, लेकिन एक व्यक्ति आम का बीज बोता है या आम का वृक्ष लगाता है उसको फल अनेक वर्षों बाद मिलता है. वैसे ही जीवन में जिस प्रकार के कर्म जिसने बांधे हैं, जिन भावों के साथ बंधे हैं उनका फल भी उसको आगे चल कर मिलता है. निकाचित कर्मों का फल अनेक जिंदगियों के बाद भी भोगना पड़ता है.

प्रश्न : 51 : जिज्ञासु श्री राजेंद्र डूंगरवाल :

वैज्ञानिकों का दावा है कि वे चंद्रमा पर पहुचे हैं, लेकिन शास्त्रों में मेरुपर्वत की ऊंचाई उससे ज्यादा है. कौन सही है और कैसे ?

उत्तर : यह प्रश्न युगीन एवं आगमिक संदर्भों से अनुबंधित है. इस विषय में एक बात समझ लेना आवश्यक है कि जैनागमों का प्रमुख प्रतिपाद्य मुक्ति मार्ग है. भूगोल खगोल संबंधि वर्णन वहां प्रासंगिक रूप में ही हुआ है. चूंकि इस वर्णन से आत्म साधना अथवा कल्याण का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है अतः इस विषय पर अधिक चर्चा निरर्थक ही होगी. स्थूल रूप से आगमों में चंद्र को सूर्य से उपर माना गया है और अनेक चंद्र एवं अनेक सूर्य माने

गए है. किंतु आज आगमिक गणित की कुंजी छ उपलब्ध नहीं है. इधर विज्ञान भी अनेक चंद्र मानने के पक्ष में आ गया है. किंतु यह स्मरण रहे कि विज्ञान सदा परिवर्तन शील रहा है. उसकी नई खोजे पुरानी को नकारती जाती है, अतः उसे भी एकांत सत्य मान लेना भारी भूल होगी.

चंद्र पर पहुंचने के विषय में भी अभी सभी वैज्ञानिक एक मत नहीं हुए है कोई उसे चंद्र मानते है और कोइ नहीं.

सन १९७५ में उदयपुर में एक सौर वैधशाला का उद्घाटन करने के लिए तत्कालीन उप राष्ट्रपति बी. डी. जत्ती आये थे उस समय राजस्थान एवं गुजरात के अनेक मिनिष्टर भी उपस्थित्त थे. उस समय वहां एक पेम्फलेट वितरित हुआ. जिसमें यह स्पष्ट घोषणां थी कि मैसाणा रिसर्च इंस्टटीटयूट वैज्ञानिकोंका यह दावा है कि अमेरीकाने जो चंद्रमा पर जाने की घोषणा की वह मिथ्या है. दूसरे दिन उदयपुर के स्थानीय दैनिक पत्रो में तथा नव भारत टाइम्स में उस पेम्पलेट को ज्यों का त्यों प्रकाशित किया. यही नहीं नव भारत टाइम्स ने उस पर टिप्पणी भी कि इस पर्चे ने खगोल शास्त्रियो में खलबली मचा दी है.

१. नवभारत टाइम्स में मुद्रित पर्चे की अविकल कॉपी यहां प्रस्तुत है. —संपादक

क्या चांद पर अपोलो उतरा ?
सौर वैद्यशाला के उद्घाटन पर बटे पर्चे से खलबली

देश के विभिन्न भागों तथा आस्ट्रेलिया से अधि वैज्ञानिक सौर भौतिकी अनुसंधान पर संगोष्ठी में भाग लेते हैं. इस अवसर पर महेसाणा की 'दि अर्थ रोटेशन रिसर्च इंस्टीटयूट' की ओर से एक पर्चा वितरित किया गया. जिसमें वैज्ञानिक आंकडों से यह सिद्ध किया गया है कि चन्द्रमा पर अपोलो के जाने का दावा झुठा है. इसके लिए निम्न प्रमाण दिये गये हैं. अपोलो एक सौ उन्नीस मील दूर गया वहां से पूर्व की तरफ मुड कर दो लाख तीस हजार मील जा कर चंद्रमा पर उतरा. परंतु पृथ्वी की ऊंचाई का कक्ष एक सौ नव्वे मील से अधिक नहीं है और चंद्रमा दुनिया से ३१ लाख ६८ हजार मील दूर है, इसके लिए अपोलो को इतना दूर जाना चाहिए. परंतु वह अभी तक अंतरिक्ष अनुसंधान वैज्ञानिकों के अनुसार एकसो नव्वे मील से ज्यादा दूर नहीं गया. इससे यह सिद्ध हुआ कि अपोलो सीधा न जा कर पृथ्वी के ही किसी अज्ञात पर्वत पर उतर गया.

दूसरा कारण चंद्रभूमि से मिट्टी के जो तथाकथित नमूने यहां लाये गये हैं वे पृथ्वी के नमूने जैसे ही हैं यह वैज्ञानिकोंने स्वीकार किया है.

तीसरा कारण यह कि वैज्ञानिक एक तरफ कहते हैं कि चंद्रमा पर हवा नहीं है और वर्षा नहीं होती. जब कि दूसरी तरफ कहते हैं कि वहां पांच या छह इंच गहरी नमी है इससे स्पष्ट होता है कि वह चंद्रमा भूमि नहीं है.

चौथा कारण केपकेनेडी के वैज्ञानिक बार-बार कहते हैं कि चंद्रमा की बनावट पृथ्वी जैसी है. जिससे यह सिद्ध होता है कि जिस जगह अपोलो गया वह पृथ्वी का ही अज्ञात स्थान है.

पांचवां अपोलो उत्तर से दक्षिण दिशा में पृथ्वी के चक्कर काटता रहा, लेकिन वह पूर्व से पश्चिम की ओर एक सौ नब्बे मील जाने के बाद टेढा होकर पूर्व दिशा में दो लाख तीस हजार मील गया था.

छठा अपोलो चंद्रमा पर कैसे पहुंचा जब कि उडान लेते समय उसका कोण विषुवत् रेखा से सात अंश था तथा चंद्रमा और पृथ्वी में बीच की दूरी उस समय अत्यधिक थी.

सातवां अपोलो आठ, नौ, दस व ग्यारह के अतिरिक्त यात्रियों ने चंद्रमा भूमि को सपाट बताया है उसे धूल का सागर गहरे गड्ढों की भूमि, शांत हुए ज्वालामुखियों का गहरा बताया है. इससे स्वतः स्पष्ट होता है कि वह स्थान पृथ्वी का कोई अज्ञात स्थान ही है.

ऐसी स्थिति में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है अपोलो से लेकर १४-१५ तक जिस स्थान पर उतरे उसे चंद्रमा ही मान लिया जाय. हो सकता है कि वे किसी अन्य स्थान पर उतरे हों और उसे चंद्रमा मान लिया गया हो.

इसके अतिरिक्त चंद्र यात्री वैज्ञानिकों की रिपोर्ट भी परस्पर असंबद्ध है. अतः वैज्ञानिक दृष्टि से भी अभी किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंचा जा शकता है.

यहा कहा जाता है कि चंद्रमा पर भीषण शीत, धूल और आंधी के अतिरिक्त कुछ नहीं है, वहां किसी प्राणी का रहना संभव नहीं है. इसका अर्थ हुआ कि जो वातावरण वहां है वह चंद्रमा में नहीं हो शकता. अतः वह चंद्रमा भूमि नहीं है.

पृथ्वी का व्यास चंद्रमा के व्यास से चार गुणा अधिक है और चंद्रमा का व्यास पृथ्वी से सात इंच की प्लेट की तरह दिखाई देता है. यह दावा किया गया कि कथित चंद्रभूमि से पृथ्वी के चित्र खींचे गये हैं और उन्हें प्रसारित किया गया है. उनमें यह बात दिखायी नहीं देती. न ही उसके इस प्रकार कोई प्रकाश पडता है. अतः चंद्रमा से पृथ्वी के चित्र लेने का दावा भी झुठा है.

इस पर्चे ने खगोल शास्त्रियों में खलबली मचा दी है.

प्रश्न : 52. जिज्ञासु श्री मनोहरलाल जैन :

मुगलकाल में जैन धर्माचार्यों व जैन धर्म का क्या स्थान था? पाकिस्तान बनने से पूर्व वहां जैनाचार्य विचरण करते थे क्या? अब वहां जैन है या नहीं?

उत्तर : यह प्रश्न इतिहास से संबंधित है यदि हम जैन दर्शन का इतिहास देखे तो यह हजारों वर्ष पुराना ही नहीं है, जैन दर्शन का इतिहास लाखों, करोडों, असंख्य वर्ष पुराना है. वर्तमान का इतिहास काल भी हजारों वर्षों पूर्व का मिलता है. भगवान् पार्श्वनाथ और उनके पूर्व प्रभु अरिष्ठनेमि के काल के इतिहास को आज के इतिहासकार एतिहासिक पुरुष मानते हैं. जैन धर्म वर्तमान अवसर्पिणी काल की अपेक्षा से प्रभु ऋषभदेव से चल रहा है. इस दृष्टि से भी इसे असंख्य वर्ष बीत चुके हैं.

यह निश्चित है कि मुगलकाल में जैन धर्म था. जैनाचार्यों का उल्लेख मिलता है. हीर विजयजी, सिद्धिचन्द्रजी आदि का प्रभाव अकबर बादशाह पर था. बडे-बडे राजा-महाराजाओं के समय में और मुगलों के समय में जैन धर्म प्रभावी रूप में था.

दूसरा प्रश्न है पाकिस्तान में जैन धर्म है या नहीं? जिस समय हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का संघर्ष हुआ उस समय पाकिस्तान में जैन मुनि थे. वहां पर जैन लोग बसते थे. आज भी बहुत से जैन

पाकिस्तान में रहते होंगे. कुछ लोग वहीं के निवासी वन गये, कुछ लोग वहा से भागकर चले आये. अतः अव भी कुछ जैन पाकिस्तान में हो सकते हैं.

प्रश्न : 53 जिज्ञासु श्री अविनाश जैन : आत्मा का स्वरूप क्या है? आत्मा मानव में कव और कैसे प्रवेश करती है?

उत्तर : आत्मा का स्वरूप सत्, चित् आनंद मय है. सत का तात्पर्य है जिसका अस्तित्व हो. चित का तात्पर्य है जो चैतन्य हो और आनंद का अर्थ है जो परम शान्तिमय हो. जैसे यह खंभा जड पदार्थ है, इसमें चेतना नहीं है. यह उत्पन्न होनेवाला है लेकिन चैतन्य शक्ति इसमें नहीं है इसमें आनंद की अनुभूति नहीं है. आत्मा का स्वरूप सत्, चित् आनंद है.

दूसरा प्रश्न है मानव के शरीर में आत्मा कव प्रवेश करती है? आत्मा का अनादि स्वरूप है. यह अनादि काल से कर्मों से जकडी हुई वंधी हुई है. जैसे जैसे आत्मा के परिणाम वनते है वह जैसी जैसी क्रियाएं करती है वैसे वैसे कर्म आत्मा के साथ चिपकते है. शास्त्रों में ८४ लाख योनियां मानी है. यह आत्मा इन योनियों में परिभ्रमण कर रही है, अनेक वार इसने मनुष्य तन धारण किया है. यह संभव नहीं कि पहली बार ही यह मनुष्य तन में आइ हो. अनेक वार मानव तन स्वीकार किया है. वर्तमान में व्यक्ति जैसा पुरूपार्थ करता है तदनुकूल फल मिलता है. मनुष्य योनि के योग्य कर्म करता है तो मनुष्य भव मिलता है. तिर्यंच के योग्य कर्म करता है तो तिर्यंच भव मिलता है. जैसी क्रिया करता है वैसी गति मिलती है. हमारे मनुष्य योग्यतानुकूल कर्म हुए इसलिए हम मनुष्य तन में विद्यमान है. अच्छी क्रिया करते हैं तो स्वर्ग में जा सकते है, खराव क्रिया करते है तो नरक में जा सकते हैं, मनुष्य जीवन ऐसा है जिसमें चारों गति में जा सकते है.

प्रश्न : एक वैज्ञानिक ने बताया, कि गर्भ धारण करने के चार माह बाद आत्मा का प्रवेश होता है, क्या यह ठीक है ?

उत्तर : जैन तत्व ज्ञान कि दृष्टि से जसे ही शुक्र-शोणित दोनों तत्वों का संयोग होता है, वैसे ही अंतर मुहूर्त में (५, ७ मिनिट में) आत्मा आ जाती है. माता आहार ग्रहण करती है उसी के अनुसार शरीर निर्मित होता है फिर इन्द्रियां निर्मित होती है फिर क्रमशः निर्माण क्रिया ९ माह तक चलती है.

प्रश्न : चार माह बाद आत्मा आने की बात कहां तक सच है

उत्तर : संभव है आपको विज्ञान का पूरा अध्ययन नहीं है. वैज्ञानिक तो यहां तक मानते हैं कि तीन माह बाद तो यह ज्ञात हो जाता है कि गर्भस्थशिशु बालक है कि बालिका अतः जब गर्भ की स्थिति बनती है उसी समय आत्मा आती है और उसी की अध्यक्षता में शरीर निर्मित होता है.

प्रश्न : 54. श्री अशोक ओस्तवाल : योग क्या है ? जैन धर्म में योग का क्या महत्व है ? गृहस्थ जीवन में योग की साधना कैसे की जाती है ?

उत्तर : आपका प्रश्न है, योग क्या है, जैन धर्म में योग का क्या महत्त्व है. जैन दर्शन में योग का व्यापक विवेचन मिलता है. योग के विषय में प्रभु के सिद्धांत का जैनाचार्य विभिन्न रूपों में वर्णन करते है. महर्षि पतंजली ने कहा कि योग "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" योग में चित की वृत्तियां रुकती है. योग अपनी चित्त-वृत्तियों का विचारों का निरोध करनेवाला है, रोकनेवाला है. जब चित्तवृत्तियां रुक जाती है तब योग की परिपूर्ण स्थिति बनती है. लेकिन चित्तवृत्तियां रोकी नहीं जा सकती. उनका प्रवाह मोड़ा जा सकता है. आचार्य प्रवर ने गंभीर अनुशीलन के पश्चात् योग की मौलिक परिभाषा दी है— "योगश्चित्त वृत्ति संशोधः"

योग वह है जो चित्तवृत्तियों अथवा विचारो में संशोधन करता है, आचरण में संशोधन करता है. हमारे मस्तिष्क में शुभ विचार भी आ सकते है, अशुभ विचार भी आ सकते है. मुंह से सही शब्द भी निकल सकते है और गलत शब्द भी. आचरण सही भी हो सकता है और गलत भी. यह जो प्रवाह है मन, वचन और काया का वह योग है. इन प्रवाहों में जो दूसरे विकृत तत्व मिलते हैं, उनका संशोधन किया जाये. हमारे जो गलत विचार है उनका संशोधन कर दिया जाय. यह परिभाषा सही मालूम होती है क्योंकि चित्तवृत्तियां रोकी नहीं जा सकती. आंखों पर रंगीन चश्मा लगाया जाय तो रंगीन दृश्य यथारूचि रंग दिख सकता है. हमारे आचरण से रंगीनी को हटा दिया जाय. अब रहा गृहस्थ जीवन में योग का साधना का सवाल.

गृहस्थ भी मन, वचन और काया इन तीनों से अच्छे प्रयोग कर सकता है, चाहे वह घर पर, दुकान पर, या और कहीं रहे. यदि अपनी चित्तवृत्तियों को प्रशस्त दिशा प्रदान कर रहा है तो वह भी एक प्रकार से योगसाधना कर रहा है. किन्तु पूर्ण योग के लिए परिपूर्ण साधना में उतरना होगा.

योग में मूल भूत तीन तत्व हैं, मन योग, वचन योग और, काया योग। मन से चिंतन करते हैं. मुंह से वचन का प्रयोग करते हैं और काया से आचरण करते है. गलत आचरण का चिंतन नहीं करे. सही सोचें और जैसा विचार करते है वैसा ही व्यबहार करें. जीवन में व्यवहार सही नहीं बनता तो योग की अंतरंग साधना नहीं की जा सकती.

प्रश्न : 55 : जिज्ञासु चंद्रा खींवसरा :

भगवान को किसी ने नहीं देखा, फिर उनकी तरह तरह की मूर्तियां कैसे बनाई गई ?

उत्तर : भगवान को वर्तमान मे नहीं देखा है. अतः भगवान की मूल आकृति की मूर्तियां नहीं मिलती है. वाद में कलाकारों ने अपनी समझ के अनुसार मूर्तियां निर्मित कीं. यदि भगवान को देख कर मूर्तियां वनाई होती तो सब अलग अलग होतीं. किंतु आज जैसी महावीर की या ऋषभदेव भगवान की मूर्तियां मिलती हैं. प्रायः वैसी ही दूसरे भगवान की मिलती है. जिन्होंने भगवान को नहीं देखा उन्होंने अपनी कल्पना के आधार पर बनाई है, क्योंकि मूल भूत भगवान की मूर्तियां मिलती ही नहीं है.

प्रश्न 56 : जिज्ञासु श्री राजेश कांठेड़ :

महावीर स्वामी अहिंसा के अवतार हैं ऐसा क्यों कहा गया है ?

भगवान महावीर स्वामी के पीछे जितने और जो जो विशेषण लगाये गये हैं, वे यथेष्ट रूप में सार्थक विशेषण लगाये गये हैं. महावीर के जन्म के समय जो सामाजिक एवं धार्मिक वातावरण था वह हिंसा से परिपूर्ण था. वह हिंसा, हिंसा की दृष्टि से हो रही थी, ऐसी बात नहीं थी. धर्म की दृष्टि से हिंसा हो रही थी. कहीं अश्वमेघ यज्ञ हो रहा था, कहीं नर मेघ यज्ञ हो रहा था, तो कहीं पशुओं का हवन किया जा रहा था. यह सब धर्म के नाम पर हो रहा था. धार्मिक कहलानेवाले लोग हिंसा कर रहे थे. जिन मनुष्यों और पशुओं की बलि दी जा रही थीं उनके बारे में कहा जाता था कि वे स्वर्ग में पहुंच रहे हैं. ऐसी भ्रांति धर्म के संबंध में चल रही थी. तो उस समय प्रभु महावीर ने अनेक विषयों में क्रांति की। उन में एक स्वर ऐसा भी था जिसे अभयदान कहते हैं. संसार के सभी प्राणी शांति प्रिय हैं कोई मरना नहीं चाहता सभी जीना चाहते है. सब को जीने दो. इसी नारे को लेकर उस समय अहिंसक क्रांति हुई जिसने उन्हें हिंसा का अवतार कहा गया. वे एक अनूठे लोकोत्तर पुरुष हुए है. उनका जीवन ही अहिंसा मय हो गया, इसलिए वे अहिंसा के अवतार कहलाए.

प्रश्न 57 : जिज्ञासु श्री विठ्ठलभाई : दुनियाना हेतु सूं छे ? दुर्गुणोंनु मूल सूं. आवती चोबीसीमां पण तीर्थंकरों नक्की थयेला होय तो पुरुषार्थनुं बीज केटलु ?

उत्तर : विठ्ठलभाई ने पूछा है, कि दुनिया का हेतु क्या है. सुंदर प्रश्न है. वैसे दुनिया का हेतु आप किस रूप में जानना चाहते हैं. आपको पूछने का आशय यह है कि दुनिया क्यों पैदा हुई ? तो जैन दर्शन शास्त्र दुनिया को अनादिकालीन मानते हैं. कहां शुरुआत हुई इसका पता नहीं. दूसरे मतावलम्वी इसे ईश्वरीय देन मानते हैं, वहां जैन दर्शन कहता है कि सृष्टि अनादिकालीन है, अनंत काल तक चलती रहती है. इसके रूप में परिवर्तन होता है. जहां स्थल-भूमि है वहां जल-भूमि या समुद्र हो जाता है और जहां जल है वहां स्थल या पहाड हो जाते है. इस के पीछे हेतु नहीं है जो शाश्वत है उसका हेतु नहीं होता. अंडे से मुर्गी पैदा हुई या मुर्गी से अंडा पैदा हुआ ? यह अनादि है एकदूसरे से पैदा होते हैं.

इनका दूसरा प्रश्न है कर्म का मूल क्या है ? इसका उत्तर यह है कि कर्म का मूल आत्मा की राग द्वेषात्मक प्रवृत्ति है. अपने ही शुभ अशुभ प्रवृत्ति द्वारा कर्म वंधते है. कर्म वर्गणा के पुद्गल सृष्टि में भरे हैं. शरीर पुद्गल के बीच में है. आत्मा जिस समय जैसा कार्य करती है वैसे ही कर्म उसके चिपक जाते हैं. कर्म का मूल आत्मा है.

इनका तीसरा प्रश्न है कि आगामी तीर्थंकर नक्की है, फिर पुरूषार्थ क्यों ? हमें पुरूषार्थ तीर्थंकर बनने के लिए नहीं करना है आत्मा को कर्मों से मुक्त कराने के लिए पुरूषार्थ करना है. आत्मा जब कर्मों से रहित हो जाती है तब तीर्थंकर वनते है. हम ऐसा पुरूषार्थ करें जिससे आत्मा शुद्ध बन जाय. इसके अतिरिक्त तीर्थंकर कुछ ही चौबीसियों के निश्चित है अतः अन्य व्यक्ति भी तीर्थंकर नाम

कर्म का बंधन कर के तीर्थंकर बन सकते है. आनेवाली अनेक चौवीसियों में या महाविदेह क्षेत्र में.

प्रश्न 58 : जिज्ञासु श्री कालूलाल मेहता : केवल ज्ञान क्या है ? पुराने जमाने में होता था इस समय क्यों नहीं होता ? वाल ब्रह्मचारी साधु क्यों नहीं केवल ज्ञान प्राप्त करने की और अग्रसर होते ?

उत्तर : पहला प्रश्न है केवलज्ञान क्या है. केवलज्ञान वह ज्ञान है जिसके द्वारा ब्रह्मांड के तीनों लोकों में अथवा पूरे विश्व में क्या हो रहा है इस बात को एक ही समय में जान सकें, एक ही समय में देख सकें. तात्पर्य यह है कि वर्तमान में क्या हो रहा है, भविष्य में क्या होगा इसको एकही समय में देख लें. स्फटिक मणि जितनी साफ होती है, उसमें स्पष्ट दिखाई देता है उसी तरह केवलज्ञानी को पूरे ब्रह्माण्ड में क्या हो रहा है, क्या होगा यह दिखाई देता है, इसको कहते हैं. केवलज्ञान.

अब रहा सवाल की आज के युग में केवलज्ञान क्यों नहीं होता ? आत्मा की जितनी शक्ति पहले थी उतनी आज भी है. लेकिन इस आत्मा को जिस शरीर से पुरूपार्थ करना चाहिए उसमें अंतर आ गया है, १००० वाल्ट का वल्व जितना प्रकाश खुले स्थान पर फैलाता है, उतना यदि उसे एक मटकी में रख दिया जाय तो नहीं करेगा. मटकी में मटकी जितने क्षेत्र में ही प्रकाश करेगा. वर्तमान युग में इस शरीर से केवल ज्ञान प्राप्त करने योग्य पुरूपार्थ नहीं किया जा सकता इस लिए आज केवल ज्ञान प्राप्त नहीं होता. केवल ज्ञान की प्राप्ति के लिए वज्र ऋपभनाराच संहनन (हड्डियों की मजबूती) चहिए और वह आज लपलब्ध नहीं है. इस संहनन में पूरी ट्रेन भी शरीर पर से निकल जाए तो भी कुछ नहीं विगडे और यह सब कमजोरी इसह्रास काल के कारण हो रही है.

प्रश्न 59 : (अ) जिज्ञासु श्री हुकमीचंद डांगी :

बताया जाता है कि मनुष्य जीवन पाना बहुत कठिन है, लेकिन मनुष्य जीवन पाना इतना सरल हो गया है कि उसको रोकने के लिए सरकार काफी रूपया खर्च कर रही है फिर भी रोक नहीं पा रही है. तो हम कैसे माने कि मनुष्य जीवन पाना बहुत दुर्लभ है ?

(ब) यह तो सर्व मान्य है कि भगवान आदिनाथ के समय में तिथी गिनती नहीं थी फिर भी उनकी जन्म तिथि और उनके समय के श्रावकों की गिनती कैसे बताई जाती है ?

उत्तर : वस्तुत: मनुष्य जीवन पाना बहुत दुर्लभ है. किंतु केवल मानव चोले की दुर्लभता नहीं बताई है, मानवता को दुर्लभ बताया है. आज मनुष्यों की संख्या तो बढ रही है लेकिन उनमें मानवता कितनी है ? अगर मानवता बढती तो सरकार रोकने का प्रयास नहीं करती.

शास्त्रो में जो बात कही गई है वह मनुष्यत्व की है, मनुष्य चोले की नहीं. मानवता दुर्लभ है मानव दुर्लभ नहीं है. वैसे एकें-द्रिय से बेइंद्रिय बनते है और उससे भी आगे विकास करते है तो अनंत पुण्यवानी के द्वारा ही दूसरी बात यद्यपि दुर्लभता मनुष्यत्व की बताई गई है किंतु मनुष्यतन भी प्राप्त होता सहज नहीं है. आज जो जन संख्या बढ रही है और सरकार के रोके नहीं रुक रही है इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य जीवन सुलभ है. पूर्व जन्मो में जिन्होने पुण्य का अर्जन किया और देवलोक में गए है अथवा पाप के द्वारा नरक तिर्यंच में गए है वे मर कर पुनः मनुष्य गति में आ रहे है अतः यह उनके पुण्य के कारण ही मिल रहा है.

आपका दूसरा प्रश्न तिथी और गिनती के बारे में है. उस समय भी वर्ष, तीथी और महीने थे और ये अनादिकाल से चले आ रहे है. विक्रम संवत बाद में चला है. लेकिन तीथि, महीने, पर्व वर्तमान में है, भूत में थे और भविष्य में भी रहेंगे.

प्रश्न : 60 : जिज्ञासु श्री नवरतन जैन :

आजकल जैन समाज में जैन संस्कार से शादी तथा नामकरण हो रहा है. क्या उचित है या नहीं ? इस बारे में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर : ये शादी विवाह और जन्म संस्कार आदि आपके सामाजिक रीति रिवाज है. धर्म का गहरा सम्बन्ध रीति रिवाज से नहीं होता. समाज के रीति रिवाज बदलते रहते हैं, जैन शास्त्रों में विवाह और संस्कार के रीति रिवाज का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है. समाज के विधि विधान समाज बनती है. मृत्यु संस्कार के बाद संतो के पास जायेंगे तो वे मांगलिक सुना देंगे. इसी तरह विवाह संस्कार के समय उनके पास जाते हैं तो वे मांगलिक सुना देते है. साधुता की दृष्टि से उनका आपके सांसारिक कामों में सम्मिलित होना अनुचित है. संत यह कार्य नहीं करते. शादी संस्कार बंधन है. साधु के ब्रह्मचार्य की मर्यादा है. संत अगर ऐसा कार्य करें कि विवाह मंडप में जा कर मांगलिक सुनकर सम्बन्ध जुडवा दे तो यह अनुचित है.

प्रश्न : 61 : जिज्ञासु श्री रतनलाल :

हम सभी जैनी स्थानकवासी, मंदिर मार्गी आदि संवत्सरी पर्व एक साथ मनाने में क्यों असमर्थ है, इसका क्या कारण है. क्या भविष्य में यह पर्व एक साथ मनाया जायगा ?

उत्तर : इस सम्बन्ध में आपने सुना होगा मैंने कई बाते कही है. सारे जैन समाज की संवत्सरी एक दिन होती है तो मैं तत्पर हूं. मैंने यहां तक शब्दों का प्रयोग किया है कि अन्य समाजवाले मुझे बिना पूछे एक तीथि निर्धारित कर दें तो मैं इसको असली रूप देने के लिए तैयार हूं. लेकिन यह निर्धारण सर्वानुमति से हो. एक हाथ से ताली नहीं बज सकती. सभी तैयारी करें तो संवत्सरी एक रोज हो सकती है.

प्रश्न : 62 : जिज्ञासु श्री प्रकाशमल चोरडिया :

क्या भगवान महावीर ने यही उपदेश दिया कि एक ही समुदाय के ३६ आचार्य हो और इतने बडे जैन पर्व को अलग अलग दिन मनावें. क्या इसके लिए श्रावक, साधु या ग्रंथ दोषित है ?

उत्तर : भगवान महावीरने शास्त्रीय दृष्टि से वतलाया कि जिस रोज चोमासी प्रतिक्रमण किया जाय उस रोज से ४९ या ५० वें दिन संवत्सरी पर्व मनाना चाहिए और संवत्सरी के पश्चात् ७० वें दिन विहार होना चाहिए. यह शास्त्रीय उल्लेख है. इसको कोई माने या न माने. कई लोग परंपरा को बीच में ले आते है, तव शास्त्रीय उल्लेख गौण हो जाता हे भगवान महावीर के सिद्धांत एक है. सिद्धांत के अनुसार चले तो अंतर आने का प्रश्न नहीं है. आचारांग सूत्र श्वेतांवर समाज के लिए सर्व मान्य है. उसके अनुसार सारे विधि विधान सरलता से वन जाये तो सारी समस्या हल हो जाती है. इसके अनुसार नहीं चलते है इसीलिए भिन्नता आ रही है.

एक पिता ने पुत्रों से कहा कि भाई ईमानदारीसे रहना. कभी वेईमानी नहीं करना. व्यापार भी ईमानदारी से करना. आगे चलकर एक पुत्र कहता है कि आज के जमाने में हम ईमानदारी से नहीं रह शकते. हम तो वेईमानी से रहेंगे. उसने पिता का कहना नहीं माना और अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने लगा. इससे दोप पिता का नहीं है. पिता का आदेश सव के लिए समान है.

वैसे ही भगवान का उपदेश सव के लिए एक है, लेकिन आचरण करनेवालो में भिन्नता है इसलिए भिन्नता दिखती है. सिद्धांत की दृष्टि से देखे और चले तो कोई भिन्नता नहीं रह सकती.

प्रश्न : 63 : जिज्ञासु श्री जे. एम. कर्नावट :

क्या गृहस्थ जीवन यापन करते हुए मोक्ष की प्राप्ति संभव है ?

उत्तर : चूंकि गृहस्थ में रहते हुए उसे अनेक प्रकार के पाप जो

जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक है, करने पडते है, और हिंसा आदि का सेवन करते हुए मोक्ष नहीं हो सकता है.

प्रश्न : 64 : जिज्ञासु श्री दौलत जैन :

आत्मा यदि अमर है तो इसकी संख्या निश्चित है या नहीं.

उत्तर : प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र इकाई है. उसका मौलिक स्वरूप एक है किंतु इसकी संख्या गणना की जा सके इस रूप में निर्धारित नहीं है. अनंत संख्या की गिनती नहीं हो शकती ! जैसे कर्म होते है, आत्मा वैसा ही शरीर धारण करती है. एक आत्माने पशुओनी के कर्म किये है तो वह पशुओनी में चला जायेगी. देव योनि में जाने के कर्म किये है तो देव योनि में चली जायेगी. आत्मा अपने अपने कर्मो के आधार पर विभिन्न योनियों में जाती है. इसलिए व्यवहारिक दृष्टि से कहते है कि आत्मा जन्म लेती है. मरती है, किंतु वास्तव में आत्मा मरती नहीं. उसका पर्याय बदलता है. एक शरीर से दूसरा शरीर धारण करती है. आत्मा नष्ट नहीं होती, पैदा नहीं होती, पर्याय बदलती है. किंतु अपने मूल रूप में सदा बनी रहती है, इसीलिए उसे अमर कहा गया है.

वाले हैं, उत्तर नहीं दे सका तो दुनिया में अपनी बदनामी नहीं होगी।"

सेठ साहब बग्गी में बैठ कर घर की ओर रवाना हुए। रास्ते में लोग मुजरा करने लगे लेकिन सेठ साहब गुमसुम थे। लोग सोचने लगे कि क्या बात हो गई ? सम्राट के और इनके टक्कर हो गई या क्या हुआ, जो ये इतने गुमसुम हैं ? घर पर पहुंचा घर के सारे सदस्य विकल हो गये और पूछने लगे कि क्या हो गया ? सेठ ने कहा कि क्या कहूं बहुत विपत्ति आ गई है। राजा ने ऐसे प्रश्न पूछे हैं जिनका उत्तर नहीं दिया तो पांच करोड़ रूपये देने होंगे। उत्तर तो मेरी जिंदगी में भी आयेगा नहीं। दो प्रश्नों के दस करोड़ रूपये देने पड़ेंगे। सम्राट और भी प्रश्न कर सकता है। यह बात उसने सबके सामने कही। उसकी दृष्टि छोटी बहू की तरफ गई। सेठ कहने लगा कि उसने बहुत बुद्धिमत्ता की बात कही थी, लेकिन अपन सब उसकी मजाक उडाने लगे। सबने छोटी बहू की तरफ दृष्टि डाली। उस समय वह चाहती तो अपना आक्रोश निकाल सकती थी, लेकिन उसने गंभीरता से कहा "ससुर साहब, जो कुछ हुआ सो हो गया, अब चिंता मत करो और सम्राट को कह ला दो कि उस समय मैंने भोजन किया ही था कि आपने बुलवा लिया। मैं जल्दी में था, मैं समझ नहीं पाया। आपने ऐसा ना कुछ प्रश्न किया है कि उसका उत्तर तो मेरी छोटी बहू भी दे सकती है। कल दरबार में आ कर वह उत्तर देगी।" सेठ ने सोचा छोटी बहू कहे वैसा ही करना चाहिए।

मोतीलाल सेठ ने सम्राट को वैसी ही सूचना कर दी। सूचना सुनकर सम्राट की सभा में भी सन्नाटा छा गया। सब सोचने लगे कि मोतीलाल सेठ इतना होशियार है कि इन प्रश्नों को ना कुछ समझता है और ऐसे ना कुछ प्रश्नों का उत्तर स्वयं देना उचित नहीं समझता है, इसलिए उत्तर उसकी छोटी बहू देगी। वह बहुत होशियार मालूम पडती है।

सब लोग उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, दरबार में अच्छी सजावट थी। बहू को लाने के लिए अच्छा रथ भेजा गया। सेठ की पुत्रवधूने सादी पोशाक पहनी। एक हाथ में दूध का कटोरा लिया, दूसरे हाथ में घास का पूला लिया और ले कर राज दरबार में पहुंची। रास्ते में लोग सोचने लगे कि यह क्या करेगी; कुछ समझ में नहीं आ रहा है। सबमें एक जिज्ञासा बनी हुई थी। राज दरबार में सम्राट आसपास सभासद बैठे हुए थे। द्वारपाल ने आकर सूचना दी "मोतीलाल जी सेठ की पुत्रवधू आ गई है, सम्राट ने कहा "आने दो." वह सभा के बीच में पहुंच गई। उसके एक हाथ में दूध का कटोरा और दूसरे हाथ में घास का पूला था। इन दोनों चीजों को देख कर सम्राट ने पूछा–कि "क्या आप ही मोतीलाल जी सेठ की पुत्रवधू हैं ?" उसने कहा कि "जी हां।" "क्या आप प्रश्नों का उत्तर देने के लिए आई हैं ?" उसने कहा–"जी हुजूर।" "जब उत्तर देने आई हो, तो दूध का कटोरा और घास का पूला लेकर क्यों आई हो ? इससे तो कचरा फैल जायगा। दूध का कटोरा साथ में क्यों लाई हो ? क्या इतनी भूख लगती है कि बीच में दूध पिये बिना उत्तर नहीं दे सकोगी ?" उसने कहा कि "हुजूर मतलब से लाई हूं–विशेष उद्देश्य से ले कर आई हूं।" सम्राट ने कहा–"हमारा नया प्रश्न पैदा हो गया। तुम प्रश्नों का उत्तर देने आई हो तो फिर घास का पूला क्यों लाई ? उसने कहा–"हुजूर यदि कोई सत्य स्वरुप का प्रतिपादन करता हैं तो उसको इनाम मिलता है या दंड ?" सम्राट कहने लगा कि इनाम मिलता है। "लेकिन हुजूर, सत्य कटु होता है, आप कहें तो कहूं।" सम्राट सोचने लगा कि यह छोकरी क्या कटु बात कहेगी। उसने कहा "कहो, क्या कहना चाहती हो." पुत्रवधू ने कहा "घास का पूला तो मैं दीवान साहब को समर्पित करने के लिए लाई हूं।" सम्राट ने कहा दीवान मेरे राज्य की व्यवस्था करनेवाला प्रधान है। तुम उनको घास का पूला क्यों भेंट करना चाहती हो ?" सेठ की पुत्रवधू ने कहा "हुजूर,

जो पशु होते हैं, उनको घास का पूला ही चाहिए।" यह सुनते ही दीवान जी में उत्तेजना आई। सम्राट भी कहने लगा "क्या मेरे दीवान पशु हैं?" "हुजूर पूंछवाले पशु नहीं, बिना पूंछ के पशु हैं। प्रजा का संचालन करनेवाले दीवान को प्रजा के हित की बात कहनी चाहिए। लेकिन जो दीवान प्रजा के हित में नहीं सोच कर प्रजा को लूटने की बात सोचता है तो मैं उसको पशु के समान ही समझती हूं। मेरे ससुर जी ने आप का सम्मान किया था, तो क्या अपनी संपत्ति लूटवाने के लिए किया था?" दीवान ने सोचा, थोडा अपमान सहन कर लो। वह मन मसोस कर चुप हो गया।

सम्राट ने पूछा कि "दूध का कटोरा क्यों लाई हो? "हुजूर, आपको पिलाने के लिए।" आप बच्चे के तुल्य हैं, जो बच्चा होता है वह स्वयं की बुद्धि से सोच नहीं पाता। आप भी दीवानजी के कहने के अनुसार कार्य करते हैं, इसलिए मैं आपको बच्चा समझती हूं। आप दूध पीकर बुद्धिको ठीक बनाइये, अपनी बुद्धि से काम करिये दीवान जी की खोटी सलाह को मत मानिये।"

दीवानजी कहने लगे "अच्छा, तुम अपनी सीख रहने दो, प्रश्नो का उत्तर दो।" उसने कहा "हुजूर, प्रश्नों का उत्तर देने के लिए ही आई हूं। आपका पहला प्रश्न क्या है? प्रति पल प्रति क्षण क्षीण होनेवाली वस्तु क्या है। हुजूर, ऐसी वस्तु आपकी आयुष्य है। प्रत्येक मनुष्य की आयुष्य प्रति पल और प्रति क्षण क्षीण होती ही चली जा रही है।

"दूसरा प्रश्न है प्रति पल और प्रति क्षण बढ़ता रहे ऐसा कौनसा तत्त्व है?

"हुजूर, आपकी तृष्णा प्रति पल प्रति क्षण बढ़ती जा रही है।" सम्राट कहने लगे कि आपने तो कमाल कर दिया दोनों प्रश्नों का उत्तर सही दे दिया।

दीवान जी सम्राट को कहने लगे कि ऐसी नारी जिसके घर में है उसका धन हाथ नहीं आ सकता। उसने आपको बच्चा और

मुझे बिना पूंछ का पशु बता दिया। अब इसको जाने दिजिये। आगे और सोचेंगे। सेठ की छोटी पुत्र वधू विजय पा कर अपने घर चली गई।

भगवान् कहते हैं कि यह जो आपका शरीर रूपी घर है उसमें अमूल्य सम्पत्ति भरी है। इस शरीर रूपी घर को प्रदर्शन में लगा दिया तो क्या होगा ? इसको धर्म साधना में और सत्कार्यों में लगाइये। निशल्य होकर ध्यान समाधि में विचरण करिये। यही जीवन की सर्वोत्तम उपयोगिता है। सामायिक साधना में ध्यान के पूर्व विसल्लीकरणेणं से यहीं संकेत दिया गया है कि वैभव के ममत्व का शल्य भी निकाल दिया जाय।

बन्धुओ, विधि से की जानेवाली सामायिक से जीवन में समता रस उतर आता है और जिसका जीवन समता रस से ओत-प्रोत हो जाता है वह व्यक्ति जन-मन का प्रिय बन जाता है। मंगलकारी बन जाता है। तात्पर्य यह है कि सामायिक साधना से जीवन मंगलकारी बनता है। आज आप सन्त सतियों के दर्शन को मंगलकारी मानते हैं, सन्त सतियों को प्रिय क्यों समझते हैं ? आपको मालूम है कि संत मोह, माया और तृष्णा का परित्याग करके अपनी साधना की स्थिति में चल रहे हैं, इसलिए उनको आप मंगलकारी समझते हैं। इसीलिए भगवान ने चार शरणा बताये हैं। अरिहन्त का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधु का शरणा, दया धर्म का शरणा। इनके शरण में पहुंचने से जीवन की क्या स्थिति बनती है ? ऐसे मंगलकारी संत सती कहां मिलेंगे, जिनको किसी बात का लालच नहीं, जो अपनी धर्म कारणी को नहीं बेचते और प्रदर्शन नहीं करते उनका जीवन सद्गुणों से भर जाता है। वही व्यक्ति जीवन में मंगल प्रसंग उपस्थित कर सकता है।

दिनांक १९-८-८४
बोरीवली बम्बई

सामायिक भूमिका शुद्धि

अनंत उपकारी प्रभु महावीर की देशना किंवा अंतिम तीर्थंकर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी वीतराग देव का उपदेश आप अभी वीतराग वाणी के रूप में मुनिश्रीजी से सुन गये हैं। उच्च कोटि की वीतराग वाणी का जो प्रसंग आप सुन रहे हैं। वह है उच्च कोटि के श्रावक सुबाहु कुमार का वर्णन। सुबाहु कुमार भी एक अद्वितीय विशिष्ट गृहस्थ था, जिसके रूप और लावण्य संबंधी जिज्ञासा अनेक व्यक्तियों को हुई और उनके मन में अनेक तरह के संकल्प विकल्प उठे कि सुबाहुकुमार ने ऐसा कौन सा कार्य किया जिससे मनुष्य जीवन में–मनुष्य तन में आने के साथ ही साथ उन्होंने इतनी कमनीयता, इतनी कोमलता प्राप्त की। इस विषयक प्रश्न और उत्तर तो आप सुखविपाक के माध्यम से श्रवण करेंगे ही। सुखविपाक का स्वरुप वीतराग देव के मुखारविंद से प्रवाहित हुआ; जिसमें सुबाहु कुमार जैसे उच्च पात्र का निर्वचन है। उसी संदर्भ में श्रावक के १२ व्रत का उल्लेख भी हुआ है और इसी उल्लेख के अंतर्गत ९वें व्रत, सामायिक का प्रतिपादन हुआ है। इस सामायिक रुपी शिक्षा व्रत का वीतराग देव ने किस सूक्ष्मता के साथ प्रतिपादन किया यह विमर्शनीय है। यदि इस सामायिक की विधि ठीक तरह से साथ ली जाती है तो यह मानवीय पर्याय का जीवन आनंद से भर जाता है।

भव भ्रमण—सामायिक के अभाव में

विधिवत् सामायिक की आराधना नहीं करने के कारण ही यह आत्मा अनादिकाल से इस चतुर्गति संसार में परिभ्रमण कर रही है। ऊंची नीची परिस्थिति का सामना कर रही है। दिन–रात कितना संक्लेश है? कितनी अशांति है? मस्तिष्क में कितना टेंशन है?

इसका उल्लेख सांगोपांग रुप में करना शक्य नहीं है । मनुष्य स्वयं अपने भीतर की सूक्ष्म स्थितियों को नहीं समझ पाता । वह बडी बडी बातें ही समझ पाता है, और बडी बडी बातें भी दुखित हो कर मन को हल्का करने के लिए दूसरों के सामने रख देता हैं ।

प्रभु महावीर ने जो कुछ भी सामायिक का या सामायिक की विधि का स्वरुप बताया है, उस विधि संबंधी कुछ विवेचन आप सुन गये हैं । उसी संदर्भ में तस्सउत्तरी पाठ का कुछ विवेचन मैं आपके समक्ष रख गया । इस बात का संकेत भी दे गया कि तीर्थंकरों ने भी इस औदारिक शरीर से साधना की और इस शरीर का भरणपोषण अन्न, जल आदि से किया । यह शरीर विधिवत् उपयोग में आया तो आत्म साधना सुंदर तरीके से बन सकी। शरीर की अविधि से मन की अविधि बनती है और इस मन की अविधि में आत्मा स्वतः अपने निज स्वरूप को समझ नहीं पाती । इस शरीर का सदुपयोग क्या हैं ? सदुपयोग करने के उद्देश्य से जिनका सामायिक साधना में प्रवेश करने का प्रयास अंतःकरण पूर्वक है वे पुरुष समायिक के पाठ का उच्चारण करने से पहले सामायिक–योग की भूमिका तैयार करते है ।

भूमिका–शुद्धि

किसान खेत में बीज डालता है । लेकिन सहसा वह बीज नहीं डालता । गर्मी के समय उस खेत में इकट्ठी हुई भीतर की गंदगी को उड़ाता है । सूर्य की किरणें उसमें मददगार बनती हैं । जब खेत जोतता है तो उसमें जितना कूड़ा करकट है उसको निकाल कर बाहर फेंकता हैं, उसके पश्चात् जैसे ही वर्षा होती है उस खेत में बीज बो देता है । वह किसान खेती करने में अधिक सफल होता है ।

वैसे ही यह आध्यात्मिक जीवन की खेती है । किसान तो बाहर बीज बोता है, लेकिन भव्यजन इस जीवन रुपी क्षेत्र में मन

में वीज वोते हैं। मन में वीज तभी बो सकते हैं जब कि इस मन को पहले साफ सुथरा कर लिया जाता है। मन रुपी जमीन में जो कूडा करकट है उसमें हल हांकने के तुल्य ज्ञान और श्रद्धा के वल से उसकी दुर्गन्ध उडाते हैं, विकारों को निकाल फेंकते है, पाप की आलोचना करके शुद्धिकरण करते हैं और उसके पश्चात् जिसका प्राप्ति करने के लिए वे सामायिक करते हैं। इसका उल्लेख इसकी विधि में प्राप्त होता है।

लोगस्स बनाम लक्ष्य स्थिरता

जव तस्सउत्तरी के पाठ के अंतिम वाक्य का उच्चारण करते हैं तव "अप्पाणं वोसिरामि" कहते हैं। जिसका अर्थ है–इस शरीर का ध्यान छोड़ कर मैं अंदर में प्रवेश करता हूं। अंदर में क्या दिखता है, किसका चिंतन करता है, इसे आप तस्सउत्तरी पाठ में सुन गये हैं। इसमें मन का मैल धोने की प्रक्रिया बताई गई है। यदि इस धुलाई से मन स्वच्छ हो गया तो मन में सामायिक का लक्ष्य निर्धारित होता है। उसे निर्धारित करने के लिए लोगस्स के पाठ का उच्चारण किया जाता है।

सामायिक साधना में प्रवेश करते समय जिन आगमिक पाठों के उच्चारण एवं कायोत्सर्ग का विधान है उन्हें भी कुछ समझ लेना आवश्यक है। इच्छाकारेणं एवं तस्स उत्तरी के पाठ का प्रकट उच्चारण किया जाता है, जिसका स्पष्टी करण मैं पूर्व में कर चुका हूं। इसके पश्चात् कायोत्सर्ग किया जाता है। कायोत्सर्ग में जिस पाठ का उच्चारण किया जाता है, उस विषय में मुख्यतया दो परंपराएं चल रही है–एक परंपरा में कायोत्सर्ग में इच्छाकारेणं का पाठ गिना जाता है जब कि दुसरी परंपरा कायोत्सर्ग में लोगस्स के पाठ को स्वीकार करती है। यद्यपि प्रथम परंपरा भी औचित्य के वहुत निकट है और यही वहु प्रचलित भी है तथापि दुसरी परंपरा को अधिक

उपयोगी इसलिए कहा जा सकता है कि इच्छाकारेणं का प्रकट में उच्चारण कर लिया जाता है। अतः ध्यान में पुनः उसका पाठन करके आगे के लक्ष्य निर्धार की दृष्टि से लोगस्स का पाठ गिनना चाहिए। क्योंकि इस में साधना करनेवाले साधक का लक्ष्य निर्धारित होता है। मैं यह सामायिक की साधना कर रहा हूं। इस ध्यान के पश्चात् मैं सामायिक व्रत ग्रहण करने के पाठ का उच्चारण करूंगा। इससे पहले मुझे सामायिक किस लिए करनी है इसका निश्चय करना है, तो वह निश्चय लोगस्स से हो जायेगा। लोगस्स में सिद्ध भगवंतों की स्तुति है। वैसे तो चौवीसों तीर्थंकर सब मोक्ष में पधार गये। चौवीसों के नाम इस लोगस्स में भूतपूर्व न्याय की दृष्टि से हैं। जैसे कभी कोई व्यक्ति किसी पद पर था और अब उससे विलग हो चुका है तो उसके पश्चात् उसे क्या कह कर पुकारेंगे? यह भूतपूर्व राष्ट्रपति है या अमुक है। वैसे ही २४ तीर्थंकरों का गुणगान लोगस्स में हुआ है। स्तुति किसकी करना? जिन्होंने आठों कर्मों को क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लिया है, परम शांति प्राप्त कर ली है, सिद्ध स्वरूप प्राप्त कर लिया है, ऐसे सिद्ध भगवंतों का स्तुतिगान करने के लिए लोगस्स का उपयोग हुआ है। धर्म तीर्थ की स्थापना करनेवाले ये तीर्थंकर कैसे हैं? तो चौवीसों के नाम इसमें गिना दिये हैं। वैसे लोगस्स स्तुति के रूप में अनादिकाल से चल रहा है। किंतु पूर्व में उसका नाम संस्तव के रूप में था। वर्तमान में चौवीस तीर्थंकरों से नामांकित लोगस्स का जो रूप है, वह भद्रबाहु स्वामी की रचना मानी जाती है। उसका शब्दशः अर्थ सहित प्रारूप समझने का प्रयास करें।

लोगस्स	—	लोक के
उज्जोयगरे	—	उद्योत करने वाले
धम्मतित्थयरे	—	धर्म तीर्थ के कर्ता
जिणे	—	राग व द्वेष के विजेता

अरिहंते	—	अरिहंत
कित्तइस्सं	—	कीर्तन स्तुति करुंगा
चउवीसंपि	—	चौवीसों
केवली	—	केवल ज्ञानियों का
उसभं	—	ऋषभदेव को
च	—	और
अजियं	—	श्री अजीतनाथ को
वंदे	—	वंदन करता हूं
संभवं	—	श्री संभवनाथ को
अभिणंदणं	—	श्री अभिनंदन को
च	—	और
सुमइं	—	सुमतिनाथ को
च	—	और
पउमप्पहं	—	श्री पद्मप्रभु को
सुपासं	—	श्री सुपार्श्वनाथ को
जिणं	—	जिन को
च	—	और
चंदप्पहं	—	श्री चंद्रप्रभ
वंदे	—	वंदना करता हूं
सुविहिं	—	सुविधिनाथ को
च	—	और
पुप्फदंतं	—	पुष्पदंत को
सीअल	—	शीतलनाथ को
सिज्जंस	—	श्रेयांसनाथ को
वासुपुज्जं	—	वासु पूज्य को
च	—	और
विमलं	—	विमलनाथ को
अणंतं	—	अनंतनाथ को

च	—	और
जिणं	—	जिनेंद्र
धम्मं	—	धर्मनाथ को
संतिं	—	शांतिनाथ को
च	—	और
वंदामि	—	वंदना करता हूं
कुंथुं	—	कुंथुनाथ को
अरं	—	अरनाथ को
च	—	और
वंदामि	—	वंदना करता हूं
रिट्ठनेमिं	—	अरिष्टनेमि को
पासं	—	पार्श्वनाथ को
तह	—	तथा
वद्धमाणं	—	वर्द्धमान को
च	—	और
एवं	—	इस प्रकार
मए	—	मेरे द्वारा
अभित्थुआ	—	स्तुति किए गए
विहुयरयमला	—	पाप मल से रहित
पहीणजरमरणा	—	बुढापे व मृत्यु से दूर
चउवीसंपि	—	चौवीसों ही
जिणवरा	—	जिनवर
तित्थयरा	—	तीर्थकर
मे	—	मुझ पर
पसीयन्तु	—	प्रसन्न हों
कित्तिय	—	कीर्तित, स्तुति पाए हुए
वंदिय	—	वंदित

महिया	—	पूजित
जे	—	जो
ए	—	ये
लोगस्स	—	लोक में

मैं इनकी स्तुतिगान करता हूं, स्तुतिगान क्यों किया जाता है ? ये कैसे हैं ? ये निर्मल हैं पाप कर्मों से रहित हैं। केवल ज्ञान, केवल दर्शन, क्षायिक चारित्र से सम्पन्न हैं। चन्द्रमा की एक देशीय निर्मलता का उल्लेख किया है।

"चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा"

चन्द्रमा की निर्मलता सिद्ध भगवान् की निर्मलता के सामने कुछ भी नहीं है। अनन्त सूर्यों को इक्ट्ठा कर दिया जाय तो उनका प्रकाश एक तरफ और सिद्ध भगवन्तों का प्रकाश दूसरी तरफ दोनों में कोई तुलना नहीं। सिद्ध भगवन्तों का प्रकाश अजर, अमर और स्थाई है, सदा सदा के लिए हैं।

ऐसा उज्ज्वल स्वरुप मुझे प्राप्त करना है। सदा सदा के लिए उज्ज्वल स्वरुप के तुल्य बनना है। इस सब को पाने के लिए सबसे प्रथम सीढ़ी है-सामायिक। ऐसी सामायिक की विधि में ऐसे उद्देश्य का चिंतन इस ध्यान में किया जाता है।

अंधकार का प्रतीक-जड का ध्यास

कभी व्यक्ति सोचता है कि मैं ध्यान करने के लिए किसका प्रतीक सामने रक्खूं। अमुक पदार्थ को देख कर ध्यान करुं जिससे मन एकाग्र हो जाय। यह बात वही सोच सकता है जिसने सामायिक के उद्देश्य को नहीं समझा है। जो आत्मकल्याण का वास्तविक मर्म नहीं समझता है। इस ध्यान की साधना करते समय शरीर

का ध्यान भी छुडा दिया गया है। क्यों छुडाया गया ? क्योंकि शरीर नाशवान है। यदि तुम्हें नाशवान बनना है तो शरीर का ध्यान करो। नाशवान का अर्थ आप समझ गये होंगे। जैसे कपूर की टिकिया को हाथ में पकड़ कर रखते हैं तब भी कपूर उड जाता है। वैसे ही यह शरीर भी उड जाता है। आपको यह शरीर इतना अच्छा लगता है, लेकिन शरीर जीर्ण शीर्ण हो कर नष्ट होता है। संसार के जितने पदार्थ हैं, आत्मा को छोड़ कर जितना स्खन्ध रुप मैटर है, वह सब बिखरनेवाला है। यदि इन तत्वों का ध्यान किया तो हम बिखरते चले जायेंगे। शरीर के अतिरिक्त पदार्थों का ध्यान करने का तात्पर्य यह हुआ, हम अन्धकार में जा रहे हैं, शरीर प्रकाशवान है या अन्धकार युक्त है ? प्रकाशवान पदार्थ है आत्मा। इसके अतिरिक्त किस में प्रकाश है ? सूर्य में प्रकाश है, लेकिन सूर्य का प्रकाश नाशवान है। इसमें गर्मी है। शरीर को सुखाता है। लेकिन आत्मा रुपी पदार्थ अपने मौलिकरूप में विशुद्ध एवं शांत है, सदा सदा के लिए रहनेवाला है। इसलिए आपको यदि सदा सदा के लिए कायम रहना है, सदा सर्वदा शांति का अनुभव करना है, सदा सुखी रहना है तो सामायिक हेतु विधिवत् ध्यान करें। सिद्ध भगवन्तों के विशेषण का चिंतन करके यह सोचें कि जैसे सिद्ध भगवान का स्वरूप है वैसा ही मैं भी बन रहा हूं, इसीलिए सामायिक साधना है और साध्य है सिद्ध जैसा बनना वैसा ध्यान करके बैठेंगे तो अशान्ति दूर हो जायगी।

सामायिक साधना और देव

स्वर्ग में रहनेवाले देवों का शरीर मनुष्यों से अधिक चमकीला है। किंतु उन देवों को साधना करने का प्रसंग नहीं आता। वे ऐसा ध्यान नहीं कर सकते। सामायिक में आप जो लोगस्स का ध्यान करते हैं, वैसी साधना देव नहीं कर सकते। वैसी साधना का

अवसर मनुष्य को मिला है। आप कितने भाग्यशाली हैं। चौवीस घंटों में कम-से-कम ४८ मिनिट विधि से सामायिक साधना में बैठने का प्रसंग उपस्थित करते हैं और उस अविनाशी स्वरुप का चिंतन करते हैं तो आपके जीवन की गति अविनाशी स्वरुप की और होगी।

देवों की बात कहूं तो सर्वार्थसिद्ध विमान के देव ३३ सागरोपम तक उसमें रहेंगे। आखिर में उनको नीचे आना पड़ेगा और नीचे के देव और भी कम समय तक वहां रहेंगे, उनका भी ध्यान चलता है लेकिन विधिपूर्वक वे सामायिक का ध्यान नहीं कर सकते। उनका ध्यान होता है रत्नों की तरफ प्रकाश वे पसंद करते हैं। किंतु आत्मा का नहीं, रत्नों का। स्वर्ग में बड़े-बड़े हीरे मोती लटकते हैं। उनसे बहुत प्रकाश आता है। देव उन हीरों मोतियों को बहुत पसंद करते हैं और कामना करते हैं कि ये बहुत अच्छे हीरे-मोती हैं, ये मुझसे छूटे नहीं, बिलग नहीं हों। इसका परिणाम यह होता है कि आयुष्य बंध होते समय हीरों में ध्यान रहने के कारण वे पृथ्वी काय के जीव बन जाते हैं कुछ एकेंद्रिय में वनस्पति या जल के जीव बन जाते हैं। आप भाग्यशाली है, इसलिए आपको देवानुप्रिय कहते हैं। अर्थात् देवताओं के प्रिय.

क्या कहुं दिल में बहुत बातें आती है लेकिन दृष्टांत दे कर कहूंगा तो आपका समय अधिक चला जायेगा, फिर आप कहेंगे कि चौंपी नहीं चली क्योंकि कई भाई चौंपी से ज्यादा समझते हैं, भावात्मक बातों से कम समझते हैं। मैं चापी भी लेना चाहता हूं। आपको कैसा बनना है? यह आप सोचें। इस आत्मा का ध्यान विधि से सामायिक करने की ओर चला जाय तो निहाल हो जायं। वह देवों से भी बढ कर हो जावे। क्योंकि देव सामायिक नहीं कर सकते। जिसके

मन में सदा धर्म रहता है उसके चरणों में देवता भी नत मस्तक होते हैं। ऐसी स्थिति में श्रावक श्राविकाएं सामायिक साधना को ले कर चले, महान पुरुषों का चिंतन करें। सामायिक रस की एक एक बूंद हृदय में आ गई तो आगे बढते चले जायेंगे। जीवन समता रस से भरा जाएगा। विषमता जन्य समस्त समस्याएं सहज ही समाहित हो जाएगी।

ता. २०-७-८४
बोरीवली, बंबई.

सामायिक साधना : सावद्ययोग का त्याग

वर्तमान में अंतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर का शासन चल रहा है। प्रभुने अपने शासन की समुज्ज्वलता को अनवरत प्रज्ज्वलित रखने के लिए जो उपदेश दिया वह आज के भव्यजनों के लिए अतीव हितावह है। प्रभु ने साधना मार्ग का प्रतिपादन केवल्य ज्ञान की उपलब्धि के पश्चात् किया। केवल ज्ञानी के लिए सब कुछ प्रत्यक्ष हो जाता है। ज्ञान यह अरुपी स्वरुपवाली आत्मा का गुण है। और जिसने अरुपी को देख लिया, वह समस्त विश्व को जान लेगा। अरुपी को जान लिया तो रुपी को अवश्य जानेगा। रुपी को जाननेवाला अरुपी को जाने यह निश्चित नहीं।

रुप से अरुप की ओर

रुपी की शास्त्रीय परिभापा है– जिसमें गंध, रस, वर्ण और स्पर्श हो वह रुपी है, जिसमें गंध, रस आदि इन्द्रियग्राह्य गुण न हों वह अरुपी है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय आदि अरुपी हैं। आत्मा को भी इस रुपी अवस्था से अरुपी अवस्था में जाना है। हमें रुपी अवस्था में गति करते करते बहुत समय वीत गया, अब भी वीतता चला जा रहा है।

रुपी से तात्पर्य, दृश्य पदार्थ वर्ण, गंध, रस वालों से हैं। इस आत्मा ने जिन जिन पर्यायों को अंगीकार किया वे शरीर पर्याय रुपी ही है।

सबसे पहले मनुष्य का शरीर लें, वह वर्ण, गंध, रसवाला है, अतः वह रुपी है। पशु का शरीर लें वह भी वर्ण, गंध रसवाला। अतः

रूपी है। आगे एकेंद्रिय, बेइन्द्रिय, तेइंद्रिय, चौरिंद्रिय, पंचेंद्रिय के जीव, नारकी के जीव वर्ण, गंध, रसवाले हैं वे भी रूपी हैं। भगवान से गौतम ने प्रश्न किया कि आत्मा रूपी है या अरूपी है तो भगवान ने उत्तर दिया "हे गौतम आत्मा रूपी भी है, अरूपी भी है"।

भगवान ने ६ काया के जीव बताये–पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति और चलते फिरते जीव, जिन्हें आप देख सकते हैं, वह सब रूपी है। स्वरूप में रमण करना यह आत्मा का अरूपी स्वभाव है। जो साधक रूपी तक ही सीमित रह जाता है, सामान्य से ज्ञान से संतुष्टि अनुभव करता है कि मैंने ज्ञान प्राप्त कर लिया, मैं ज्ञानी हो गया,

वह व्यक्ति वहीं अटक जायेगा। उसका समस्त विकास अवरुद्ध हो जायेगा। रूपी का ज्ञान इसलिए करना है कि रूपी से अरूपी की ओर जाना है, इसलिए नहीं कि हम इतने तत्त्वों की जानकारी रखते हैं। विज्ञान अनेक तत्त्वों की जानकारी रखनेवाले हैं। लेकिन इस जानकारी से आगे का कदम क्या है इसे यदि वे जानते हैं तो इस जानकारी में सार है। यदि आगे का ध्यान नहीं है तो जैसी दूसरे विषयों की जानकारी है वैसी ही चार गतियों की जानकारी हो जायेगी। इस दृष्टि से ३२ शास्त्रों में जो कुछ कहा गया है, चार गति के संबंध में बताया गया है, रूपी शब्द से संबंधित जितना ज्ञान है वह ज्ञान मनुष्य के लिए जानकारी देता है और यह कहता है कि आगे बढ़ो। लेकिन जिन साधकों के मन में इस बात से तृप्ति आ गई कि मैंने ३२ शास्त्र जान लिये हैं, अब मैं शास्त्र की भाषा में श्रुत केवली हो गया हूं, अब आगे करने धरने को कुछ नहीं है, तो वह व्यक्ति सम्यग् ज्ञान की उपलब्धि नहीं कर सकता।

---

१. रूवी भन्ते आया, अरूवी आया ? गोयमा रूवी वि आया अरूवी वि आया.

उसने रुपी पदार्थों का ज्ञान तो पाया है, लेकिन रूपी से अरूपी की ओर जाने का ज्ञान उसमें नहीं है ।

मैं यह सूक्ष्म बात आपके सामने रख रहा हूं, आप कहेंगे कि महाराज यह क्या कह रहे हैं ? हमारी समझ में नहीं आती । लेकिन ये बातें ध्यान में नहीं ले पायेंगे, तो आगे नहीं बढ पायेंगे । जिस विद्यार्थी को वर्णमाला का प्रारंभिक ज्ञान भी नहीं है, तो वह एम. ए. का अध्ययन नहीं कर सकता ।

भगवान् ने रूपी अरूपी के संबंध में सुंदर उपदेश दिया है, लेकिन आज वे बातें गौण हो गई । साधना करनेवालों के लिए जो संदेश दिया है वह भी महत्वपूर्ण हैं किंतु आज व्यक्ति उसके मूल तक नहीं पहुंच पारहा है ।

मूल को देखें

जैसे आँखों से देखनेवाला व्यक्ति आंख से देखने का अभ्यास चालू करता है और अपनी गति बढाता है, हरे वृक्षों को देखता है तो उसका चिंतन जाता है कि यह हरियाली, हरे-हरे पत्ते क्यों हैं । सोचते सोचते उसका चिंतन वृक्ष की जड तक जाता है । जड़ पत्तियों की तरह हरी नहीं दिखती, लेकिन जड़ों में ही पत्तियां रस ग्रहण करती हैं, इसलिए उनमें हरियाली है । मनुष्य देखता है कि रूपी शरीर में हलचल कहां से आई । एक व्यक्ति हाथ हिला रहा है । एक ड्राइवर बन कर कार चला रहा है । यह सब रूपी शरीर की पर्याय की ही हलचल है । और यह हलचल मनुष्य को आगे बढ़ने की ओर इंगित करती है । आज का मानव मन हलचल का कारण जानने की कोशिश करता है, आज का मानव प्रत्येक कार्य का कारण खोज करने के लिए आगे बढता है उसकी दृष्टि जहां तक पहुंचती है, उस स्थिति को लेकर आगे बढता है और यह स्थिति वैज्ञानिक ढंग से चल रही है ।

यद्यपि मनोविज्ञान का आविष्कार भौतिक पदार्थों के सहारे हुआ और अब भी भौतिक शरीर तक सीमित है कुछ मनोविज्ञानिक अभौतिकता की ओर आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं, अर्थात् रूपी से अरूपी की ओर अन्वेषण के रूप में चल रहे हैं। वे कितना अन्वेषण करेंगे और कितने आगे बढ़ेंगे यह भविष्य की बात है। आपके समक्ष अन्वेषण का सुगम रास्ता है। नये सिरे से खोज करने की जरूरत नहीं। आपको इसके सहारे आगे बढ़ना है। आगे बढ़ने का मार्ग इतना सुगम बता दिया है कि इसी हाईवे पर चलते चलें। सड़क छोड़ने की आवश्यकता नहीं। लेकिन सड़क पर चलनेवालों को सावधानी रखने की आवश्यकता है कि कहीं एक्सीडेंट न हो जाय। यदि सावधानी रखते हैं तो गंतव्य स्थान पर पहुंच जायेंगे।

शरीर शुद्धि ही नहीं मनः शुद्धि भी

प्रभु महावीरने इस जीवन के लिए साधना का परिपूर्ण मार्ग रखा है। रूपी से ऊपर उठकर अरूपी की तरफ बढ़ने का इशारा किया है और वह इशारा सामायिक साधना के रूप में दिया है। सामायिक साधना कैसे और किस रूप में होनी चाहिए, इस विषय की जानकारी आवश्यक है। आप जो समझ रहे हैं वह रूपी तक की सीमित साधना है। हम सामायिक ले कर बैठ गये, एक आध भजन बोल दिया, माला फेर ली, समय आने पर सामायिक पाल कर चले आये और मन को सन्तुष्ट कर लिया कि मैंने सामायिक कर ली है। यह तो आवश्यक है ही, इसकी पोषाक में बैठना भी नितांत आवश्यक है, लेकिन पोषाक में बैठ कर ४८ मिनिट बिता दिये इतने मात्र से सन्तुष्टि नहीं करनी चाहिए। इसमें गहराई तक जाना चाहिए। भगवान ने निर्देशन में कमी नहीं रखी है। आपको सामायिक की विधि बताने का प्रयास चल रहा है। नवकारमन्त्र, तिक्खुत्तो का पाठ, इरियावहियं का पाठ इनका कुछ स्वरूप आपके

समक्ष रख दिया अब आगे लोगस्स का ध्यान क्यों करना चाहिए और कहां तक पहुंचने का लक्ष्य है इसे समझें। जहां वैदिक संस्कृति और अन्य संस्कृति ने शरीर शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया वहां तीर्थंकर प्रभु ने कहा कि केवल शरीर शुद्धि से अंतर की शुद्धि नहीं कर सकते। कृष्ण ने कहा कि शरीर शुद्धि के साथ साथ अंतरआत्मा को भुला नहीं सकते। जब कि वीतराग प्रभु ने कहा कि मन की शुद्धि के बिना इस रुपी शरीर की शुद्धि का सदुपयोग नहीं कर सकते। इस शरीर को कितना ही नहलावें-धुलावें यह ऊपर की धुलाई है, लेकिन अंतरात्मा की धुलाई करके शुद्धिकरण करें। चमडी के नीचे क्या भरा है, आप इसे देखकर राग द्वेष की परिणति में चले जाते हैं तो सामायिक में रस कैसे आयेगा कुदरती पदार्थ के रुप से घृणा करते है। जहां बाहर से खून देख लिया तो नाक भौं सिकोड़ेंगे किंतु इस शरीर के भीतर में खून बह रहा है ख्याल नहीं करेंगे तो आप वीतराग देव के मर्म को नहीं समझ सकेंगे। शरीर पर अशुचि पदार्थ लग गया तो वह भी कलपता नहीं है। उसे अलग कर लिया जाय, किन्तु मन को धोने की चेष्टा करें। उसको धोने के लिए इरियावहियं और तस्स उत्तरी में पावधान है उसे स्पष्ट कर दिया गया है। तस्स उत्तरी के पाठ से कहां तक धुलाई होती है इसका वर्तमान आधार क्या है इस पर प्रकाश डाला गया था।

शल्य रहित ध्यान

वास्तव में मन का शल्य नहीं निकलता तब तक मन की धुलाई नहीं हो सकती। इसे साफ करने की विधि यह है कि किस कारण से यह मन का शल्य चल रहा है, उस कारण को बाहर निकाला जाय। मन में शल्य इसलिए चल रहा है कि गुप्त रुप से पाप हो गया, उसको प्रगट करने में संकोच हो रहा है, लज्जा अनुभव करते है। वह कदाचित् आम जनता में प्रगट करने में लज्जा अनुभव

करता है तो कर सकता है, लेकिन जहां शल्य निकालना आवश्यक है वहां लज्जा का अनुभव काम नहीं देता। यदि अभी नहीं निकाला तो जिंदगी भर शल्य नहीं निकलेगा। गुप्त पाप तनाव पैदा करेगा।

कदाचित् वह ध्यान साधना करने बैठे तो समझ नहीं पायेगा कि ध्यान किस चिड़िया का नाम है। क्योंकि अंदर का शल्य रह रह कर सतायेगा। चाहे ऊपर से कितनी ही सुन्दर मुद्रा बनावे जब तक अंदर ठीक नहीं बनेगा तब तक शरीर की स्थिरता ठीक नहीं बनेगी। इसलिए शल्य निकालने का विधान किया गया है। उपयुक्त समय में इसे निकाल देना चाहिए।

जैसे कोई गुप्त रोग का मरीज डाक्टर के पास जाता है और उसे अपने रोग की हालत ठीक तरह से बयान नहीं करता तो डाक्टर उसका इलाज कैसे कर सकता है? यदि दर्द है पेट में और बताता है माथे का; तो डा. उसे माथे के रोग की दवा देगा और उससे और दूसरे रोग पैदा हो जायेंगे। यदि वह रोगी स्पष्ट रूप से डाक्टर को बता देता है कि मुझे अमुक गुप्त रोग है, तो वह डाक्टर अन्य प्रयोग नहीं करेगा और ठीक औषधि देगा। सही निदान हो जाने से उसका गुप्त रोग मिट जायगा। इसी तरह से जब तक गुप्त पाप प्रगट नहीं किया जायेगा तब तक उसका शल्य निकालने का उपाय भी ठीक तरह से नहीं हो सकेगा।

"तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्त करणेणं। विसोही करणेणं, विसल्ली करणेणं पावाणं कम्माणं, निग्घायणट्ठाए, ठामि काउस्सग्गं।"

यह तस्सउत्तरी की पाटी है। जब तक विसल्ली करणेणं अर्थात् शल्य रहित नहीं बनेंगे नहीं करेंगे तब तक आत्मा को अरूपी की ओर जाने का योग नहीं मिलेगा। आपने विसल्ली करणेणं की पाटी का उच्चारण कर दिया, किंतु मन में प्रायश्चित करने का कार्यक्रम नहीं किया तो भी कोई अर्थ सिद्ध नहीं होगा। इस अब 'करेमि

मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि" का पाठ बोल रहे हैं और उधर आपकी दृष्टि कभी इधर और कभी उधर जा रही है, तो यह क्या सूचित कर रहा है ? यह सूचित कर रहा है कि शरीर को तो एक स्थान पर रोक लिया है लेकिन मन का कुछ समय के लिए भी कन्ट्रोल नहीं कर पाये हैं । आपको ज्ञात नहीं होता है कि आपका मन इधर उधर कहां घूम रहा है । वह यह भी ध्यान रख रहा है कि कौन क्या कर रहा है, क्या नहीं ? यह ख्याल रखनेवाला कौन है ? क्या आंखे ख्याल रख रही हैं ? यदि आंखें ख्याल रखती हैं तो आंखे बन्द करके बैठे रहें । यदि आपका ध्यान कान की तरफ है तो कितना ही परिचित व्यक्ति आया है तो भी उसको पहचान नहीं पायेंगे क्योंकि मन दूसरी तरफ है । आप उसका आदर नहीं करेंगे और वह सोचेगा कि मैं इनके पास गया, लेकिन इसने मुझसे बात तक नहीं की । पर बोले कैसे, देखें तब न । आंखे देख रही हैं, लेकिन मन नहीं देख रहा है । यह आंख घूम रही है, देख रही है, रुपी पदार्थ देख रही है, लेकिन मन घूम रहा है या डोल रहा है । घड़ी में चाबी भरी हुई है इसलिए पेन्डुलम हिल रहा है। वैसे ही मन में पाप की चाबी भरी हुई है तो वह डोल रहा है । मन के डोलने की स्थिति बता रही है कि मन में संशय है वह सोचता है कि गुप्त बात कैसे प्रगट करुं लेकिन इस शल्य को निकालना चाहिए ।

आलोचना सुनने का अधिकारी

शल्य या आलोचना सुननेवाला व्यक्ति भी ऐसा होना चाहिए जिसके सामने गुप्त बात रखी जा सके । चाहे बात रखनेवाला दुश्मन बन जाय लेकिन सुननेवाला विषम नहीं बने । इस दीवाल के सामने कोई बात रखते हैं तो यह दीवाल कभी उस बात को किसी के सामने प्रगट नहीं करती । कोई भींत को तोड़ना चाहेगा

तो टूट जायेगी, लेकिन बात प्रगट नहीं करेगी। ठीक इसी प्रकार से मन के शल्य को अर्थात् अंतरंग आलोचना को सुननेवाला भी वैसा ही गम्भीर होना चाहिए। आगमों में आलोचना सुननेवाले की योग्यता का विस्तृत विवेचन आता है। वह गम्भीर हृदयी सहन शील एवं प्रत्येक बात को पचानेवाला होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति के समक्ष रखी गई आलोचना उसी तक सीमित रहती है।

मन में छिपी हुई बात किसी के सामने प्रगट की जाती है, तो मन हल्का हो जाता है, मन की धुलाई हो जाती है, सफाई हो जाती है। सफाई हो जाने की स्थिति में मन सोचेगा कि मैंने यह कार्य रुपी पदार्थ को निमित मान कर किया है। अब मुझे इससे अलग हटना है। फिर मन रुपी का ध्यान नहीं करेगा। अतः रुपी का ध्यान नहीं हो ऐसी साधना करें। रुपी के निमित जो-जो कार्य बनते हैं उनका परित्याग करें।

इस भावना से ध्यान करते हैं और ध्यान के पश्चात् सामायिक साधना करते हैं। करेमि भंते के पाठ का उच्चारण करके कहते हैं कि हे भगवन् मैं आपकी बताई हुई विधि के अनुसार चल पड़ा हूं। अब मैं सामायिक का व्रत लेना चाहता हूं। "सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि" इसका तात्पर्य क्या है? सामायिक में बाधक तत्वों का त्याग किया है। सामायिक का जो स्वरूप वीतराग देवने बताया है, उसमें जो बाधक तत्व हैं उनका परित्याग किया। अर्थात् नवीन पापों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सावद्य योगों का त्याग किया गया है। इस त्याग के विधान का आगमिक पाठ भी उक्त अर्थ के साथ समझ लें—

भंते	—	हे भगवन् !
सामाइयं	—	सामायिक
करेमि	—	करता हूं

सावज्जं	–	सावद्य–पापकारी
जोगं	–	व्यापार को
पच्चक्खामि	–	त्याग करता हूं
जाव	–	जब तक
नियमं	–	(सामायिक के) नियम का
पज्जुवासामि	–	पालन करुं
दुविहं तिविहेणं	–	दो करण, तीन योग से
न करेमि	–	स्वयं करूं नहीं
न कारवेमि	–	दूसरों से कराऊं नहीं
मणसा	–	मन से
वयसा	–	वचन से
कायसा	–	काया से
तस्स	–	उसका, अतीत में कृत पापों का
भंते	–	हे भगवन् !
पडिक्कमामि	–	प्रतिक्रमण करता हूं
निंदामि	–	निंदा करता हूं
गरिहामि	–	गर्हा-आपकी साक्षी से निंदा करता हूं
अप्पाणं	–	अपनी आत्मा को
वोसिरामि	–	वोसिराता हूं, पाप से अलग करता हूं

सामायिक–खेत की बाड

मान लीजिए आपने गन्ने का पौधा बोया है, उसको कोई नोंचे नहीं, नाश नहीं कर दे इसके लिए थोर की बाड़ लगाई जाती वैसे ही पाप प्रवृत्ति के लिए यह बाड़ लगाई जाती है । सामायिक में सावद्य योग का त्याग किया है। सावद्य योग का मतलब है मन, वचन और काया की पापकारी प्रवृत्ति । इन तीन योगों की प्रवृत्ति सावद्य भी होती है और निरवद्य भी । सावद्य का तात्पर्य है पाप

कार्यों से युक्त. पाप में भी ये तीन योग बनते हैं। पाप बढ़ाने के लिए मन भी जाता है, वाणी भी चलती है और काया भी प्रवृत्ति करती है जिस काया से वाणी और मन से पाप होता है। पाप को रोकना भी इन तीनों से ही होता है।

इन पापों की गिनती भी १८ पापों में समाहित है। जैसे पहला है प्राणातिपात यानि प्राणी की हिंसा करना नहीं। हिंसा किससे करते हैं? आप कहेंगे कि शस्त्रों से करते हैं। वह शस्त्र तो बाद में काम में आता है, पहले आपके भीतर का शस्त्र तैयार होता है मन वचन और बाद में शरीर से प्रवृत्ति होती है। तो पहले मन में तैयारी होती है। मन में विषमता आती है। विषमता के कारण एक व्यक्ति अमुक पदार्थ को ग्रहण करना चाहता। वह रूपी पदार्थ है। और दूसरा व्यक्ति भी उसी पदार्थ को ग्रहण करना चाहता है। पदार्थ एक है लेकिन दृष्टि दो हैं। यदि दो हैं तो बंटवारे का प्रसंग आ सकता है। लेकिन कब? जब कि समभाव की मात्रा हो। सम की मात्रा न हो और विषम की मात्रा हो तो, वह चाहेगा कि दोनों ही मेरे पास रहें, उसके पास न रहें। समत्व का प्रतिपक्षी यह ममत्व ही। यह समता को तोड़ने वाला है। जहां पदार्थ के प्रति ममत्व है। एक उसे ग्रहण करना चाहता है, दूसरा व्यक्ति भी चाहता है कि मैं भी इसे ग्रहण करूं तो आपस में टकराव होता है, संघर्ष होता है, एक दूसरे के प्रति क्रूर भावना बनती है कोई कोई यहां तक भी चाहते हैं कि एक दूसरे को खत्म कर दूं। मानसिक हिंसा का भाव जब सघन होता है तो वह वाणी से कहता है मानजा, मैं ऐसा कर दूंगा, वैसा कर दूंगा। नहीं मानता है तो हाथ चलाता है। इससे काम नहीं चलता है तो शस्त्र उठाकर मारना चालू करता है। इस प्रकार शस्त्र से तो हिंसा बाद में होती है, पहले मन, वाणी और शरीर से हो जाती है।

इस प्रक्रिया में दुनिया की दृष्टि में लगता है कि वह दूसरे को मार रहा है, लेकिन भगवान् महावीर कहते है कि वह अपने आपको भी मार रहा है । ऐसे व्यक्ति में विषमता बनी रहती है । मैं रतलाम से विहार करके इधर आ रहा था तो रास्ते में धूलिया से कुछ पहले राजपुर में एक मकान में ठहरने का प्रसंग आया। मकान का स्वामी मेरे पास आकर कहने लगा कि महाराज साहब, क्या किया जाय, मेरा लडका जेल में हैं । कोर्ट ने उसको आजीवन कारावास की सजा सुना दी है । मैंने पूछा कि उसने ऐसा क्या अपराध किया था, जिसमे आजीवन कारावास की सजा हुई ? "महाराज, अपराध क्या किया, टैक्स लेनेवाला आफिसर आता और बार बार कुछ न कुछ मांगता, यह वस्तु दो, वह दो और सौ दो सौ रुपये ले कर चला जाता । एक बार उसने हजार रुपये की सामग्री ले ली। दुबारा फिर आया तो मेरे लड़के ने कहा कि तुम मुझे तंग मत करो, लेकिन वह नहीं माना । मेरा लड़का गुस्से में आ गया, उसके पास पिस्तोल थी जिससे उस पर गोली चला दी और उस अफ्सर को समाप्त कर दिया । उस पर केस चला उसका आजीवन कारावास की सजा सुना दी गई ।

"गांव के लोग उसके मरने से खुश थे, क्योंकि वह आफिसर सब को तंग करता था । मैंने दस हजार रुपये उसके पीछे खर्च कर दिये फिर भी छुटकारा नहीं हुआ ।" उस भाई में विवेक नहीं था इसलिए नाशवान पदार्थ चाहता था । किंतु यहां चिंतनीय यह है कि पिस्तौल चलाने वाले ने ऑफिसर की हिंसा की या स्वयं की हिंसा भी कर दी । अब उसका परिवार कितना परेशान है और वह कारावास में दुःख भोग रहा है ।

सामायिक में सावद्य योग का त्याग करते है । जीव हिंसा का त्याग करते है मनसा, वाचा कर्मणा। झूठ बोलने का त्याग करते हैं

चोरी का त्याग करते हैं, अब्रह्मचर्य का त्याग करते हैं और परिग्रह का त्याग करते हैं।

यदि आप सामायिक में बैठे हैं और आपका पुत्र आ कर कहने लगे कि मैं अमुक-अमुक गांव में गया था, बहिन की सगाई करने का संयोग नहीं बैठा। आप सामायिक में बैठे हैं। क्या आप सामायिक में बतायेंगे कि अमुक लड़का अच्छा है? या व्यापार संबंधी बात बतायेंगे कि इतना माल ले लो? यदि आप ऐसा कहते हैं तो आप सावद्य कार्य करते हैं। गर्दन हिला देते हैं तो भी सावद्य कार्य करते हैं। अतः सामायिक में द्विकरण त्रियोग से पाप प्रवृत्तियों का त्याग करनेवाला साधक घर-गृहस्थी एवं व्यापार व्यवसाय संबंधि प्रवृत्तियों में भाग नहीं ले सकता है। कदाचित् किसी ने मोहवश किया हो, तो उसे आलोचना करके शल्य रहित हो जाना चाहिए। यदि कोई गल्ती करके गल्ती मान लेता है और आगे से सुधार करने की कोशिश करता है तो सुधार हो सकता है। यदि गल्ती को गल्ती नहीं मानता, तो अपने अंदर शल्य पैदा करता है। सामायिक कर रहा है और उसमें मन, वचन और काया का अशुभ योग चल रहा है तो फिर सामायिक की शुद्ध आराधना कैसे होगी? सामायिक का स्वरूप क्या है, वह रूपी है या अरूपी? साधु जीवन रूपी है या अरूपी? ज्ञान रूपी है या अरूपी? इसे समझने एवं अरूपी अवस्था को प्राप्त करने के लिए भगवान ने कितना सुगम मार्ग बताया है। घंटे भर के लिए मन को रोकना पड़ेगा, छोटे-मोटे कार्यों को रोकना पड़ेगा। सावद्य को रोकना पड़ेगा। हिंसाकारी कार्य नहीं करेंगे। घर में सामायिक लेकर बैठते हैं तो भी वे कार्य नहीं करेंगे? किंतु धर्म स्थान में बैठ कर सामायिक करना अधिक उचित है, क्योंकि हर घर में सामायिक या पौषध के लिए अलग स्थान या कमरा नहीं होता। अतः घर में पूरी साधना नहीं सधती। यहां इतना और समझें कि घर में सामायिक ले कर बैठे हैं और

इस प्रक्रिया में दुनिया की दृष्टि में लगता है कि वह दूसरे को मार रहा है, लेकिन भगवान् महावीर कहते है कि वह अपने आपको भी मार रहा है। ऐसे व्यक्ति में विषमता वनी रहती है। मैं रतलाम से विहार करके इधर आ रहा था तो रास्ते में धूलिया से कुछ पहले राजपुर में एक मकान में ठहरने का प्रसंग आया। मकान का स्वामी मेरे पास आकर कहने लगा कि महाराज साहब, क्या किया जाय, मेरा लडका जेल में हैं। कोर्ट ने उसको आजीवन कारावास की सजा सुना दी है। मैंने पूछा कि उसने ऐसा क्या अपराध किया था, जिसमे आजीवन कारावास की सजा हुई? "महाराज, अपराध क्या किया, टैक्स लेनेवाला आफिसर आता और बार बार कुछ न कुछ मांगता, यह वस्तु दो, वह दो और सौ दो सौ रुपये ले कर चला जाता। एक बार उसने हजार रुपये की सामग्री ले ली। दुबारा फिर आया तो मेरे लड़के ने कहा कि तुम मुझे तंग मत करो, लेकिन वह नहीं माना। मेरा लड़का गुस्से में आ गया, उसके पास पिस्तोल थी जिससे उस पर गोली चला दी और उस अफ्सर को समाप्त कर दिया। उस पर केस चला उसका आजीवन कारावास की सजा सुना दी गई।

"गांव के लोग उसके मरने से खुश थे, क्योंकि वह आफिसर सब को तंग करता था। मैंने दस हजार रुपये उसके पीछे खर्च कर दिये फिर भी छुटकारा नहीं हुआ।" उस भाई में विवेक नहीं था इसलिए नाशवान पदार्थ चाहता था। किंतु यहां चिंतनीय यह है कि पिस्तौल चलाने वाले ने ऑफिसर की हिंसा की या स्वयं की ...ा भी कर दी। अब उसका परिवार कितना परेशान है और ... कारावास में दुःख भोग रहा है।

सामायिक में सावद्य योग का त्याग करते है। जीव हिंसा का त्याग करते है मनसा, वाचा कर्मणा। झूठ बोलने का त्याग करते हैं

चोरी का त्याग करते हैं, अब्रह्मचर्य का त्याग करते हैं और परिग्रह का त्याग करते हैं।

यदि आप सामायिक में बैठे हैं और आपका पुत्र आ कर कहने लगे कि मैं अमुक-अमुक गांव में गया था, बहिन की सगाई करने का संयोग नहीं बैठा। आप सामायिक में बैठे हैं। क्या आप सामायिक में बतायेंगे कि अमुक लड़का अच्छा है? या व्यापार संबंधी बात बतायेंगे कि इतना माल ले लो? यदि आप ऐसा कहते हैं तो आप सावद्य कार्य करते हैं। गर्दन हिला देते हैं तो भी सावद्य कार्य करते हैं। अतः सामायिक में द्विकरण त्रियोग से पाप प्रवृत्तियों का त्याग करनेवाला साधक घर-गृहस्थी एवं व्यापार व्यवसाय संबंधि प्रवृत्तियों में भाग नहीं ले सकता है। कदाचित् किसी ने मोहवश लिया हो, तो उसे आलोचना करके शल्य रहित हो जाना चाहिए। यदि कोई गलती करके गलती मान लेता है और आगे से सुधार करने की कोशिश करता है तो सुधार हो सकता है। यदि गलती को गलती नहीं मानता, तो अपने अंदर शल्य पैदा करता है। सामायिक कर रहा है और उसमें मन, वचन और काया का अशुभ योग चल रहा है तो फिर सामायिक की शुद्ध आराधना कैसे होगी? सामायिक का स्वरूप क्या है, वह रूपी है या अरूपी? साधु जीवन रूपी है या अरूपी? ज्ञान रूपी है या अरूपी? इसे समझने एवं अरूपी अवस्था को प्राप्त करने के लिए भगवान ने कितना सुगम मार्ग बताया है। घंटे भर के लिए मन को रोकना पड़ेगा, छोटे-मोटे कार्यों को रोकना पड़ेगा। सावद्य को रोकना पड़ेगा। हिंसाकारी कार्य नहीं करेंगे। घर में सामायिक लेकर बैठते हैं तो भी ये कार्य नहीं करेंगे? किंतु धर्म स्थान में बैठ कर सामायिक करना अधिक उचित है, क्योंकि हर घर में सामायिक या पौषध के लिए अलग स्थान या कमरा नहीं होता। अतः घर में पूरी साधना नहीं सधती। यहां इतना और समझें कि घर में सामायिक ले कर बैठे हैं और

कोई महात्मा आ गये, आपकी संतों को दान देने की भावना हो गई, रसोईघर में फुलके रखे हैं, जो निर्जीव हैं, ऐसे फुलके महाराज को वहरा सकते हैं। किंतु सामायिक में बैठे हैं तो बहाराने के लिए आज्ञा लेनी पड़ेगी, क्यों कि उस समय आप मालिक नहीं रहे, आपने सब चीजों पर से ममत्व छोड़ दिया। घर में यदि छोटा बच्चा भी है, तो महाराज को वहाराने के लिए उस बच्चे से आज्ञा लेनी पड़ेगी।

यह चर्चा कुछ सूक्ष्म हो गई है। मूल बात चल रही थी सावद्य योग से अलग हटने की चेष्टा करेंगे तो आपको सामायिक का रस आयेगा और जीवन आनंद प्रद बनेगा।

२१-७-८४
बोरीवली-बंबई

आधुनिक विज्ञान आज के आम व्यक्ति के समक्ष एक हौआ-सा बना हुआ है। उसकी उपलब्धियो ने अनेक चमत्कृति पूर्ण आयाम प्रस्तुत किये हैं, किन्तु इस बात को पुनःपुनः भुला दिया जाता रहा है कि इस विज्ञान का मूलतः उपस्कर्ता कौन है।

अध्यात्म शास्त्र उसी विज्ञानवान चैतन्य की शक्ति का परिचय प्रदान करता है। कम्यूटर-रोबोट एवं अन्ययन्त्रो का आविष्कार कर्ता पूर्ण स्वतत्र चैतन्य देव ही है-उसकी शक्ति अमाप है, किन्तु उसके उन शक्ति स्रोतों का विपरीत दिशा में उपयोग करना ही विषमता का जनक है। उसी के कारण तनाव जन्य समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच पार दर्शी दीवालें खडी हो गई हैं। आचार एवं विचार में दिवारात्रि जितना अन्तर खड़ा हो गया है।

किन्तु इस समस्या का मूल कारण क्या है तथा इसके समाधान किस सीमा तक सफल हुए हैं तथा इसके स्थाई समाधान के क्या प्रावधान हो सकते हैं आदि विषयों पर एक मर्मस्पर्शी विहंगम विवेचन पढ़िये प्रस्तुत प्रवचन में-

—सम्पादन—

आत्मविज्ञान

सच्चा वैज्ञानिक

आज का युग यंत्रों का युग है–वैज्ञानिक युग है. इस युग की चेतना ने विकासोन्मुख दृष्टिकोण अपनाया और वह विकास की एक दिशा की ओर अग्रसर हुआ. जिन दृश्य पदार्थों की ओर वैज्ञानिकों ने दृष्टिपात किया उन पदार्थों का अनुसंधान किया. परिणाम स्वरुप अनेक उपलब्धिया हुई. आम जनमानस को चमत्कृत करने वाले तत्व भी आविष्कृत हुए. आज के आविष्कार जितने जितने आगे बढे उतनी उतनी आविष्कृतियां भी सामने आई हैं. किंतु यह आविष्कार करने वाली चेतना प्रायः बाहरी तत्वों का ही खोज करती रही हैं. यद्यपि इन बाहरी–भौतिक आविष्कृतियों ने दैहिक सुख सुविधाओं का अंबार लगाया है, किंतु निष्कर्ष में विषमताएं उत्पन्न कर मानसिक असंतुलन ही बढ़ाया है.

ऐसी स्थिति में अब उच्च कोटि के वैज्ञानिकों का ध्यान आविष्कर्ता चैतन्य पर भी जा रहा है. लेकिन आम जनता की दृष्टि बीसवीं सदी के भौतिक आविष्कारों पर ही लगी हुई है और वे उन्हें ही सब कुछ मानकर चल रहे हैं. आज का आम मानस परमुखापेक्षी हो चुका है. वह स्वतंत्रता का अनुयायी होते हुए भी परतंत्रता का अनुभव कर रहा है. शासकीय अथवा राजकीय तंत्र संबंधी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली. लेकिन जीवन की परतंत्रता दिन–प्रति दिन बढती चली जा रही है. उसे प्रत्येक वस्तु के लिए दूसरों की ओर दृष्टिपात करना पड़ता है. चलना है तो साइकिल की आवश्यकता हैं. कार, स्कुटर या अन्य साधन की आवश्यकता है. इसके बिना चला नहीं जा सकता. यह गति संबंधी परतंत्रता है. अध्ययन करना

है तो उसे उसके लिए कुछ यंत्र आवश्यक है. गणित के लिए गणना पटल कल्पयूलेटर की आवश्यकता है, उसके बिना गणित नहीं कर सकते. दुनिया के समाचारों को सुनना हैं तो उसे श्रवण करानेवाले यंत्रों की आवश्यकता है. टेलिविजन हो अथवा अन्य इसी प्रकार का साधन हों. बोलना है तो भी पर की अपेक्षा करनी पड़ेगी. जब तक माइक नहीं आयेगा, तब तक नहीं बोल सकेंगे. रोशनी के लिए बिजली और पानी के लिए नल या पाइप की तरफ देखना पडेगा. ये सारे के सारे चैतन्य की परतंत्रता बढाते जा रहे हैं. इस यंत्र युग में, आप ध्यान रखिये इस प्रकार परतंत्रता बढती गई तो आविष्कार करनेवाला चैतन्य देव पंगु होगा या विकास संपन्न ?

नारे तो बहुत लुभावने लगाये जा रहे हैं कि मानव सर्वगुण संपन्न विकासोन्मुख है. वह विकसित है. ये नारे मनुष्य को तत्काल कुछ प्रलोभन दे सकते हैं। किंतु वस्तुतः स्थिति इसके विपरीत चल रही है. इन नारों का उपयोग पर के लिए हो रहा है, स्व के लिए नहीं.

वैज्ञानिक क्षेत्र में हाई स्थिति के वैज्ञानिक फिर भी कुछ उच्च दृष्टिकोण ले कर चल रहे हैं. एक बहुत बडा वैज्ञानिक पायद्रो, जिसने यंत्रो को एक तरफ रख कर भीतरकी साधना का ख्याल किया. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह अंदर में प्रवेश पाने लगा तो उसने बहुत कुछ उपलब्धि हांसिल की. इतनी उपलब्धि हांसिल की कि १५०० किलो मीटर की दूरी पर रहनेवाले इंसान को बिना किसी यंत्र के निर्देश दिया, उसे सुलाया और जगाया. ऐसे एक नहीं अनेक वैज्ञानिक इस शरीर के भीतरी तत्वों के संबंध में आविष्कार कर रहे हैं, लेकिन उनका दृष्टिकोण जितना पर की ओर लगा हुआ है उतना स्व की ओर नहीं मुड रहा है.

आत्मविज्ञान

सच्चा वैज्ञानिक

आज का युग यंत्रों का युग है–वैज्ञानिक युग है. इस युग की चेतना ने विकासोन्मुख दृष्टिकोण अपनाया और वह विकास की एक दिशा की ओर अग्रसर हुआ. जिन दृश्य पदार्थों की ओर वैज्ञानिकों ने दृष्टिपात किया उन पदार्थों का अनुसंधान किया. परिणाम स्वरुप अनेक उपलब्धिया हुई. आम जनमानस को चमत्कृत करने वाले तत्व भी आविष्कृत हुए. आज के आविष्कार जितने जितने आगे बढे उतनी उतनी आविष्कृतियां भी सामने आई हैं. किंतु यह आविष्कार करने वाली चेतना प्रायः बाहरी तत्वों का ही खोज करती रही हैं. यद्यपि इन बाहरी–भौतिक आविष्कृतियों ने दैहिक सुख सुविधाओं का अंबार लगाया है, किंतु निष्कर्ष में विषमताएं उत्पन्न कर मानसिक असंतुलन ही बढ़ाया है.

ऐसी स्थिति में अब उच्च कोटि के वैज्ञानिकों का ध्यान आविष्कर्ता चैतन्य पर भी जा रहा है. लेकिन आम जनता की दृष्टि बीसवीं सदी के भौतिक आविष्कारों पर ही लगी हुई है और वे उन्हें ही सब कुछ मानकर चल रहे हैं. आज का आम मानस परमुखापेक्षी हो चुका है. वह स्वतंत्रता का अनुयायी होते हुए भी परतंत्रता का अनुभव कर रहा है. शासकीय अथवा राजकीय तंत्र संबंधी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली. लेकिन जीवन की परतंत्रता दिन–प्रति दिन बढती चली जा रही है. उसे प्रत्येक वस्तु के लिए दूसरों की ओर दृष्टिपात करना पड़ता है. चलना है तो साइकिल की आवश्यकता हैं. कार, स्कुटर या अन्य साधन की आवश्यकता है. इसके बिना चला नहीं जा सकता. यह गति संबंधी परतंत्रता है. अध्ययन करना

है तो उसे उसके लिए कुछ यंत्र आवश्यक है. गणित के लिए गणना पटल कल्पयूलेटर की आवश्यकता है, उसके बिना गणित नहीं कर सकते. दुनिया के समाचारों को सुनना हैं तो उसे श्रवण करानेवाले यंत्रों की आवश्यकता है. टेलिविजन हो अथवा अन्य इसी प्रकार का साधन हों. बोलना है तो भी पर की अपेक्षा करनी पड़ेगी. जब तक माइक नहीं आयेगा, तब तक नहीं बोल सकेंगे. रोशनी के लिए विजली और पानी के लिए नल या पाइप की तरफ देखना पडेगा. ये सारे के सारे चैतन्य की परतंत्रता बढाते जा रहे हैं. इस यंत्र युग में, आप ध्यान रखिये इस प्रकार परतंत्रता बढती गई तो आविष्कार करनेवाला चैतन्य देव पंगु होगा या विकास संपन्न ?

नारे तो बहुत लुभावने लगाये जा रहे हैं कि मानव सर्वगुण संपन्न विकासोन्मुख है. वह विकसित है. ये नारे मनुष्य को तत्काल कुछ प्रलोभन दे सकते हैं। किंतु वस्तुतः स्थिति इसके विपरीत चल रही है. इन नारों का उपयोग पर के लिए हो रहा है, स्व के लिए नहीं.

वैज्ञानिक क्षेत्र में हाई स्थिति के वैज्ञानिक फिर भी कुछ उच्च दृष्टिकोण ले कर चल रहे हैं. एक बहुत वडा वैज्ञानिक पायदो, जिसने यंत्रो को एक तरफ रख कर भीतरकी साधना का ख्याल किया. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह अंदर में प्रवेश पाने लगा तो उसने बहुत कुछ उपलब्धि हांसिल की. इतनी उपलब्धि हांसिल की कि १५०० किलो मीटर की दूरी पर रहनेवाले इंसान को विना किसी यंत्र के निर्देश दिया, उसे सुलाया और जगाया. ऐसे एक नहीं अनेक वैज्ञानिक इस शरीर के भीतरी तत्वों के संबंध में आविष्कार कर रहे हैं, लेकिन उनका दृष्टिकोण जितना पर की ओर लगा हुआ है उतना स्व की ओर नहीं मुड रहा है.

यदि व्यक्ति को सर्वतंत्र स्वतंत्र बनना है तो उसे स्व की ओर दृष्टिपात करना होगा. यह शरीर पिंड देखने में तो छोटा है, लेकिन इसमें जो ताकत है, जो शक्ति है वह शक्ति अन्य तत्वों में नहीं है.

कम्प्युटर का निर्माता

कम्प्युटर भी दुनिया के सामने आ रहा है. उससे उचित प्रश्नों के उत्तर ले सकते हैं. लेकिन इस कम्प्युटर से पूछा जाय कि तुम स्वयं कौन हो ? तो क्या वह उत्तर दे सकता है कि मैं अमुक हूं ? कम्प्युटर भी तो यंत्र ही है, इसका आविष्कार करनेवाला व्यक्ति उससे भिन्न है. वह इसमें उचित रुप में परिवर्तन कर सकता है. यह ताकत इस चैतन्य देव की है और वह चैतन्यदेव इस मनुष्य शरीर में विराजमान है. इस चैतन्य का ध्यान यदि स्वयं की ओर मुड जाता है तो वह ऐसे बहुत बड़े आश्चर्यकारी नवीन आविष्कार कर सकता है. जो संपूर्ण विश्व के सर्वतोभावी विकास के साधन बन सकते है. आवश्यकता इतनी है कि आविष्कारक स्वयं को पूर्ण रुपेण समझने में समर्थ हो जाय ।

इस शरीर में रहने वाला चैतन्य देव स्वयं में परिपूर्ण है, उसके उपर पर्दा पडा हुआ है. वह अपने आपको आवृत करके बैठा है. यही मूल में भूल हो रहीं है. जिसका परिणाम आज इस मानव समाज को भुगतना पड रहा है. आत्म विकास के लक्ष्य के अभाव में ही आज मनुष्य-मनुष्य का प्रति पक्षी बन रहा हैं, वह पर पदार्थों के अधिक से अधिक संग्रह में लग रहा है. मानवी भावनाओं को तिलांजली दे कर दानवी भावनाओ में बहता जा रहा है. एक मानव दूसरे मानव के साथ कैसा व्यवहार करे ? वह एक दूसरे को क्या समझे ? एक दूसरे का परस्पर क्या कर्तव्य है ? इन बातों का ख्याल नहीं करने के कारण आज समता सहिष्णुता एवं स्नेह सद्भाव की बहुत कमी होती जा

रही हैं. यदि वह आविष्कर्ता आवरण से परे अपने आप को देखने की चेष्टा करे तो समझ लेगा कि जो चैतन्यशक्ति अपने आप में है वहीं दूसरे में है. मैं जैसे आवरण के भीतर आवृत हूं, मैं अबाध सुख की कामना करता हूं. अपने लिए प्रतिकूल परिस्थिति नहीं चाहता हूं–अनुकूल अवस्था में रहना चाहता हूं। वैसी ही भावना पड़ोसी के अंदर है. पडोस में रहनेवाला इंसान भी यही चाहता हैं कि मुझे पर्याप्त रुप से सुख सुविधा के साधन उपलब्ध हो. मुझे कभी कोई गर्म हवा नहीं लगे, मैं दुख या झंझट में नही पडूं. मेरे साथ कोई धोखा नही करे. जैसी बात व्यक्ति स्वयं चाहता हैं, वैसी ही दूसरा चाहता है. और जैसी दूसरा चाहता हैं, वैसे ही समस्त मानव अपने आप में चिंतन करते हैं. क्योंकि सभी का चैतन्य तत्व मूल रुप में एक है. जैसे मनुष्य के शरीर की बनावट एक सी हैं–किसी–किसी में किंचित् अंतर आ सकता है. किंतु सामान्य रुप से मानव जाति एक हैं; उससे समग्र मनुष्य जाति की पहचान हो जाती है. केवल वस्त्र या पोषाक से मानव भिन्न भिन्न रुप में दिखाई देते हैं. रहन सहन का परिवेश अलग अलग होते हुए भी मानव–मानव एक हैं.

मानवीय शरीर भी एक तरह से पोषाक हैं उसके भीतर रहने वाला विज्ञानवान तत्व है वह भी एक सा है. प्रभु महावीरने कहा :

'जे आया से विण्णाया, जे विण्णाया से आया.'

जो आत्मा है वह विज्ञानवान है और जो विज्ञानवान है वह आत्मा है. विज्ञान गुण है और विज्ञानवान गुणी है. गुण गुणी से अलग नही रहता. अतः विज्ञान आत्मा का मौलिक गुण है–चेतना का मूल स्वरुप है. वह सभी चेतनाओं में मूलतः समान है. जब मूल तत्व एक हो जाता है तो अध्यात्मवाद और भौतिकवाद का आपेक्षिक समन्वय सहज साध्य हो जाता है.

विज्ञान का जनक

आजकल दृष्टिकोण विषम हो रहा है. मानव चिंतन करता है कि भौतिक विज्ञान बिल्कुल अलग है और आध्यात्मिक विज्ञान बिल्कुल अलग है। इन दोनों के बीच में बहुत बडी दीवार है. इसी नासमझा के कारण संग्रह, विग्रह और विषमता का वायुमंडल बन रहा है. जिसके पास भौतिक विज्ञान, आदि सामग्री है वह दुसरे की सामग्री को भी अपने अधीन करना चाहता है, दबाना चाहता है. जिसे वह सामग्री उपलब्ध नही हैं वह भी उन्ही भावो में चल रहा है. जो इन भावोंवाला व्यक्ति होगा वह व्यक्ति कुछ अलग तरीके से चलेगा. और जो विस्तारवादी नीति का होगा वह अलग तरीके से चलेगा। यह सारा मतभेद, विभिन्नताएं भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान के रहस्य को नही समझने का परिणाम है. भौतिक विज्ञान का जनक कौन है और आध्यात्मिक विज्ञान का जनक कौन है ? भौतिक विज्ञान का जनक भी विज्ञानवान आत्मा है और आध्यात्मिक विज्ञान का जनक भी वही विज्ञानवान आत्मा है. दोनों का जनक एक है, एक ही पिता के दो पुत्र हैं। एक बाह्य दृष्टि धारण कर रहा है अर्थात् आर्थिक दृष्टि से संपन्न हो रहा है और दूसरा आंतरिक व्यवस्था को सुव्यवस्थित बना रहा है। एक ही पिता के दोनों पुत्र–इस जीवनरुपी परिवार की सुव्यवस्था के लिए कार्य कर रहे हैं। यदि मानव में यह दृष्टिकोण आ जाता है तो विषमता से सहजतया समता में आया जा सकता है। श्रमण भगवान् महावीर कहते है कि यदि विज्ञानवान मूल चेतना को लक्ष्य करके चलना है तो जो चैतन्यदेव इस शरीर रुपी पोषाक के भीतर रह रहा है उसे हम शरीर की पोषाक के आवरण के कारण अलग न समझें। आवरण के कारण चैतन्य चैतन्य में भेद न करें। सब की चेतना एक सरखी है। सब सुख चाहते हैं। सब एक निष्ठ हैं लेकिन मैं मेरे अस्तित्व को तो कायम रखना चाहता हूं, किंतु दूसरे के अस्तित्व को समाप्त कर देना चाहता हूं तो यह उचित नहीं है। पडोसी के अस्तित्व के बिना

आपका अस्तित्व कैसे रहेगा? आप जीना चाहते हैं तो पडोसी भी जीना चाहता है। इसीलिए तो प्रभु महावीर का संदेश है कि जीओ और जीने दो। तुम जीना चाहते हो तो पडोसी को भी जीने दो। क्योंकि सब आत्माएं चैतन्य की दृष्टि से समान हैं। इस शरीर की व्यवस्था का निर्माता भी यह चैतन्य आत्मा है। इसने अपने विज्ञान का कोई उपयोग नहीं किया उसके परिणामस्वरुप भिन्न-भिन्न शरीर की उपलब्धि हुई।

विषमता का मूल

यही विज्ञानवान आत्मा मनुष्य के अतिरिक्त पशु पक्षी आदि समस्तप्राणियों में पायी जाती है। यह मूल भूत सिद्धांत समझ में आ जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि सब में चैतन्यदेव है और सब अपना अस्तित्व रखना चाहते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य हो जाता है कि व्यक्ति जैसा आचरण अपने लिए पसंद करता है वैसा ही दूसरों के लिए भी करें। जब व्यक्ति इस व्यवहार की भूमिका पर आ जाता है तो फिर इन साधनों का तथा समस्त नाशवान पदार्थों के संग्रह की वृत्ति नहीं रह पायेगी। फिर समवितरण की भावना होगी और सम व्यवहार का प्रसंग आयेगा। ऐसी स्थिति में ही सामायक और समता भाव का रस आपकी तृप्ति करेगा और दूसरों को भी तृप्ति देगा।

जिस सामायिक का विवेचन मैं कर रहा हूं वह सामायिक समता का सृजन करनेवाली है और उसका उद्देश्य विभिन्नता को समाहित करके सब के भीतर एकत्व भावना का प्रादुर्भाव करना है।

जब हम मूल चेतना के रुप में एक हैं-मूल विज्ञानवान की दृष्टि से एक हैं तो इस विज्ञानवान के बाह्य परिवेश को ले कर जो विभिन्न उपाधियां आयी हैं उन्हें समाप्त कर दी जाय। क्योंकि वह उपाधि किसी के पास स्थाई रहनेवाली नहीं है। स्थाई रहने-

वाला तत्त्व स्वयं का विज्ञान है, स्वयं का आचरण है, व्यवहार है, प्रत्येक मानव को विशुद्ध भाव ले कर चलना है। ऐसा होने पर आज की जो विषमताएं है उनका बेहतर समाधान हो सकता है।

इतिहास के पृष्ठ उलट कर देखें तो आपको ज्ञान होगा कि समस्याओं के समाधान करने में और तत्व की खोज करने में इंसान ने कमी नहीं रखी है। आप परिवार की समस्या का हल करना चाहते हैं। सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं का हल भी खोजना चाहते हैं और विश्व के अशांति को भी दूर करने की भावना रखते हैं इसके लिए अनेकानेक प्रयत्न भी चलते रहे हैं। फिर भी इन उद्देश्यों का समाधान क्यों नहीं हुआ, इसका सिंहावलोकन करने की आवश्यकता है।

सिंहावलोकन

सिंहावलोकन का तात्पर्य दार्शनिक दृष्टिकोण से दर्शनकारों ने रूपक के साथ बतलाया है।

असलीसिंह आनंद के साथ शयन करता है। वह किसी भी प्राणी को सताना नहीं चाहता। जब तक कि उसमें वास्तविक क्षुधा की जागृति नहीं होती, उसे भूख नहीं लगती। तब तक वह मस्ती से सोया रहता है। उस वक्त उसके पास में होकर बकरी निकल जाय, पशु चला जाय, मानव चला जाय, वह किसी को भी नहीं सतायेगा। लेकिन जब उसमें तीव्र क्षुधा जागृत होती है तब वह अपने स्थान से उठ कर खुराक के लिए चलता है. लेकिन चलता है बड़ी मस्ती के साथ. जब वह अपनी मस्ती में झूमता हुआ चलता है तो उसे पास में हो कर शिकार योग्य प्राणी चला गया तो उसको ख्याल नहीं रहता। लेकिन आगे चलने के बाद जब स्मृति आती है कि वह अपनी खुराक के लिए निकला था पर इतनी दूर आने पर भी मुझे खुराक क्यों नहीं मिली. क्या कारण है? क्या मैं अपनी

मस्ती में चलता रहा और शिकार पास से निकल गया, कहीं खुराक पीछे तो नहीं रह गई है ? थोड़ी देर तक वहीं खड़ा रह कर वह पीछे की ओर दृष्टिपात करता है, वह एक विशेष लहजे में अपना मुंह घुमा कर देखता है । उसकी इस देखने की विशेष प्रक्रिया को सिंहावलोकन कहते हैं अवलोकन कर वह पीछे शिकार को देखकर लौटता है । और दौड़ कर शिकार को पकडता है । यही सिंहावलोकन न्याय कहलाता है ।

समस्याओं का सही समाधान

मैं भी आज इस बंबई महानगरी के नागरिकों को, महानगरी के माध्यम से देश के नागरिकों को, राष्ट्रीय भक्तों को, उनके माध्यम से विश्व के मानवों को थोड़ा संकेत की भाषा से कहना चाहता हूं कि आपने बहुत कुछ उपाय किया विभिन्न समस्याओं को हल करने के लिए और कर रहे हैं । विभिन्न पार्टियों का निर्माण हुआ, व्यक्तियों के अधिकार में सत्ता और संपत्ति रही, अलग अलग संस्थाओं का निर्माण हुआ, तंत्र व्यवस्था जनता की थाती बनी । जनता द्वारा चुने हुए शासक सामने आये । सब कुछ हुआ । शस्त्रों का प्रयोग किया, विज्ञान का विस्तार हुआ । ईतना सब कुछ होते हुए भी आप उस सिंह की तरह मस्ती में, धुन में तो नहीं चल रहे हैं ? आज सिंह की तरह पुनरावलोकन की आवश्यकता है । समस्याओं का हल ढूंढने के लिए, इतना प्रयत्न किया फिर भी वे प्रयत्न विफल क्यों जा रहे हैं ? कहीं हमारे मूल में भूल तो नहीं रह गई है । किंतु इसका अवलोकन कौन करे ? जिनको वास्तव में अपनी समस्या हल करनी है । उसका तो इस ओर ध्यान जा सकता है; किंतु जिनका विश्व की समस्याओं से कोई वास्ता नहीं, सिर्फ अपने तुच्छ स्वार्थों से वास्ता है । जो अपने हित के लिए पड़ोसी को नष्ट करने को तत्पर हो जाते हैं, अपने जीवन को सुरक्षित रखने के लिए हजारों का

अहित करने को उत्सुक हो जाते है। उन्हें समस्याओं के सिंहावलोकन से क्या प्रयोजन है?

जहां मूल चैतन्य के लक्ष्य को छोड़ कर दृश्य पदार्थों की ओर आसक्ति पूर्ण दृष्टि वनी हुई है, वहां व्यक्ति आसक्ति के नशे में झुमता हुआ चला जाता है—उसे अपने आसपास का अहसास ही नहीं होता है। उसका जीवन द्विरुप वना रहता है वह दुनिया को कहता है कि मैं तुम्हारे हित के लिये कार्य कर रहा हूं। निर्माण की योजनाएं वना रहा हूं। किंतु उसकी कथनी करनी में गहरा अंतर रहता है। वह पीछे मुड कर नहीं देखता। यही कारण है कि इतने नारे लगाये जा रहे हैं, समस्या को हल करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं फिर भी हल नहीं हो सका? लगता है अधिकांश प्रयास अपने अहं के प्रदर्शन हेतु हो रहे हैं। पर इतने मात्र को पुनरावलोकन नहीं कहते हैं। सिंहावलोकन का तात्पर्य है पीछे मुड कर पुनः देखें।

कई वार व्यक्ति सोचता है कि मैं क्यों देखूं। मेरे साथ सारा शहर चल रहा है। किन्तु गतानुगतिकता का वह चिंतन नितांत भ्रांतिपूर्ण है। प्रत्येक मानव का यह कर्तव्य है कि उसका सव के साथ सम भाव का व्यवहार हो, उसके जीवन में समता की सर्जना हो। यदि सही अर्थों में यह सिंहावलोकन हो जाता है, अपने आपको देखने और चैतन्य को खोजने की स्थिति वन जाती है तो आगे के समस्त विरोधाभास समाप्त हो जाते हैं, केवल भौतिक तत्व और आध्यात्मिक जीवनमें ही विरोधाभास नहीं है। आज व्यक्ति-व्यक्ति में विरोधाभास चल रहा है। साथियों के प्रति चिंतन क्या है? अपने प्रति क्या चिंतन कर रहे हैं? चिंतन के अनुरुप वोल रहे हैं या विपरीत वोल रहे हैं? विचारों के अनुरुप व्यवहार रख रहे हैं या विचार एक तरफ जा रहे हैं और व्यवहार दूसरी तरफ जा रहा है? दुनिया को कुछ और ही दिखा रहे हैं और अंदर से कुछ और

ही कर रहे है। आज अधिकांशतया ऐसा ही कुछ हो रहा है। व्यक्तियों के विचार-उच्चार एवं आचार में समरुपता-समस्वतरता नहीं है। किया कुछ और जा रहा है और दिखाया कुछ और जा रहा है। यह बात केवल व्यावहारिक जीवनमें ही सीमित नहीं रही है। अपने तुच्छ स्वार्थों के पीछे व्यक्ति अध्यात्म में भी ब्लेक करने में नहीं चूकते हैं। एक रुपक लीजिए।

पोथी के बेंगन–बनाम कथनी करणी

एक विद्वान महाशय आम जनता के बीच में व्याख्यान दे रहे थे-उनकी स्पीच चल रही थी। उनकी भाषा बड़ी लालित्य युक्त थी। शब्दों का चयन सुन्दर तरीके से हो रहा था। वाणी का प्रवाह प्रभावोत्पादक ढंग से चल रहा था। वक्ता के वक्तव्य का विषय बैंगण को तो आप लोग जानते होंगे वह एक तरह की सब्जी होती है।

वक्ता महोदय बेंगन के विपरित पक्ष का प्रतिपादन करने लगे और कहने लगे कि बेंगण किसी को नहीं खाना चाहिए। इसमें यह दोष है, वह दोप है आदि। श्रोता सब एक भाव से सुन रहे थे। उन्हीं श्रोताओं में वक्ता महोदय की सुपुत्री भी बैठी हुई थी। वह कोमल हृदयवाली थी। जीवन की द्विरुपता को वह नहीं समझती थी; वह एक ही स्वरुप जानती थी। उसके ख्याल में अब तक यह था कि व्यक्ति जैसा स्वयं करता है वैसा ही कहता है। कथनी और करनी में अंतर नहीं होता है। इसी दृष्टिकोण से उसने सुना और सोचा कि लगता है आज पिता श्री को बेंगन के संबंध में कोई अनोखा ज्ञान उत्पन्न हुआ है। इन्हे बेंगन के दोषों का ख्याल आ गया है। इतने समय तक पिता श्री को बेंगण की प्रतिकूलता का ज्ञान नहीं था, इसलिए पिता श्री बेंगण की सब्जी के बिना कभी भोजन करते ही नहीं थे। लेकिन आज इनके व्याख्यान से यह स्पष्ट है कि अब पिता जी बेंगण का साग कभी नहीं खायेंगे। मेरी

माता जी प्रतिदिन की तरह पिता जी के स्वभाव के अनुरुप आज भी बेंगण का साग तैयार करेगी । यदि मैंने सावधानी नहीं बरती तो आज घर में महाभारत छिड़ जायेगा । घरेलू संघर्ष तीव्र हो जायेगा । मेरा कर्तव्य है कि मैं इस विषय की जानकारी माता को दे दूं । इन भावना को संजाये हुए वह बड़ी शीघ्रता से अपने घर पहुंची और मातुश्री से कहने लगी–"मातु श्री, आज आपने साग किसका तैयार किया है ?" माता ने कहा "पुत्री, तुझे ज्ञात है कि तुम्हारे पिताश्री बेंगण के साग के बिना भोजन नहीं करते । बेंगण उनको अत्यधिक प्रिय है, इसीलिए वही साग तैयार कर रही हूं ।" पुत्री ने कहा–"माता जी, आज भूलकर भी यह साग तैयार मत करना ।" माता ने पूछा–"क्यों क्या हो गया ?" आज पिता जी को अपूर्व ज्ञान हुआ है । आज उन्होंने बेंगण के प्रतिकूल गुणों को इतना उभारा है कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती । इसीलिए निश्चित रुप से कहती हूं कि पिता जी अब कभी बेंगण नहीं खायेंगे । आज अगर बेंगण का साग तैयार कर दिया तो पिता जी को अवश्य क्रोध आ सकता है और घर में संघर्ष छिड़ सकता है । आपके और पिता जी के बीच में बहुत कहासुनी हो जायगी ।" उस मां ने पुत्री की बात सच्ची मानी और जो बेंगन का साग तैयार कर रही थी उसे एक तरफ रख दिया ।

माता ने बेंगण का साग नहीं बनाया । अन्य साग तैयार करने लगी । जैसे ही वक्ता महाशय वक्तव्य दे कर अपने घर पहुंचे, उन्हें क्षुधा लग रही थी, प्रति दिन की तरह भोजन करने के स्थान पर बैठ गये, भोजन सामने आ गया लेकिन उनका प्रिय साग बेंगण नहीं आया तो, उनके मस्तिष्क में विकृति आई और वे गर्म हो गये । क्योंकि जिसकी जिस पदार्थ के साथ अत्यधिक आसक्ति होती है, वह व्यक्ति उस पदार्थ को ही देखता है, अन्य को नहीं । वे खुली लगाम–वाणी का प्रयोग करने लगे । खुली लगाम का अर्थ

आप समझ गये होंगे। किन शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। किन का करना चाहिए–इसका उन्हें भान नहीं था। इन शब्दों से पत्नी को कितना संक्लेश होगा, इस की आत्मा कितना कष्ट पायेगी, कितनी दुखित होगी वे इसका बिल्कुल ख्याल नहीं रख पाये। क्योंकि वेंगन के प्रति आसक्ति थी। वे वेंगन को सब कुछ मान रहे थे। वे अपने साथ साथ पत्नी और परिवार को भी भूल गये। ऐसे शब्दों की शृंखला बांध दी जिससे पत्नी को मरण–सी पीडा होने लगी। पीपल के पत्ते की तरह कांपते हुए उसने कंपित स्वर में कहा–"नाथ, यह मेरा अपराध नहीं है, मैं तो वेंगन का साग बना रही थी, लेकिन आपकी पुत्रीने कहा कि पिता श्री वेंगन का साग अब नहीं खायेंगे। मैंने समझा कि पुत्री सच बोल रही है, इस दृष्टिकोण से मैंने साग परिवर्तित किया।" उसने पुत्री को आवाज लगाई वह आ गइ। उसने कहा–"छोकरी तूने क्यों गलत बात कह दी।" पुत्री नम्र भाव से कहने लगी "आपने हजारों लोगों के समक्ष वेंगन पर दोष लगाया। मैंने समज लिया कि आज वेंगन का साग पिता जी नहीं खायेंगे। आपके कथन के अनुरुप ही मैंने बात कही।"

विद्वान कहने लगा कि छोकरी तुझे मालूम नहीं "खाने का वेंगन और होता है और कथन वेंगन और होता है।" जो प्रतिदिन खाता हूं। वह वेंगन दूसरा है।" पुत्री कहने लगी "यह ज्ञान तो मुझे आज ही मिला है।"

विचार–आचार में अंतर

यही स्थिति आज अधिकांश मानवों की हो रही है। विचार कुछ और होते हैं। और कथन और व्यवहार कुछ और होता है। वे अपने जीवन के टुकड़े करके चल रहे हैं। पर यह सब किस के पीछे ? पर पदार्थ के पीछे।

सभी चैतन्य देव एक हैं। एक चैतन्य की दृष्टि से इंसान अपने इस मूल स्वरूपी चैतन्य को भूलता जा रहा है। वह ऐशो आराम और फेसेलिटी के साधन संजोग कर चल रहा है- उसकी अंधाधूंध उपलब्धि के लिए कहता कुछ और है, करता कुछ और। क्या यही दशा आज के अधिकांश व्यक्तियों की तो नहीं हो रही है।

आज व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र या विश्व-शांति की श्वांस नहीं ले पा रहा है। आज घातक अस्त्रों के नये-नये आविष्कार हो रहे हैं। न मालूम किस समय विस्फोट हो जाय, जनता के प्राण लूट ले, कोई नहीं कह सकता। इसके पीछे यदि अन्वेषण किया जाय, खोज की जाय तो एक ही बात कहां जायेगी कि मरे जो दूजा हम करावें पूजा." मरनेवाले दूसरे हैं हम तो अपनी पूजा कराते रहें अर्थात् मान, प्रतिष्ठा बनाये रखें। चाहे उनके पीछे जनता का कुछ भी हाल हो रहा हो। किंतु बंधुओ, यह समस्या का सही हल नहीं है। इसलिए मेरा सुझाव है, एक परामर्श है-यदि इस महानगरी के प्रबुद्ध व्यक्ति इस सुझाव को ठीक समझते हों तो ऐसा वायुमंडल तैयार करें, सबसे पहले व्यक्ति अपने आपको देखे कि मेरे अंदर समता की स्थिति कितनी है और विषमता कितनी है? मैं क्या कर रहा हूं, क्या करना चाहता हूं और मुझे क्या करना चाहिए? प्रत्येक नागरिक यह चिंतन करे. लेकिन वह चितन दिखावटी न हो, स्वयं के अंतर को स्पर्श करनेवाला हो, आंतरिक स्फूरणा के साथ हो तो वह पायेगा कि मैं जो कुछ भी कर रहा हूं वह गलत कर रहा हूं। जो कुछ मेरा व्यवहार हो रहा है, वह ठीक नहीं हो रहा है. मैं दूसरों का अस्तित्व भी स्वीकार करके चलूं. सबके शरीर में चैतन्य विराजमान है जो शाश्वतता को लिए हुए है। यदि सब के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए सबसे सहयोग लेने की भावना रहेगी. यथा

स्थान–यथायोग्य समान व्यवहार होगा, तो चैतन्य नई अंगड़ाई लेगा और अपने अंदर नूतन विकास का सूत्र प्राप्त होगा.

मानवीय तन का उपयोग

सौभाग्य से हमें यह मानवीय तन मिला है. आज इस मानवीय तन का कैसा उपयोग हो रहा है? क्या स्वतंत्रता के स्वरुप को समझने के लिए या स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए इसका उपयोग हो रहा है या दिन प्रतिदिन परतंत्रता का स्वरुप खोजा जा रहा है ? आप कहेंगे कि हम तो स्वतंत्र हैं, किंतु मुझे संतुष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। मैं पहले ही कह चुका हूं कि आपने राजकीय स्तर की स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है अन्य देश के शासक हेट, स्व देश के अर्थात् अपने देश के लोग शासन बने। इतने मात्र से माना जाने लगा है कि हम स्वतन्त्र बन गये–हम स्वतन्त्र देश के नागरिक हो गये। अब हमको कुछ नहीं करना है। यह जो भ्रांत धारण बन गई है उसे हटाने के लिए ही मेरा संकेत है। जब तक आपका चैतन्य देव सर्वगुण स्वतन्त्र नहीं बनेगा, अपनी त्रुटियों पर नियन्त्रण नहीं करेगा, तब तक आप स्वतंत्र नहीं माने जा सकते। आप कहेंगे कि अपनी त्रुटि क्या है ? स्वयं की त्रुटि यह है कि इस शरीर पिंड में क्या–क्या रचना है, यह शरीर किस रुप में है, इसमें कौनसा तत्व काम कर रहा है और किसको कितनी दूर ले जा रहा है यह अनुसंधान, निरीक्षण और परीक्षण का समय आगया है। उच्चस्थिति के वैज्ञानिक इस परीक्षण में लग चुके हैं, लगने जा रहे हैं। लेकिन आम जनता प्रगाढ़ निद्रा में सो रही है। आप कहेंगे कि हम जग रहे हैं, आपकी बात सुन रहे हैं किंतु मैं संशोधन दूंगा कि आप देख अवश्य रहे हैं, सुन अवश्य रहे हैं, किंतु जरा सिंहावलोकन न्याय की दृष्टि से अंतरावलोकन करिये कि हम किसके लिए जग रहे हैं, किसके लिए देख रहे हैं ? क्या जिसके लिए जगना चाहिए, उसके लिए जग रहे हैं ? नहीं, आप बाहरी पदार्थों की आसक्ति के लिए

जग रहे हैं। आप अधिक से अधिक ममत्व भाव के लिए जग रहे हैं, समत्व भाव के लिए नहीं।

इस वैज्ञानिक यांत्रिक युग में आप मेरी बात सुनना शायद कम पसंद करेंगे। पसंद करें या न करें इसका मुझे कोई विचार नहीं, आग्रह नहीं। मुझे जो हितकर लगा, कल्याणप्रद लगा। विश्व शांति के लिए जो अमोघ सूत्र है. जिसे मेरी अंतर आत्मा ने स्वीकार किया, वही बात कह रहा हूं। कदाचित् आप पसंद नहीं करेंगे, लेकिन कोई बात नहीं, मुझे नाराजगी नहीं। आप सोचेंगे कि महाराज का ऐसा उपदेश हमें पसंद नहीं है। आपको पसंद नहीं है तो न सुनें। मुझे तो अपनी खोज करनी है। आप यह चिंतन नहीं करें कि आपकी मन भाती बातें ही सुनाता रहूं। मुझे आपसे चन्दा चिट्ठा नहीं लेना है, संपत्ति नहीं बटोरनी है। मैं प्रभु महावीर के सिद्धांत के अनुसार पांच महाव्रतों को जगत साक्षी से स्वीकार कर चुका हूं। वह इसलिए के इस शरीर में रहनेवाला चैतन्य स्वतंत्र बनेगा। यह उद्देश्य नहीं कि रुपये, पैसे, वैभव, यश कीर्ति के लिए भागूं। यदि यह वृत्ति अपना ली तो मेरा उद्देश्य किधर रह जायगा और मैं किधर रह जाऊंगा। मेरा उद्देश्य यह है कि इस शरीर पिंड में रहते हुए मुझ में भौतिक दृष्टि से और आध्यात्मिक दृष्टि से जो दोष रह गए हैं, उनको दूर किया जाय।

मैं समता का दृष्टिकोण आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूं। आप तटस्थ भाव से इस विषय पर चिंतन मनन करें और कदाचित् आपको लगे कि इस सम्बन्ध में सुझाव देने हैं, तो दे सकते हैं। छोटा बच्चा भी परामर्श देता है, तो मैं प्रतिपल ग्रहण करने को तैयार हूं! बड़े देते हैं तो उनको भी सुनने को तैयार हूं। जो सुझाव दें, वे मेरे सुझाव भी सुन लें और सुन कर आत्म-शांति विश्व-शांति का मार्ग खोज कर निकाल लें तो आज के लिए यह

वहुत वड़ी उपलब्धि होगी। किंतु स्मरण रहे यह आविष्कार करने-वाला चैतन्य देव ही है। यदि इस चैतन्य देव का आध्यात्मिक नियन्त्रण भौतिकता पर आ जाता है तो सारी समस्या हल हो सकती है।

इस भावना के साथ चिंतन मनन करेंगे तो कल्याण होगा। ।।

दिनांक २२-७-८४
बोरीवली, (पूर्व) बंबई

अयाचित संदेश

चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर की समस्त देशना जीवन साधना का अमृत पाथेय है, किंतु उन्होने जीवन की अंतिम एवं निर्वाण प्राप्ति की पूर्व घडियों में अपुट्ठ वागरणा अर्थात् बिना पूछे बिना किसी के प्रश्न के अपनी आंतरिक अनुभूति का जो उपदेश दिया, वह कितना महत्वपूर्ण एवं उपादेय है इसे प्रत्येक तटस्त व्यक्ति समझ सकता है। परिवार का मुखिया, जिसने अपने जीवन में अनेक उतार चढ़ाव देखें हों। उन उतार चढ़ाव के बीच में उसने अपने आपको कैसा ढाल कर जीवन को सुरक्षित रखा है, विशिष्ट पुरुष आपनी अंतिम अवस्था में परिवार को कहे, मैंने जिंदगी के अंदर जिन जिन वातों का आचरण दिया, ठोकरें खाई, सम्मान भी पाया। लेकिन उस आचरण के परिणाम स्वरुप एक स्थायी रुप का तत्व मैंने अर्जित किया वह तत्व मैं आप लोगों को वताना चाहता हूं। इस शरीर को छोड कर चले जाने के पश्चात् वह तत्व मेरे साथ ही रह जायेगा, आप उसका लाभ नहीं उठा पायेंगे। इसलिए आप ध्यानपूर्वक सुनें। मैं अपना निजी अनुभव वता रहा हूं जिससे आप इस जीवन में भी सुख सुविधा पूर्वक रह सकें और अगले लोक के लिए भी तैयारी कर सकें।

मुखिया की अंतिम सीख

ऐसी शिक्षा यदि कोई मुखिया देता है तो उसके परिवार के सदस्य कितना ध्यानपूर्वक सुनते हैं? उसका कितना महत्व समझते हैं? जव परिवार का मुखिया भी विना पूछे शिक्षा देता है तो उसे कितने गौरव और चाह के साथ सुना जाता है। तो प्रभु महावीर

तो सारे जगत के पितामह थे। त्रस और स्थावर जीवों के लिए वे कल्याण प्रद थे, ऐसे तीर्थेश महाप्रभु द्वारा प्रदत्त अयाचित शिक्षाओं का कितना महत्व होगा! क्योंकि तीर्थंकर महाप्रभु "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावनाओं को ले कर चलने वाले होते हैं।

वह साधना वसुधैव कुटुम्बकम् की परिधि में ही होती है। सम्पूर्ण संसार को अपना परिवार जानकर चलनेवाला पुरुष ही साधना में अग्रसर हो सकता है। एक छोटे से परिवार के दायरे में रहनेवाला व्यक्ति कितना ही कुछ सोंचे कि मैं परिवार में रहता हुआ राग द्वेष से दूर रह कर, परिपूर्ण समभाव में रमण करता रहूंगा, किंतु यदि वह परिपूर्ण जीवन की साधना में लगा रहना चाहता है। तो फिर उसको चंद सदस्यों के लगाव में रहने की क्या आवश्यकता है? उसको तो संसार के समस्त प्राणियों के साथ समभाव का व्यवहार करना हैं समभाव के व्यवहार का तात्पर्य यह नहीं कि एक व्यक्ति दुर्गणों को ले कर चलता है और एक सद्‌गुणों को ले कर चलता है तो दुर्गुणी और सद्‌गुणी दोनों का [illegible] [illegible] से सत्कार करे यह समभाव नहीं, विषम भाव है। [illegible] भाव का अर्थ यह है कि जिसमें जो गुण है उसे [illegible] [illegible] सत्कार दिया जाय, गुण के अनुरुप व्यवहार करेंगे। [illegible] [illegible] उस पर द्वेष नहीं करेंगे, लेकिन उसका सत्कार [illegible] की तरह नहीं करेंगे। सद्‌गुणी की तरह दुर्गुणी का [illegible] [illegible] [illegible] वह समझेगा कि मेरा सत्कार सद्‌गुणी की [illegible] [illegible] सद्‌गुण लाने की क्या आवश्यकता है। वह [illegible] [illegible] करता रहेगा। जिसका सत्कार सम्मान [illegible] [illegible] [illegible] हों तो उसको वढ़ावा नहीं दिया जाय। [illegible] चलनेवाली आत्मा सद्‌गुणों को [illegible] [illegible] करेगी जिससे दुर्गुणी को शिक्षा [illegible] वनूं और मेरा अधिक से [illegible] [illegible]

द्वेष नहीं करें । मुझे अपने आपको सद्गुणी बना कर आगे बढ़ना है इसलिए मैं सद्गुणी को नमस्कार करूं ।

आप तीर्थंकरों के जीवन को देखें, उनकी दिनचर्या का अध्ययन करें, केवल ज्ञान के पश्चात् उनके उपदेश का ख्याल करें । भगवान् महावीर परम समत्व की साधना करके सदा सदा के लिए केवल ज्ञानी हो गये । उस समय यदि किसी ने प्रश्न किया कि अमुक व्यक्ति अमुक प्रकार की प्ररूपणा करता है, वह कैसा है ? प्रभु महावीर ने स्पष्ट कहा कि वह मिथ्या है । मिथ्या को मिथ्या कहना दोष नहीं, सत्यवादिता है । आगम में स्पष्ट वाक्य है, उसने मिथ्या कहा, ऐसा मैं कहता हूं ।' परम सम भाव में रहते हुए ही उन्होंने यह प्रतिपादन किया । इस प्रतिपादन के पीछे उनका जो व्यवहार था वह समभाव की परिधि में ही आता है । यदि वे घर में रहते तब भी ऐसा ही कहते । वे चरम शरीर थे, उसी भव में मोक्ष जानेवाले थे । "जो समताधारी है उसको एक रुप होना चाहिए । मिथ्या को मिथ्या और सम्यग् को सम्यक् ही कहना चाहिए ।

परिवेश का महत्व

जगत के सब प्राणी अपनी आत्मा के तुल्य हैं, तो सब के साथ सम भाव रखना है । जो परिवार के साथ रहते हुए छोटे से छोटे सदस्य के प्रति अच्छा व्यवहार रखते हैं और अन्यों के प्रति अच्छा व्यवहार रखने में संकोच कर रहे हैं । यह अनुचित है । चंद सदस्यों के लिए सब कुछ करने को तैयार हैं तो दूसरे प्राणियों के लिए पड़ोसियों के लिए भी सब कुछ करने को तैयार होना चाहिए ।

तीर्थंकर पहले राजा रह चुके हैं, परिवार में रह चुके हैं उन्होंने सब कुछ देख लिया था भोग लिया था, किन्तु वे उससे चिपक नहीं रहे, उन्होंने राज्य में लगाव नहीं रखा । राज्य में रहते

हुए साधना का प्रतिपादन नहीं किया। साधना का प्रतिपादन साधना को जीवन में अमली रूप देकर किया। साधना के चरमोत्कर्ष पहुँचने पर केवल ज्ञान पा लिया। भरत महाराज ने भावात्मक चारित्र से गृहस्थाश्रम में रहते हुए अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान पा लिया, फिर भी वे गृहस्थ वेश से युक्त नहीं रहे, वास्तविक ज्ञानी ज्ञान का अवमूल्यन करना नहीं चाहते हैं। केवलज्ञान के बाद यदि भरत महाराज गृहस्थाश्रम में रहते, तो यह केवलज्ञान का अवमूल्यन होता। गृहस्थाश्रम में थे उस वक्त उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई, लेकिन परिवार के जो सदस्य हैं–पुत्र हैं, पुत्रवधू हैं, पौत्र हैं, वे सारे छद्मस्थ होते हैं। यदि पुत्र वधू आकर कहे कि मैं कार्य में व्यस्त हूं आप कुछ समय अपने पौत्र को रमाइये। उस समय यदि वे इंकार करते हैं तो वह कहती हैं कि घर का मुखिया मना करता है तो अन्य क्या करेंगे अतः उनका ना कहना भी ठीक नहीं और यदि रमाते हैं तो केवल ज्ञान का अवमूल्यन है। वीतराग देव यदि अपने बच्चों को रमायें तो पड़ोसी के बच्चों को भी रमाना पड़ेगा, कोई अन्य बच्चा आ गया तो उसको भी रमाना पडेगा, अगर वे दूसरों के लिए ना कहते हैं तो विषमता होगी। इस प्रकार परिवार से संबद्ध रहने में केवलज्ञानी का व्यवहार विषम दृष्टिगत होता है, अतः वे केवलज्ञान का अवमूल्यन नहीं करके साधु का भेष धारण करके चल देते हैं। मरुदेवी माता भी ऐसा ही करती लेकिन उनका आयुष्य आ गया था इसलिए वे मोक्ष में पधार गई। अन्यथा वे भी शुद्ध भावनाओं के अनुसार संयम वेश धारण कर लेती।

इस प्रकार आप देखेंगे कि जितने भी तीर्थंकर हुए उन्हों ने साधु बन कर साधना की. क्यों कि साधना समता का स्रोत है, वह लक्ष्य पूर्ति में सहायक बनती है। तो प्रभु महावीरने अपनी छद्मस्थ अवस्था में साधना के द्वारा केवल ज्ञान प्राप्त किया, और जीवन की अंतिम अवस्था में भव्यजन जिज्ञासुओं को, परिवार के सदस्य के रूप में

बिना पूछे उन्हें अंतिम ज्ञान सुनाया और इस रुप में उत्तराध्ययन सूत्र बना। इस अपुट्ठ वागरणा के ३६ अध्याय बताये। उनमें से ३२ वें अध्याय की दसवीं गाथा?

णाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अण्णाण मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्सय संखएणं, एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं॥

समता की साधना में प्रवेश करना है तो ज्ञान का प्रकाशन करो। ज्ञान को आवृत करने वाले साधनों से दूर रहो। ज्ञानावरणीय कर्म बंधन क्या है? और उसका शुद्धि करण क्या है? इसे कुछ समझने का प्रयास करें। ज्ञान और ज्ञानी की अवज्ञा करना, ज्ञान के साधनों का दुरपयोग करना आदि प्रवृत्तियों से ज्ञानावरणीय कर्मों का बंध होता है। इससे विपरीत ज्ञान के प्रति सतत जागृत रहने से आवरण का विलय हो जाता है। आत्मा में ज्ञान का प्रकाश जगमगा उठता है। किंतु यह स्मरण रहे कि आत्मज्ञान के साथ किया जाने वाला ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है और वह समता की अवस्था में ही पनप सकता है। इस समता साधना का ही सामायिक के विवेचन के रूप में आपके समक्ष कुछ प्रतिवादन कर रहा हूं।

छोटी से छोटी साधना सामायिक साधना है। गृहस्थाश्रम में ४८ मिनिट तक सामायिक साधना की जाती है तो उसका लक्ष्य क्या रहता है। मैं परसों बता चुका हूं।

कर्तृत्व भाव–स्वयं का

"करेमि भंते सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि"

हे भगवान् मैं सामायिक करता हूं। कई लोग सोचते हैं कि करता हूं यह कर्तृत्व भाव कैसे कहा गया। क्यों कि सामायिक तो कर्तृत्व भाव में नहीं है। किंतु यह जो मैं करता हूं की बात है वह किसी को नीचे गिराने की एवं अपने अहं के पोषण की बात नहीं है, लेकिन वस्तु सत्य को प्रगट करने के लिए है। सामायिक में

करता हूं, मैं ही करता हूं दूसरा नहीं। यदि यह सोचते हैं कि मैं कुछ नहीं करता दूसरा व्यक्ति करता है या अमुक व्यक्ति करता है और मैं उसके सहारे चल रहा हूं तो सामायिक कर ही नहीं सकते। फिर तो परतंत्र हैं, दूसरे की कठपुतली है। कोई भी व्यक्ति जैसा चाहता है वैसा ही वाणी से वोलता है, वैसा ही व्यवहार करता है तभी वह आगे बढ सकता है। तीर्थंकर देवों ने कहा कि तुम ही अपने आपको स्वर्ग में ले जा सकते हो और तुम्ही नरक में ले जा सकते हो। यह है साधना की अनुभूति। इससे प्रत्येक आत्मा को बहुत बड़ा संबल मिलता है। इस सिद्धांत से प्रत्येक आत्मा सोचेगी कि मैं चाहूं जैसा बन सकता हूं। मेरा कर्तृत्व मेरे अधिकार में हैं। आगमिक उल्लेख है कि :-

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिओ सुपट्ठिओ ॥

इसी बात को गीता दर्शन में इस रुप में कहा गया है—

"उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैवात्मनो रिपुरात्मैव बन्धुरात्मनः ॥

ऐसा सोच कर हर आदमी आगे बढता है। अगर वह यह सोचे कि मैं कुछ नहीं कर सकता तो उसकी आगे बढने की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। बंधुओ, मैं कुछ विषय की सूक्ष्मता में चला गया हूं। क्या करुं, आदत से लाचार हूं। सूक्ष्म विषय को कहने के लिए गहराई में चला जाता हूं। सूक्ष्म विषय जल्दी आपके पल्ले नहीं पडता है लेकिन आज पल्ले नहीं पडेगा तो कोई बात नहीं, निरंतर सुनते रहेंगे तो एक रोज अच्छी तरह से समझ सकेंगे और इस ज्ञान को प्रकाशित करने में समर्थ हो सकेंगे। यदि मैं आपके पसंदगी की ही बात कहता रहूं तो मैं आपके प्रति हित नहीं करता हूं। क्योंकि यदि आप खुश हों वैसी ही बात कहता रहूं तो यह वीतराग देव के सिद्धांत के प्रतिकूल है।

वीतराग देव ने कहा कि तुम अपने अस्तित्व में रहते हुए साधना जीवन का जो वास्तविक स्वरुप है उसे प्रगट करते रहो। इस दृष्टि से बात कहता हूं। यदि नहीं कहता हूं तो आप अनभिज्ञ रह जायेंगे। आप कह सकते हैं कि हम अनभिज्ञ नहीं रहेंगे, हमारा धार्मिक शिक्षण चलता रहेगा। आप पाठशाला भी चलायेंगे लेकिन पढ़ायेंगे क्या? मैं आपसे पूछुं कि आप पढ चुके हैं, सामायिक जानते हैं। पाठ भी जानते हैं। जानकारी के लिये आपसे पूछुं कि ज्ञान का स्वरुप क्या है तो आप बतायेंगे क्या? व्यापार का स्वरुप बता सकते हैं। राजसत्ता का स्वरुप बता सकते हैं लेकिन ज्ञान स्वरुप किस चिड़िया का नाम है, आप नहीं बता सकेंगे।

ज्ञानका स्वरुप समझनो है तो समता का स्वरुप पहले समझना होगा। फिर आगे बढते हुए ज्ञान का स्वरुप भी समझ लेंगे।

सामायिक में आप करेमि भंते का पाठ बोलते हैं।

करेमि भंते सामाइयं हे भगवन्, मैं सामायिक करता हूं। आगे कहेंगे सावज्जं जोगं पच्चक्खामि" मैं सामान्य रुप से सावद्य योगों का त्याग करता हूं। लेकिन सामायिक का स्वरुप पहले समझ में आता है तब आगे सावद्य योगों का त्याग करेंगे। सामायिक के संबंध में शास्त्रकारों ने कहा है—"जो समो सव्व भूएसु तसेसु थावरेसु य, तस्स सामाइयं होइ, इइ केवली भासियं" जो संसार के त्रसस्थावर समस्त प्राणियों पर समभाव रखता है उसी की शुद्ध सामायिक होती है। अब आप बताइये आप कौन सी सामायिक करना चाहते हैं।

पहले त्रस और थावर का ज्ञान है या नहीं? यदि नहीं है तो पहले इसका ज्ञान करना चाहिए। त्रस और थावर में समस्त संसारी जीवों का समावेश हो जाता है। आप ख्याल रखिये, ध्यान

पूर्वक तत्व की बातों को सुनिये। एक-एक बात को ऐसे पकडने की कोशिश करिये कि अभ्यस्त हो जावें।

त्रस में चलते फिरते बे इंद्रिय, ते इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय जीव आ जाते हैं। स्थावर में पृथ्वी काय, अप्काय, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीवो का समावेश हो जाता है।

सामायिक पचकने बैठे हैं तो करेमि भंते के पाठ का उच्चारण किया है। भगवान मैं सामायिक करता हूं।" उस समय आपके भाव कैसे रहे, आप त्रस और थावर जीवों के प्रति समभाव रखते हैं या नहीं, यह आपके चिंतन का विषय है। आज आप २४ घंटे इस विषय पर चिंतन करें। यदि आपकी समस्त प्राणियों पर सम-भाव की स्थिति बनी रहती है तो आप सामायिक साधना की सम्यगाराधना कर पाएंगे एवं उसका सही आनन्द प्राप्त कर पाएंगे।

—आज इतना ही

ता. २४-७-८४
बोरीवली. (पूर्व) बंबई

सामायिक अर्थात् आत्मवत्-दृष्टि

विगत कुछ दिनों से सामायिक साधना की चर्चा चल रही है। जिन सर्वज्ञ-सर्व द्रष्टा वीतराग भगवंतों ने इस गहनतम साधना पद्धति का निर्देश किया उन वीतराग देवों के गुण गरिमा मय स्वरुप का उल्लेख हमारी बुद्धि एवं जिह्वा के सामर्थ्य के बहार है। उन्होंने अनंत-असीम गुण प्राप्त किये या यों कहें स्वयं में प्रगट किये। गुण तो उनमें थे ही, किंतु दबे हुए थे उनको अनावृत कर दिया। जिस साधना पद्धति से उन्होंने गुणों को प्रगट किया वह साधना पद्धति समता की थी—सामायिक की थी। सामायिक का बहुत व्यापक अर्थ है। एक सामायिक टेंप्ररी होती है और एक जीवन पर्यंत की। जीवन पर्यन्त की सामायिक के भेद प्रभेद का कथन तो समय पर ही किया जा सकेगा।

प्रस्तुत प्रकरण श्रावक की सामायिक का चल रहा है, जो दो घडी की अर्थात् ४८ मिनिट की होती है। इस ४८ मिनिट की सीमा में साधक की क्या स्थिति बनती है और वह इस ४८ मिनिट के काल में सामायिक साधना कैसे करे-इसका स्वरुप जानना आवश्यक है।

जो समो सव्व भूएसु

आप प्रतिज्ञा पाठ का उच्चारण करते हैं" करेमि भंते। सामाइयं इसमें प्रभु से आज्ञा ली गई है। आगे के पाठ में सावद्य योगों का त्याग है। 'हे भगवन्, मैं सामायिक कर रहा हूं' आपने इस सामायिक के स्वरुप को समझ कर एक निश्चित समय निर्धारित किया। उस समय में आपकी साधना-चित्त वृत्तियों का क्या रुप हो, इसका वर्णन निम्न गाथा में दिया गया है। "जो समो सव्व-भूएसु, तसेसु थावरेसु य। तस्ससा माइयं होई, इइ केवली भासियं ॥"

इसका कुछ सामान्य विवेचन में पूर्व में कर गया हूं। अब जरा शब्दशः विवेचन समझने का प्रयास करें। यहां भूत का अर्थ आत्मा से लिया गया है, प्राणियों से लिया गया है। विश्व में जितने भी प्राणी हैं उनको भूत शब्द से पुकारा जाता है और उनका वर्गीकरण दो शब्दों से किया जा सकता है 'त्रसेसु थावरेसु' त्रस और थावर। इन दो प्रकार के जीवों के साथ सम भाव हों, ४८ मिनिट के लिए समता प्राप्त करें। सामायिक में निश्चित करें कि त्रस और थावर जीवों को कष्ट नहीं पहुंचायेंगे।

एकेंद्रिय से ले कर पंचेंद्रिय तक के जीव हैं

वे सब स्थावर एवं त्रस इन दो वर्गों में आ जाते हैं। इन सब प्राणियों पर सम कैसे रहा जाय? इसका अर्थ इतना ही है कि मैं अपने लिए अन्य प्राणियों से जिस व्यवहार की अपेक्षा करता हूं, वही व्यवहार मैं समस्त प्राणियों के साथ करूं। यही सम व्यवहार का कांटा-मापदंड होगा। मुझे कोई उत्तेजित करना चाहता है, डंडा ले कर मारने का प्रयत्न करता है, ताड़न तर्जन करता है मुझे डराने या दबाने की कोशिश करता है, मुझे नष्ट करने का प्रयत्न करता है तो ये समस्त व्यवहार मुझे उचित नहीं लगते. ठीक वैसा ही व्यवहार मैं दूसरों के साथ करूंगा तो उन्हें उचित कैसे लगेंगे? अतः सामायिक करनेवाले व्यक्ति को चिंतन करना चाहिए कि क्या उपर्युक्त व्यवहार मैं अपने लिए पसंद करता हूं? यदि मैं पसंद नहीं करता, अहितकर मानता हूं तो मेरा सम भावी चिंतन कहता है कि दूसरों के लिए भी मैं यही चिंतन यही व्यवहार करूं किसके लिये भी यह अहितकर है।

यदि आपका कोई तिरस्कार करता है, कोई आपको चूंटिया भरता है तो आपको अच्छा नहीं लगेगा। जिसके द्रव्य मन है वह इंकार करेगा और कहेगा कि चूंटिया मत भरो। लेकिन आप सोचेंगे कि जो पृथ्वी, अग्नि और वनस्पति काय के जीव हैं जिनके

मुंह नहीं हैं वे कैसे समझते हैं ? भगवान कहते हैं कि वे भी समझते हैं। मनुष्य की छाया पड़ते ही उसका उन पर प्रभाव पड़ता है। एक क्रूर प्राणी वनस्पति के पास जाता है तो वह वनस्पति थर थर कांपती है। यह विषय भगवान की वाणी में अभिव्यक्त हुआ है। अनेक तीर्थंकरों ने इसे स्पष्ट किया। स्थावर जीवों में भी हमारे जैसी आत्मा है। वह आत्मा भी कष्ट देने वाले को पसंद नहीं करती है। यह तीर्थंकर महाप्रभु ने तो आज से हजारों वर्ष पूर्व ही बता दिया था। किंतु आज के वैज्ञानिको ने भी इसका प्रयोग किया है-वनस्पति-पौधे के गमले को समक्ष रख कर उसकी निंदा स्तुति से यह बताया कि वनस्पति में भी आत्मा है। उन्होंने दुनिया को बताया कि यदि उसकी प्रशंसा होती है तो वह वनस्पति प्रफुल्लित होती है और निंदा की चर्चा होती है तो जैसे मनुष्य का चेहरा मुरझाता है, वैसे ही वनस्पति भी मुरझा जाती है। अतः उसमें भी मनुष्य की तरह आत्मा है। उसकी तारीफ की जायेगी तो फूलेगी और निंदा की जायेगी तो कुम्हलायेगी। गमले के पास सूक्ष्म दर्शी यंत्र रखा और उससे देखा गया कि जब वनस्पति की तारीफ की तो वह फैलने लगी। और निंदा करने से मुरझा गई। वैज्ञानिकों ने ऐसे कई प्रयोग किये। वह बहुत पुरानी बात हैं। लेकिन कुछ समय पूर्व अमेरिका वैज्ञा-निकों ने खोज की है-एक कमरे के अंदर वनस्पति का पौधा रखा गया और बाहर के छः व्यक्तियों से कहा गया कि तुम एक-एक करके कमरे के अंदर जाओ। एक व्यक्ति को संकेत दिया कि तुम वनस्पति का अमुक भाग काट कर लाओ. वह अंदर गया और वनस्पतिका अमुक भाग काट कर बाहर आ गया लेकिन ज्यों ही वह अंदर गया त्यों ही वह पौधा थर थर कांपने लगा था। उसके बाद दूसरे व्यक्ति को भेजा उससे कहा गया कि तुम्हें पौधे का कोई हिस्सा काटना नहीं है। वह अंदर गया तो वनस्पति में कोई परिवर्तन नहीं आया। तीसरे से कहा कि तुम्हे वनस्पति का सिंचन करना है। इस भावना से वह व्यक्ति अंदर गया तो वनस्पति खिलने

लगी। इसी प्रकार अन्य व्यक्तियों के विचारों के प्रभाव अंकित होते रहे। इन प्रयोगों से पता चलता है कि मनुष्य के भावों का वनस्पति पर कितना प्रभाव पडता है। उसके पास से निकलनेवाली आत्मा यदि निर्मल है, भद्रिक है और मन में छल कपट नहीं है तो उस पर सीधा प्रभाव पडेगा।

जैसा दृष्टिकोण वनस्पति के लिए ले रहे हैं वैसा ही पानी के जीवों के लिए, पृथ्वी काय के जीवों के लिए और वैसा ही अग्निकाय के जीवों के लिए है। वायु काय के जीवों की भी वही स्थिति है। मैं एक एक का वर्णन नहीं रख रहा हूं।

आत्म सम व्यवहार

सामायिक में बैठते हैं उस समय आपको सोचना है संसार के सभी जीवों के प्रति समभाव रखूं, छोटे से छोटे जीव की हिंसा नहीं करूं। संसार में रहते हुए आपको चौवीसों घंटे इन जीवों की आरंभ ज्या हिंसा लगती रहती है। आपको इसका त्याग नहीं है तो हिंसा आपके लिए खुली है, इसलिए आपका शरीर इन जीवों के पास जाता है तो वह कंपायमान होते हैं उनको आप से डर लगता है. भय लगता है। ४८ मिनिट के लिए आप सामायिक ले कर बैठते हैं तो इतने समय के लिए उन जीवों को भी अभयदान मिलता है।

जब तक आप सामायिक की साधना करते हैं तब तक आप सबके प्रति सम भाव रखते हैं। उतने समय तक आप किसी को सतायेंगे नहीं। जब तक आप खुले बैठे हैं। सामायिक नहीं कर पा रहे हैं तो संवर ही कर लें. इससे भी सभी प्राणियों को अभयदान मिल जाता है। संवर का पाठ याद न हो तो पांच नवकारमंत्र गिन कर संवर में बैठ सकते हैं और जब संवर पालना

हो तो पांच नवकार मंत्र गिन कर पाल सकते हैं। यह भी पाप वृत्तियों से बचने की एक प्रक्रिया है। जितने समय तक सामायिक या संवर में बैठते हैं उतने समय तक उन जीवों को शांति देते हैं। सम भाव से उन पर कृपा रखते हैं। वह कृपा आप उन पर ही नहीं, अपने पर भी रखते हैं। आपके मन, वचन और काया भी उन जंतुओं के लिए शस्त्र है। जब तक इनका त्याग नहीं करते हैं तब तक उनजीवों को भय पैदा होता है।

त्याग से अभय

संभव है मेरी बात पूरी समझ में नहीं आती हो। थोड़ी देर के लिए कल्पना करें कि १० हजार व्यक्ति एक सभा में बैठे हैं, वहां एक व्यक्ति हाथ में नंगी तलवार ले कर आता है और कहता है कि मैं एक की हिंसा करूंगा या १० हजार में से एक को मारूंगा। बात एक व्यक्ति को मारने की करता है, तो भय किसको लगेगा? प्रत्येक व्यक्ति सोचेगा कि कहीं मेरा नंबर नहीं आ जाय. सब उसके प्रति दुश्मनी की भावना रखेंगे, सबके मन में उसके प्रति क्रूरता आयेगी. लेकिन यदि वह नाम लेकर कहता है कि मैं अमुक व्यक्ति को मारूंगा तो भय उसी एक व्यक्ति को लगेगा और बाकी सभी व्यक्ति निर्भय हो जायेंगे।

यदि आप आवश्यकता से अधिक चीजें खुली नहीं रखते हैं सब का त्याग कर देते हैं तो छोड़ी गई वस्तुओं की आरंभ ज्या हिंसा से बच जाते हैं।

त्रस और थावर के जीवों के प्रति सम भाव लाने के लिए सामायिक आवश्यक अंग हैं। सामायिक की आगे की प्रक्रिया हैं।

"सावज्जं जोगं पच्चक्खामि" मैं सावद्य योग का दो करण तीन योग से त्याग से त्याग करता हूं। आप सावद्ययोग त्याग की इस प्रतिज्ञा द्वारा यह सम भाव की मात्रा सामायिक से प्राप्त कर सकते हैं।

[कुछ व्यक्ति झपकी ले रहे हैं। इसीलिए युवा लोगों का कहना है कि बुजुर्गोंने बहुत व्याख्यान सुने इसलिए अब वे धाप गये हैं। युवक लोग सावधानी से सुन रहे हैं इसलिए कहते हैं कि युवकों आगे बैठने दीजिए। युवकों को उत्साहित करना चाहिए। यह आपकी व्यवस्था की बात है, मैं इस झंझट में नहीं पड़ूं।]

आप सामायिक में दो करण तीन योग से त्याग करते हैं उसमें आपका कितना सम भाव रहता है यह आपके चिंतन का विषय हैं। आपने सामायिक में यह प्रतिज्ञा ग्रहण की है कि मैं ४८ मिनिट की इस अवधि तक किसी प्रकार का पाप नहीं करूंगा, समता भाव की साधना करूंगा। यदि आपके जीवन में समता का रस उतर गया तो जीवन आनन्द से आते-प्रोत हो जाएगा-चेतना का सत्‌चित-आनन्दघन रुप अभिव्यक्त हो जाएगा।

दिनांक २६-७-८४
बोरीवली, (पूर्व) बंबई

सामायिक में हिंसा वर्जन

सामायिक अर्थात् समभाव

तीर्थंकर देव प्रभु महावीर का समस्त उपदेश साधना का उपदेश है। साधना में भी, सामायिक की साधना को ही उन्होंने सर्वोत्तम स्थान दिया है। साधना के भेद प्रभेद बहुत हैं। विवेचन भी बहुत लंबा चौड़ा है। यदि हम इन सब का निष्कर्ष लें, तो यह सब विस्तार इस सामायिक साधना का ही है। जब तक सामायिक का महत्व समझ में नहीं आता है तब तक ही दूसरी प्रक्रियाएं रुचिकर लग सकती हैं। जिस रोज सामायिक का स्वरुप समझेंगे तब ज्ञात होगा कि वस्तुतः इसके जो आचार विचार हैं। साधु और श्रावक की जो आचार संहिता है। वह एक ही बात का द्योतन करती है कि जीवन में समभाव का प्रादुर्भाव हो जीवन में समता रस भर जाय. इस समता रस का स्वरुप भी मनोयोग से ही समझा जा सकता है। इसलिए शास्त्रकारोंने इसकी सुविस्तृत व्याख्या की है। इन्हीं व्याख्याओं के अंतर्गत कुछ विवेचन आपके समक्ष आ रही है।

बताया गया है कि सब भूतों पर–त्रस और थावर पर जो व्यक्ति सम होता है, उस व्यक्ति की सामायिक ही शास्त्रीय दृष्टि से सामायिक है लेकिन जिसकी दिनचर्या जिनके जीवन का आचार–विचार सामायिक साधना के अनुरुप नहीं है उस व्यक्ति के लिए समता से विपरीत ममता भाव, विषमता, दुख और द्वंद ये सब के सब इर्द गिर्द फिरेंगे, उसे घेर करके रखेंगे. ताकि इस परिधि से कोई व्यक्ति बाहर नहीं निकले. ये विषम दुर्गुण ऐसा मोर्चा बना कर खड़े रहते हैं कि कहीं सद्गुणों का प्रवेश मनुष्य जीवन में हो न जाय.

संसर्ग का प्रभाव—दुर्व्यसन फैलाव

दुर्गुण बहुत समय से इस आत्मा को साथ दे रहे हैं। आत्मा भी इनके साथ इतनी तन्मय हो गई है कि दुर्गुणों को ही अपना निजी गुण समझने लगी है। जब कोई व्यक्ति बहुत दिनों तक अफीम खाने का अभ्यास करता है तो अभ्यास की जानेवाली वस्तु, कितनी ही अहितकर हो, दुनिया के लिए घातक हो, मनुष्य के प्राण हरण करनेवाली हो, स्वयं जो व्यक्ति इसको आचरण में ले रहा है। उसके जीवन के लिए भी खतरनाक हो, उसमें जिसका संपर्क सध जाता है तो व्यक्ति उसे घातक रुप में नहीं मान कर जीवन के साथी के रुप में मानने लगता है।

आप सरलता से समझें कि बच्चा जब जन्मता है तब उसे उस वक्त माता के स्तन-पान के अतिरिक्त और कोई व्यसन नहीं होता। बच्चा व्यसन को समझता ही नहीं है। आगे चल कर जैसा-जैसा उसको सम्पर्क मिलता है, उसे जिन-जिन के बीच रहने का प्रसंग आता है उन-उन बच्चों की हरकतें सीखता है, माता पिता के व्यवहार से परिचित होता है, उसमें स्कूल और कोलेज के संस्कार भर जाते हैं इन सब स्थितियों के साथ यदि उसका सहयोगी कोई आवारा व्यक्ति मिल गया जो कि नशा करनेवाला है, बीडी या सिगरेट पीनेवाला है और वह इससे कहे कि देख सिगरेट की एक फूंक तो ले, पहले तो इसके लिए उसकी तैयारी नहीं होगी, क्योंकि यह इसका जन्मजात संस्कार नहीं है। लेकिन कभी कभी व्यक्ति अपनी कमजोरी को नहीं समझ पाता और उन व्यक्तियों के कहने में आ कर सिगरेट की फूंक का स्वाद लेता है तो उस समय अटपटा लगता है, चक्कर आ जाता है, शरीर की कोशिकाएं स्वीकार नहीं करतीं। क्योंकि वे शरीर के प्रतिद्वंदी तत्वों को अन्दर प्रवेश नहीं होने देतीं। वे रोग के कीटाणुओं को भी शरीर में प्रवेश नहीं करने देतीं। शक्ति भर उनसे लडतीं हैं, लेकिन जब वे कमजोर हो

जाती हैं तो कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं। इसीलिए शरीर के संरक्षक तत्त्व विरोध करते हैं लेकिन वह व्यक्ति जो सिगरेट की फूंक लेनेवाला हैं, उनकी विरोधक शक्तियां दबाकर, साथियों के कहने पर फूंक लेता है और उसके वे साथी देखते हैं कि अकेले क्यों रहे, और साथी बना लें। वह एक वक्त, दो वक्त, तीन वक्त जैसे जैसे धूंआ फूंकना सीख जाता है। उसके पश्चात् उसके साथियों का चक्कर चलता है धार्मिकता भले ही छूट जाए परिवार के सदस्य, अलग पड़ जायें, लेकिन सिगरेट नहीं छूट सकती। यह वृत्ति उन पुरुषों की बन गई जिनमें संस्कार नहीं थे लेकिन कुसंगति में चलता हुआ वह व्यक्ति न तो परिवार को गिनता है, जब कि शरीर भी उसकी उपेक्षा कर देता है। चाहे कुछ भी हो, उधार भी लेगा पर बीडी या सिगरेट पीयेगा। डाक्टरों का कथन है कि सिगरेट में इतना पॉइजन है कि धीरे धीरे वह तुम्हारे जीवन को समाप्त कर देता है। अमरीकी लोगों ने भी इस पर पाबन्दी लगाने की बहुत कोशीश की सिगरेट के डिब्बों पर भी लिखा रहता है कि "धुम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

इस प्रकार एक छोटी-सी बुरी आदत जीवन को बरबाद कर देती है। यह एक आदत ही नहीं, ऐसे अन्य कुव्यसन, बुरी लत, खराब आदत जन्म जात नहीं होने पर भी बहुत दिनों से इसका प्रयोग करने से अभ्यस्त हो जाती है।

वैसे ही इस आत्मा ने आज से नहीं सैंकड़ो वर्षों से नहीं, जिनका कोई छोर नहीं, अनादि काल से इस मोह, ममता के साथ जीवन चलाने का प्रयास किया है, इन पर आसक्त हो गया है। दुर्गुणों को साथी मान लिया है। कुछ व्यक्ति यह समझ जाते हैं कि ये दुर्गुण मेरे जीवन को समाप्त कर देंगे। किंतु अधिक अभ्यस्त हो जाने के कारण एकाएक छूटते नहीं। इसीलिए यदि उनको साधना का मक्खन, साधना का सत्व सामायिक की प्रेरणा दी जाती है तो

उनकी रुचि उधर नहीं होती। वह यह समझता ही नहीं है कि सामायिक क्या है? यह समझता है मोह, वह समझता है राग-द्वेष, वह समझता है विपमता, वह चाहता है कि अधिक से अधिक धन इक्ट्ठा करु। वह यह नही समझता कि ये सब जिंदगी को खत्म करनेवाली खतरे की घंटी हैं। यह बात उसकी समझ में नहीं आती। लेकिन जो भाग्यशाली हैं वे समता की साधना करते हैं। जिनके माता पिता के दिये हुए संस्कार हैं वे घूम फिर कर इसी पर आयेंगे। पाश्चात्य संस्कृति छोड़ेगे। वैज्ञानिक हो, राजनीतिज्ञ हो या अन्य व्यक्ति हो उन्हें समता के इस मार्ग पर आना ही पडेगा। आज नहीं तो कल आयेंगे ही–यदि उन्हें आत्म शांति की चाह है।

सामायिक साधना का ऐसा सहज स्वरुप प्रभु महावीर ने बताया फिर क्या कारण है कि आप एक घंटा भर भी साधना नहीं कर सकते? इस साधना में जो बाधक तत्व हैं, उनकी रुकावट उन्हें अवरुद्ध करने के लिए इस पाठ में संकेत दिया है। "करेमि भंते।" हे भगवन् मैं सामायिक करता हूं, अर्थात् त्रस और थावर जीवों के लिए सम होता हूं, विपमता की भावना को निकाल कर समता की भावना में प्रवेश करके इसका अभ्यास करता हूँ।

बाधक तत्व नहीं आवे इसीलिए सावद्य योगों का त्याग किया जाता है। मन, वचन और काया का योग है। इस योग की वृत्तियां चलती है। असत्य एवं अभद्र भापा का प्रयोग भी इसी से होता है। १८ पापों का व्यवहार भी इस मन, वचन और काया के योग से ही होता है।

सामायिक में विद्युत् प्रयोग

आप ४८ मिनिट तक सामायिक साधना में बैठ कर त्रस और स्थावर जीवों पर सम भाव लाने के लिए अभ्यास करते हैं। इसमें सावद्य

योग का त्याग होता है, यह त्याग भी ४८ मिनिट के लिए होता है। ४८ मिनिट तक १८ पापों का त्याग कर के सामायिक में बैठते हैं। यह त्याग दो करण और तीन योग से होगा, मनसा, वाचा, कर्मणा, त्रस और थावर जीवों के प्रति सम भाव रखना इसका विवेचन पहले किया जा चुका है।

४८ मिनिट तक २ करण ३ योग से हिंसा का त्याग करके बैठे हैं आरंभ जा हिंसा २४ घंटे तक चलती है लेकिन आत्मा को विश्राम देने के लिए सामायिक साधना में बैठ गये तो आरंभ जा हिंसा भी उतनी देर के लिए नहीं कर सकते। इसका तात्पर्य यह है श्रावक या श्राविका जीवन निर्वाह के लिए भोजन बनाते हैं उसमें ६ काय के जीवों की हिंसा होती है या आरंभ होता है तो क्या सामायिक में बैठा हुआ व्यक्ति ऐसा कर सकता है? वह ऐसा नहीं कर सकता सामायिक में बैठा हुआ व्यक्ति ६ काया के जीवों का मित्र बन कर बैठा है। कल्पना करिये कि एक व्यक्ति अंधेरे में सामायिक ले कर बैठा है। उसकी इच्छा हो गई कि कोई धार्मिक पुस्तक पढ लूं। कमरे में विजली का बल्ब लगा हुआ है तो क्या वह बिजली के प्रकाश में पुस्तक पढ सकता हैं? जो प्रतिज्ञा की है उसका ख्याल रखिये। इसमें ६ काया के जीवों की हिंसा सुनिश्चित है। बिजली बादर तेउ काय है। खुला व्यक्ति, जो गृहस्थाश्रम में है वह इसका उपयोग करता है। लेकिन जब साधना में बैठा है तब इसका उपयोग नहीं कर सकता। आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं कि रात्रि में जब बिजली का बल्ब जलता है तब उससे ६ काया के जीवों की कितनी हिंसा होती है? मच्छर, पतंगे आदि कीटाणु इससे मरते हैं। आप देरी से उठते है तब तक तो आपका नौकर बुहारी लगा कर साफ करके बाहर फेंक देता है। आप यदि जल्दी उठ कर देखें तो पता चलेगा कि इससे मरे हुए जंतुओं का कितना ढेर हो जाता है? इतनी हिंसा हो जाती है, ऐसी स्थिति में बिजली

के प्रकाश में सामायिक में बैठे हुए क्या आप पुस्तक पढ सकते हैं ? आप कहेंगे कि हमने क्या आरंभ किया ? मान लीजिए आप पुस्तक बिजली के प्रकाश में पढ़ रहे हैं, आपको पढने में रस आ रहा है और अचानक पावर हाउस से बिजली चली गई, उस समय आपकी इच्छा क्या होगी ? यही कि जल्दी पावर हाउस चले प्रकाश आवे और मैं पुस्तक पढ़ूं । जैसे आप पुस्तक पढने के लिए पावर चाहते हैं वैसे ही कत्लखाना चलानेवाला कसाई भी चाहता है कि जल्दी पावर आए और इसका कत्लखाना चालू हो व इसी तरह से वेश्या भी चाहेगी कि जल्दी पावर आवे और अपना कार्य प्रारंभ करूं । तो इन सबके साथ आपकी भागीदारी हो गई क्योंकि सभी समान इच्छा रखते हैं कि पावर जल्दी आवे । आप चाहे बड़ी संस्था के भागीदार हैं या छोटी संस्था के, लेकिन इस भागीदारी में पाप के भागीदार आप भी होंगे । क्यों कि आप मन से कहते हैं कि जल्दी पावर हाउस चले । और पावर आने पर आप प्रफुल्लित हो गये । ऐसी स्थिति में आपकी समभाव एवं सावद्य योग त्याग की प्रतिज्ञा रही या गई ?

हम यहां प्रभु द्वारा उपदर्शित साधना के विषय में विचार कर रहे हैं । आप साधना में बैठे हैं; एक महाशय ६ काया के जीवों की हिंसा से पैदा होनेवाली बिजली का माइक लगाकर उसके माध्यम से व्याख्यान दे रहे हैं । उस समय वह स्वयं बिजली को काम में ले रहे हैं तो उनका छःकाया के जीवों पर सम भाव रहेगा या जायेगा, सावद्य योग त्याग की प्रतिज्ञा रहेगी या नहीं ? उनकी सामायिक का क्या हाल होगा ? जो श्रावक है और इस प्रकार सामायिक में बैठा हुआ बिजली का उपयोग करता है तो उसकी सामायिक भी नहीं रहती है तो क्या मुनि की सामायिक रहेगी ? आप कुछ गहराई से चिंतन करिये ।

कल्पना करें, जिस समय श्रोतागण तन्मयता से सुन रहे हैं, वक्ता अहिंसा की बात कह रहा है, सुननेवालों को रस आ रहा है, उस समय अचानक बिजली चली गई तो वक्ता क्या सोचेगा और

योग का त्याग होता है, यह त्याग भी ४८ मिनिट के लिए होता है। ४८ मिनिट तक १८ पापों का त्याग कर के सामायिक में बैठते हैं। यह त्याग दो करण और तीन योग से होगा, मनसा, वाचा, कर्मणा, त्रस और थावर जीवों के प्रति सम भाव रखना इसका विवेचन पहले किया जा चुका है।

४८ मिनिट तक २ करण ३ योग से हिंसा का त्याग करके बैठे हैं आरंभ जा हिंसा २४ घंटे तक चलती है लेकिन आत्मा को विश्राम देने के लिए सामायिक साधना में बैठ गये तो आरंभ जा हिंसा भी उतनी देर के लिए नहीं कर सकते। इसका तात्पर्य यह है श्रावक या श्राविका जीवन निर्वाह के लिए भोजन बनाते हैं उसमें ६ काय के जीवों की हिंसा होती है या आरंभ होता है तो क्या सामायिक में बैठा हुआ व्यक्ति ऐसा कर सकता है ? वह ऐसा नहीं कर सकता सामायिक में बैठा हुआ व्यक्ति ६ काया के जीवों का मित्र बन कर बैठा है। कल्पना करिये कि एक व्यक्ति अंधेरे में सामायिक ले कर बैठा है। उसकी इच्छा हो गई कि कोई धार्मिक पुस्तक पढ लूं। कमरे में बिजली का बल्ब लगा हुआ है तो क्या वह बिजली के प्रकाश में पुस्तक पढ सकता हैं ? जो प्रतिज्ञा की है उसका ख्याल रखिये। इसमें ६ काया के जीवों की हिंसा सुनिश्चित है। बिजली बादर तेउ काय हैं। खुला व्यक्ति, जो गृहस्थाश्रम में है वह इसका उपयोग करता है। लेकिन जब साधना में बैठा है तब इसका उपयोग नहीं कर सकता। आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं कि रात्रि में जब बिजली का बल्ब जलता है तब उससे ६ काया के जीवों की कितनी हिंसा होती है ? मच्छर, पतंगे आदि कीटाणु इससे मरते हैं। आप देरी से उठते है तब तक तो आपका नौकर बुहारी लगा कर साफ करके बाहर फेंक देता है। आप यदि जल्दी उठ कर देखें तो पता चलेगा कि इससे मरे हुए जंतुओं का कितना ढेर हो जाता हैं ? इतनी हिंसा हो जाती है, ऐसी स्थिति में बिजली

के प्रकाश में सामायिक में बैठे हुए क्या आप पुस्तक पढ सकते हैं ? आप कहेंगे कि हमने क्या आरंभ किया ? मान लीजिए आप पुस्तक बिजली के प्रकाश में पढ़ रहे हैं, आपको पढने में रस आ रहा है और अचानक पावर हाउस से बिजली चली गई, उस समय आपकी इच्छा क्या होगी ? यही कि जल्दी पावर हाउस चले प्रकाश आवे और मैं पुस्तक पढ़ूं । जैसे आप पुस्तक पढने के लिए पावर चाहते हैं वैसे ही कत्लखाना चलानेवाला कसाई भी चाहता है कि जल्दी पावर आए और उसका कत्लखाना चालू हो व इसी तरह से वेश्या भी चाहेगी कि जल्दी पावर आवे और अपना कार्य प्रारंभ करुं । तो इन सबके साथ आपकी भागीदारी हो गई क्योंकि सभी समान इच्छा रखते हैं कि पावर जल्दी आवे । आप चाहे बड़ी संस्था के भागीदार हैं या छोटी संस्था के, लेकिन इस भागीदारी में पाप के भागीदार आप भी होंगे । क्यों कि आप मन से कहते हैं कि जल्दी पावर हाउस चले । और पावर आने पर आप प्रफुल्लित हो गये । ऐसी स्थिति में आपकी समभाव एवं सावद्य योग त्याग की प्रतिज्ञा रही या गई ?

हम यहां प्रभु द्वारा उपदर्शित साधना के विषय में विचार कर रहे हैं । आप साधना में बैठे हैं; एक महाशय ६ काया के जीवों की हिंसा से पैदा होनेवाली बिजली का माइक लगाकर उसके माध्यम से व्याख्यान दे रहे हैं । उस समय वह स्वयं बिजली को काम में ले रहे हैं तो उनका छःकाया के जीवों पर सम भाव रहेगा या जायेगा, सावद्य योग त्याग की प्रतिज्ञा रहेगी या नहीं ? उसकी सामायिक का क्या हाल होगा ? जो श्रावक है और इस प्रकार सामायिक में बैठा हुआ बिजली का उपयोग करता है तो उसकी सामायिक भी नहीं रहती है तो क्या मुनि की सामायिक रहेगी ? आप कुछ गहराई से चिंतन करिये ।

कल्पना करें, जिस समय श्रोतागण तन्मयता से सुन रहे हैं. वक्ता अहिंसा की बात कह रहा है, सुननेवालों को रस आ रहा है. उस समय अचानक बिजली चली गई तो वक्ता क्या सोचेगा और

श्रोता क्या सोचेंगे ? वक्ता सोचेगा कि जल्दी बिजली चालू हो और मैं अपना कथन पूरा करूं और श्रोता सोचेंगे कि जल्दी बिजली चालू हो, हम आगे सुनें । यह विद्युत सचित पदार्थ की स्थिति में है । अतः जो व्यक्ति सामायिक साधना में बैठा है, वह बोल नहीं सकता । जो लोग सुन रहे हैं वे भी बिजली के जीवों का संहार करवा रहे हैं । छोटे मोटे परिवार के सदस्यों को घात करें और कुछ बडे व्यक्तियों का मनोरंजन करें इससे क्या पायेंगे ? यह चिंतन का विषय है । यह ऐसी वैसी साधना नहीं है, यह आत्म साधना है अतः इस प्रकार की हिंसा का प्रसंग साधना में नहीं आना चाहिए ।

साधना के समय त्रस और थावर जीवों के प्रति सम भाव रखना चाहिए । सामान्य सी जानकारी वाले भी जानते है कि छोटे मोटे जीवों को जिनको हम परिवार के सदस्य के समान समझते हैं, नहीं मारना चाहिए । लेकिन प्रचारक बन कर जो इनको मार रहे हैं, इधर अहिंसा का उपदेश दिया जा रहा है और उधर छोटे मोटे प्राणियों की हिंसा की जा रही है । यह तो ऐसी स्थिति है कि रक्त से भरा हुआ कपड़ा रक्त से ही या धोया जा रहा है तो क्या वह साफ होगा ?

यह विषय आपको सूक्ष्म लग रहा होगा किंतु आपको चिंतन करना होगा । तभी साधना के निस्यंद सामायिक रुपी इस समता रस का पान कर पायेंगे । कल्पना करिये आप किसी को क्लेश पहुंचा कर आयें और यहां पर साधना में बैठ गये तो आप सम भाव की साधना कर सकेंगे ? चाहे आप परिवार के सदस्यों से ही झगड़ कर आये हों अथवा धर्म पत्नी को उल्टी सीधी बात कह कर आये हों और फिर सामायिक में बैठे हों तो आपका मन क्या कहेगा ? आपके मन में कई तरह के विचार आयेंगे कि उसने यह कहा और मैंने यह उत्तर दिया–इस प्रकार अनेक प्रकार के विचार आप के

मन में आयेंगे। उस समय सामायिक की जायेगी तो साधना नहीं बन पायेगी।

सत्य ही नहीं मधुर सत्य बोलें

भगवान ने बताया कि पहले मन को साफ करो। मन को आज्ञाकारी बनाओ। मैंने सामायिक साधना का स्वरुप बतलाते हुए तस्स उत्तरी का पाठ, लोगस्स का पाठ, करेमि भंते के पाठ का उच्चारण उनका अर्थ व महत्व बतलाया। अब सामायिक का स्वरुप बताया जा रहा है। हिंसाकारी वृत्तियों से बच कर सम भाव की साधना सामायिक साधना है। सम भाव तभी प्राप्त होगा जब कि मानसिक दृष्टि से हिंसाकारी प्रवृत्ति छूटेगी, झूठ बोलना छूटेगा। आप कहेंगे कि हम कहां झूठ बोल रहे हैं। लेकिन झूठ क्या है, इसको भी समझना होगा। किसी के दिल को तोड़ने के लिए कठोर शब्दों का प्रयोग करते हो, तो क्या वह झूठ नहीं है? ज्ञानी जन ऐसे सत्य का भी निषेध करते हैं। जो किसी को पीडित करता हो। किसी काणे व्यक्ति को काणा नहीं कहना। यद्यपि वह काणा है। लेकिन कटु सत्य नहीं कहा जाता। मैं सत्य बोल रहा हूं, लेकिन कौनसा सत्य? सत्य होना चाहिए मधुर, लेकिन आप बंडल फेंक देते हैं। काने को काना नही कह कर आप कह सकते है कि आप के नेत्र में तकलीफ मालूम होती है। इस तरह से आप सम भाव रख कर साधना करोगे तो सफल हो सकोगे।

आपके समक्ष करेमि भंते की बात कही गई। आगे सामायिक के प्रत्याख्यान में कहते हैं कि एक मुहूर्त तक या जब तक नहीं पालूं तब तक के लिए पचका दें। आप परंपरा से यह उपशान्तवाली सामायिक करते आये हैं लेकिन मूल पाठ का चिंतन होना चाहिए।

इसे अभी नहीं कहूंगा, क्योंकि समय आ रहा है ।

जो वास्तविक सामायिक लेते हैं वे पहले शुद्धि करके सामायिक के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं । वह एक मजदुर भी हो सकता है, रसोई घर में काम करनेवाला भी हो सकता है । यह मत समझिये कि यह साधना हमारे लिए ही है, या अमुक जाति के लिए ही है । यह तो सारी मानवता के लिए है । लेकिन शर्त यह है कि जो व्यक्ति इसे सही रुप से अपना सके उसके लिए है । आप इस साधना को कुछ समझने का प्रयास करें एवं अधिक से अधिक व्यक्तियों में प्रेरणा भरें । बस आज इतना ही ।

२७–७–८४
बोरीवली (पूर्व) बंबई

सामायिक अमृत बूंटी

अंतिम तीर्थंकर, प्रभु महावीर ने भव्य जनों के उपकारार्थ ऐसी जड़ी–बूटी दी है जो आत्म कल्याण का अमृत पाथेय है। जडी बूटी का तात्पर्य वनस्पति की जडी बूटी से नहीं है, किंतु ऐसी बूटी से है जिससे मानव अमरता प्राप्त कर सके। प्रत्येक मनुष्य की आंतरिक भावना यही रहती है कि यह सदा सदा के लिए आनन्द की सम स्थिति में बना रहे और यह भावना उसकी मूल भावना है। किन्तु, यदि इस भावना के अनुरुप ही वह पुरुषार्थ करने लग जाय, उसी अनुरुप अपना संकल्प बनाले तो तदनुरुप ही फल प्राप्त कर सकता है।

दृष्टि अविनाश की ओर

जब तक व्यक्ति का लगाव संसार के पदार्थों की तरफ है तब तक वह अपनी समरुप बने रहने की भावना को साकार रुप नहीं दे सकता। संसार के पदार्थ नाशवान है, क्षण भंगुर है, प्रतिक्षण विनिष्ट होने वाले हैं, ऐसे प्रति समय विनिष्ट होनेवाले पदार्थों की तरफ आसक्त बनने पर उसकी अवस्था भी नाशवान के रुप में परिणत होगी। यद्यपि उसके मौलिक रुप का नाश नहीं होगा तथापि जो विकसित आत्म प्रदेश हैं, वे संकुचित हो जायेंगे। उनमें जितने गुणों का विकास किया वे दब जायेंगे। आत्मा उर्ध्वमुखी नहीं बन सकेगी। अतः प्रत्येक व्यक्ति का अविनाशी तत्व स्थाई भाव की तरफ लगाव होना चाहिए। लगाव का तात्पर्य आकर्षण से है। वह यह चिंतन करे कि इस आकर्षण में भी वस्तु स्वरुप की दृष्टि से मेरा निजी स्वरुप ही है। मुझे अमर बनाने वाली जडी बूटी के तुल्य वह स्वरुप है और यह स्वरुप है सामायिक।

आज आम व्यक्ति की सामायिक कुछ व्यवस्थित नहीं बन पा रही है। आज अधिकांश व्यक्तियों ने सामायिक का ऊपरी रुप ही अपना लिया है और यही कारण है कि उसमें रस नहीं आता जिससे अधिकांश लोग इस सामायिक की तरफ जाना ही पसंद नहीं करते। जो इसमें नजदीक जाना पसंद नहीं करते, उनका अपराध नहीं है। उन्होंने विषय को समझा ही नहीं है। उनके अंदर की भावना यह है कि मैं अमर बनूं। लेकिन अमरता की इस जडी-बूटी सामायिक पर उनका ध्यान केंद्रित नहीं हुआ है। सामायिक साधना की भी अपनी एक विधि है, कला है, उसके अनुसार अनुष्ठान करने से वह सामायिक भी हमें अमर बना सकती है।

सामायिक का सामान्य अर्थ है समभाव और वह आत्मा का गुण है। आत्मा का गुण आत्मा से कभी अलग नहीं होता। वह सदा आत्मा के साथ हीं रहता है।

इस आत्मिक गुण को विकसित किया जाय तो एक न एक दिन समता की परिपूर्ण साधना बन जायगी और जिस रोज साधना परिपूर्ण बन जायगी उस रोज आत्मा आत्मपरिणति में एक रुप हो जायगी।

साधना का लघुतम बीज-सामायिक

वट घृक्ष का प्रारंभ एक छोटी अवस्था से होता है। वट घृक्ष एक नन्हें से वीज से प्रारंभ होता है। मक्का या धान का वीज उससे वड़ा होता है। लेकिन वट वृक्ष का बीज आपने देखा हो तो आश्चर्य होगा कि अफीम का बीज कितना छोटा होता है उससे भी छोटे बीज में वड का घृक्ष समाया हुआ है। लेकिन उस छोटे से वीज को अंकुरित करके उसके वाद उसका संरक्षण परिपूर्ण रुप से हो तो वह छोटा वीज विशाल वट घृक्ष वन जाता है।

वैसे ही यह सामायिक साधना वहुत स्वल्प गिनी जाती है। लेकिन यदि कुछ गहराई से चिंतन किया जाय तो यह वटघृक्ष के

बीज के तुल्य अमर जडी है—बीज है और इसको अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित किया जाय तो फलित होने पर आत्मा को अक्षय आनंद से संपन्न बना सकती है।

जहां परिपूर्णता आयेगी, वहां जो आत्मा का स्वरुप होगा, उसकी कोई उपमा नहीं दे सकता। बड वृक्ष की उपमा एकदेशीय है। कोई उपमा दी जाती है तो एकदेशीयताको ले कर दी जाती है, न कि सर्वदेशीयता को लेकर।

एसी सामायिक साधना किस विधि से करनी चाहिए इसका संकेत मैं कुछ दिनों से देता चला आ रहा हुं। जिन भाइयों ने लगातार सुना है—कदाचित् स्वल्प ने नहीं सुना हो, उनके ध्यान में होगा कि यह साधना कैसी है।

तीर्थंकरों ने जिस विधि का उल्लेख किया है, उसमें
"करेमि भंते सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि
जास नियमं पज्जुवासामि दुविहं, तिविहेणं

"जावनियमं का मौलिक अर्थ

यहां जाव नियमं का अर्थ है सामायिक की एक निश्चित अवधि काल मर्यादा। सामायिक का नियम ४८ मिनिट का है, यदि एक सामायिक करना है तो ४८ मिनिट का समय बना और दो करता है तो ९६ मिनिट का होगा, लेकिन इससे कम नहीं होगा, तो जहां नियम शब्द आया वहां दो सामायिक लेना है तो दो और तीन लेना है तो तीन सामायिक कहना चाहिए। इससे यह तो फलित होता है कि जितनी सामायिक करने की भावना है, उतनी एक साथ या अलग अलग भी पचखी जा सकती है। किंतु एक परंपरा यह भी है कि एकवार में एक ही सामायिक पचखी जा सकती है। कभी कभी यह भी कहा जाता है कि जब तक नहीं पालूं तब तक मेरी सामायिक है। एक सामायक ४८ मिनिट में पूरी

होगी और आपका ६० मिनिट तक बैठने का प्रसंग आ गया तो १२ मिनिट अधिक बैठे तो उसकी भी गिनती सामायिक में होगी क्या ? ५ मिनिट अधिक बैठे तो ५ मिनिट की भी गिनती होगी क्या ? जिस सामायिक का उल्लेख चल रहा है उसमें ५-१० या १५ मिनिट की सामायिक का विधान हो तब तो आप प्रत्याख्यान पाठ के साथ कह सकते हैं कि जब तक नहीं पालूं तब तक एक सामायिक के उपर का त्याग। किंतु जितनी सामायिक पचकी है, उस से जो अधिक समय निकला है वह गिनती में नहीं आयेगा। अतिरिक्त समय में आप चाहे नवकार मंत्र पढें। यदि आप यह नियम कर लेते हैं कि एक सामायिक से ऊपर तक नहीं पालूं तब तक दो करण तीन योग से संवर रखुंगा तो भी लाभ मिल सकता है।

तथापि जब तक नहीं पालूं तब तक की छूट संतो ने इसलिए दी है कि "नहीं मामा से काणा मामा भी अच्छा है"। आप जब तक बैठे रहें तब तक सामायिक। लेकिन इसमें सामायिक का पूरा संकल्प नहीं रहता। यदि आपकी भावना सामायिक लेने की है तो पहले ही दो पचक लें, किंतु भावना यह रहती है कि पचकूं या नहीं पचकूं ? इसलिए ५-१० या १५ मिनिट अधिक हो गये तो सोचेंगे कि चलो इतने मिनिट और निकल जायेंगे। फिर महाराज से जा कर कहेंगे कि महाराज पहले का काल मिला कर दो सामायिक पंचका दो-तो यह सामायिक पूर्ण नहीं है। इससे लाभ तो होगा लेकिन उतना लाभ नहीं होगा। आप कहेंगे कि लाभ क्यों नहीं होगा-हमने तो पचक्खान तो किया है लेकिन आपके दिल में कचावट रही कि दुसरी सामायिक करूं या नहीं करूं। परिपक्वता या पक्का इरादा नहीं होने से पूरा लाभ कैसे मिलेगा।

एक व्यक्ति को कल उपवास करना है। वह उपवास के पूर्व दिवस ही संध्या के समय चौविहार के पश्चात् उपवास पचकेगा तो उसको पूरा फल मिलेगा, किंतु यदि कोई सोचता है कि कल

उपवास करना तो है। पचकना भी है, लेकिन कल पचकूंगा। दुसरे दिन सोचता है कि दिन भर भूखा रह सकुंगा या नहीं, अतः बाद में पचकूंगा। मन में कचावट कमजोरी रखता हैं और संध्या के समय आ कर कहता है कि महाराज, अब आज का उपवास पचका दो. उपवास पचका दिया, लेकिन उसको लाभ उतना नहीं मिलेगा, जितना मिलना चाहिए। जैसी कचावट उपवास नहीं पचकने वाले के मन में है वैसी ही दशा सामायिक करनेवाले की है। जिसने सामायिक का पच्चक्खान पूर्व काल मिला कर किया तो वह सामायिक उस उपवास की तरह है जिसने संध्या होते होते उपवास पचका है।

इसलिए सामायिक करनेवाले को यह सावधानी अवश्य वरतनी चाहिए कि यदि दो सामायिक करनी है तो दृढ संकल्प करके कर लीजिए। सामायिक नहीं हो सके तो संवर कर लीजिए, ताकि समय व्यर्थ नहीं जाये।

सामायिक का शुद्ध स्वरूप जो शास्त्रकारों ने वताया है उसके अनुसार सावद्य योगों का त्याग करने के बाद ४८ मिनिटों में सामायिक की साधना होती है।

आप यह सोच लें कि हमने सावद्य योगों का त्याग कर लिया और हमारी सामायिक हो गई। तो एक अपेक्षा से कुछ लाभ होगा, लेकिन पूरी सामायिक नहीं होगी। सावद्य योग में पापकारी कार्य नहीं करेंगे, क्योंकि उसका त्याग किया है। ४८ मिनिट तक एक स्थान पर वैठते हैं, धर्मस्थान में रहते हैं फिजूल की वातें नहीं करके ज्ञान-ध्यान की चर्चा करते हैं तो यह शुद्ध सामायिक होगी। सामायिक भी एक प्रकार का तप है। सामायिक का स्वरूप यदि आपने पूरा नहीं समझा है और वर्तमान की प्रचलित आधी अधूरी द्रव्य सामायिक ले कर ही वैठे हैं तो आप अपेक्षा से खुले रहते

हैं तो और इस प्रकार पाप कालिंक आप की आत्मा के साथ आता रहता है ।

खिडकियां बनाम आश्रव

कल्पना कीजिए कि एक बंगला है उसमें पांच खिड़कियां हैं और पांचों खुली है, उनसे हवा आ रही है और साथ ही धूल भी आ रही है, तो आप अपने कमरे को धूल से साफ कर सकेंगे क्या ? आप कचरा निकालना चाहते हैं, बुवारी फेर रहे हैं किंतु इधर आप कमरा साफ करते हैं और उधर उधर से खिड़कियों में से धूल वापिस आ रही है तो कमरा साफ नहीं कर पायेंगे ।

इसी तरह जब आप खुले रहते हैं संवर की वृत्ति में नहीं रहते हैं तो पांच आश्रवों से पाप का कचरा आता रहता है, यदि आप सामायिक का स्वरुप पूरा नहीं समझे हैं और न उसका विधिवत् सम्यगाचरण ही करते हैं और इसी स्थिति में मन को साफ करना चाहते हैं, सम भाव की मात्रा लाना चाहते हैं, तो नहीं ला पायेंगे इसके लिए सबसे पहले खिड़कियों को बंद करने के समान ही आश्रव के पांच द्वार होते हैं-उनको रोक देवें । जैसे कमरे में कचरे आने की खिड़कियों को बंद किये बिना कचरा पुनः पुनः कमरे में भर जाएगा-साफ नहीं होगा । आश्रवों को रोकने बाद सामायिक में बैठेंगे तो परिपूर्ण साधना बनेगी । आपने आश्रव रोक दिये, सावद्य योगों का त्याग किया तो पाप के आश्रव रूक गये । सामायिक पचकनेवाला, व्याख्यान होता है तब तक बैठा है, बीच में उठने का प्रसंग नहीं आता । लेकिन फिर भी मन में दृढ संकल्प नहीं है इस लिए एक साथ अधिक सामायिक नहीं पचकेगा । तो उसके आश्रव पूरे नहीं रूकेंगे ।

सामायिक एक तप

जिन्होंने सामायिक पचकली है उन्होंने मन की इच्छाओं का निरोध किया । तप की परिभाषा में "इच्छा निरोधस्तपः "इच्छा का

निरोध करना भी तप है । आपकी खुला रहने की इच्छा थी, उसका निरोध किया, इस दृष्टि से आप सामायिक ले कर बैठे हैं, तो वह तप होगा ।

दूसरा तप है "प्रतिसंल्लीनता ।" कषाय प्रतिसल्लीनता और इंद्रिय प्रतिसल्लीनता । इंद्रियों को थोडा काबू में किया । खुला रहनेवाला सिनेमा में जा सकता है, लेकिन सामायिक पचक कर ४८ मिनिट तक बैठा है, तो क्या उसकी इच्छा होगी कि सामायिक से उठकर सिनेमा में चला जाउं–मन कितना भी लालायित है, लेकिन सामायिक में बैठा हैं इसलिए नहीं जा सकता खुले रुप से जा सकता था । सिनेमा में इंद्रियों का विषय को देखता लेकिन अब वहां गये विना देख नहीं सकता इसलिए यहां भी इंद्रिय विषय का निरोध हुआ अतः सामायिक में कहीं नहीं जाना तप की श्रेणी में आ गया ।

सामायिक में बैठा है, वहां बैठने का स्थान कम मिला । कभी कभी सामायिक करने वाले लोग अधिक संख्या में आ जाते हैं, तो संख्या बढ़ जाने से सिकुड कर बैठना पडता है । स्थान की कमी के कारण मन में संकल्प–विकल्प नहीं आते बल्कि प्रसन्नता अनुभव करते हैं कि इतने साधर्मी भाई आये हैं मैं सिकुडकर बैठूंगा तो उनको भी लाभ होगा, यह भावना होती है तो यह भी तप की भावना होगी । किंतु यदि वह सोचता है कि इतना स्थान तो मेरे लिए रिजर्वड है । उस स्थान पर कोई दूसरा बैठ जायेगा तो उस पर लाल पीला होगा मेरे तुम्हारी कोहनी लग गई अब सामायिक नहीं करूंगा । क्या ऐसे विचारों से कषाय प्रतिसल्लीनता तप होगा ? कषाय का शमन करने के लिए तो न मालूम कितनी कोहनियां सहन करनी पडती हैं । यों तो घर में बैठ कर भी कई छोटी छोटी बातों का सामना करना पडता है । इसलिए सामायिक करने वाले को उदारता का बरताव करना चाहिए । उसको यह सोचना चाहिए कि

सामायिक पौषध आदि करने के लिए यह धर्म स्थान है । इसमें उदारता के साथ बैठना चाहिए । अन्य व्यक्ति आवे तो सत्कार की दृष्टि से बैठाना चाहिए । ऐसी उदारता होती है तो आना सार्थक होता है । मकान वाला महान उपकार करके मकान का उपयोग करने की आज्ञा देता है । संतों के लिए मकान की आज्ञा दी उसको क्या लाभ होगा ? एक व्यक्ति आहार देता है, पानी देता है, कपड़ा आदि आवश्यक वस्तुएं देता है और दूसरा मकान की आज्ञा देता है— इन दोनों में बहुत अंतर बताया है । जो मकान की आज्ञा देता है उसने केवल मकान ही नहीं दिया बल्कि उसने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की साधना में योगदान दिया । आहार-पानी देने से तो कुछ को लाभ मिलता है । लेकिन मकान में बैठकर शांतिपूर्वक धर्म ध्यान की आराधना करने का अवसर प्रदान किया है । कुछ माताओं को ज्ञान नहीं होता है, इसीलिए भी वे मकान की आज्ञा नहीं देती । उन माताओं ने अपना कर्तव्य क्या समझा ? जो सर्वस्व का त्याग करके त्यागी जीवन में विचरण करते हैं, वे आवे तो उनका सत्कार सम्मान करना चाहिए । यह उन व्यक्तियों का नहीं, त्याग का सत्कार सम्मान है, भगवान महावीर के तीर्थ का सम्मान है। देनेवाले ने मकान दिया तो हम पाप के भागी क्यों बने ।

जैसे कमरे की खिडकियां बंद करके कचरा साफ करते है उसी तरह से आश्रव के द्वार बंद करके सामायिक में बैठकर अगला क्या कार्यक्रम रखें, यह भी सीखना आवश्यक है. आप यह सोचते हैं कि सामायिक के ३२ दोष टाल कर सामायिक कर रहे हैं तो सामायिक इतने मात्र से नहीं होगी. जिस उद्देश्य से बैठे है, उसकी पूर्ति नहीं होगी. बत्तीस दोषों की जानकारी के साथ सामायिक के उद्देश्य एवं विधेय की भी जानकारी करके उसे जीवन में पूर्ण स्थान देगे तो आपका जीवन आनंद प्रद होगा.

दिनांक २८-७-८४
बोरीवली (पूर्व) बंबई

माननीय जीवन एक बहुमूल्य उर्जा है. अनंत-अनंत शक्ति स्त्रोत इसमें भरे पड़े है. इसीलिए संसार के अधिकांश तत्व द्रष्टाओं ने इसे सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है. जैन आगमों में 'माणुस्सं खु सुदुल्लहं,' कहकर इसे दुर्लभ बताया तो व्यास जी ने न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् कह कर इसे सर्वश्रेष्ठ घोषित किया है.

किंतु आज इस बहुमूल्य उर्जा का उपयोग किस दिशा में हो रहा है. आज के तथाकथित शिक्षित अपनी प्रतिभा को चंद कागज के टुकडों के लिए किस दिशा में लगा रहे है यह एक विचारणीय ज्वलंत प्रश्न है.

हमारे भीतर मानवीय वृत्ति का प्रादुर्भाव हो, हम सही अर्थों में मानव बनें एवं अपनी उर्जा का समाज कल्याण एवं आत्मोत्थान की दिशा में प्रयोग करें...

इन्हीं सब बिंदुओं पर सार गर्भित हृदय स्पर्शी विवेचन पढ़िये प्रस्तुत प्रवचन में.

संपादक

आजका मानव और मानवता

बहुमूल्य है यह जीवन

वीतराग देव की पवित्र वीतरागता को स्मृति पटल पर उभारते हुए वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में मानवीय जीवन–मूल्यों का चिंतन करना है । आगमकारों ने मानव जीवन को संसार की समस्त जीव–योनियों में सर्वाधिक मूल्य प्रदान किया है । आत्म विकास एवं विज्ञान विकास की पूर्ण क्षमता केवल मानव जीवन में ही है. अतएव वीतराग देव प्रभु महावीर ने जिन चार अंगो को अति दुर्लभ बताया है । उनमें प्रथम अंग मानुसत्तं–मनुष्यत्व का उल्लेख किया। यहां मनुष्यत्व से मानवीय आकृति नहीं, मानवता को ग्रहण करना चाहिए । मानवीय शरीर की आकृति तो बहुत उपलब्ध होगी, लेकिन मानवता, विरले व्यक्तियों में ही पायेगी. इसीलिए इसको दुर्लभ कहा,

वैसे अन्य प्राणियों की अपेक्षा मानवीय शरीर उपलब्ध होना भी दुर्लभ है, लेकिन मानवीय आकृति की अपेक्षा भी प्रत्येक मानव में साहजिक रुप से दबी हुई मानवता का विकास ही दुर्लभ है ।

आध्यात्मिक जीवन की समग्र शक्तियां मानवीय भूमिका पर ही पल्लवित और पुष्पित होती हैं । आत्मिक शक्ति ही नहीं, भौतिक संसार में जो विज्ञान की शक्तियां सामने उभरी हैं । वे भी इसी मानवीय जीवन का परिणाम है ।

इसीलिए इस श्रेष्ठ मानवीय तन को प्रजापति की उपमा दी गई है । सतपद उपनिषद में मानवीय तन को परमात्मा की आकृति बताई है । वहां कहा गया है कि मानव परमात्मा की प्रतिकृति है ।

दुसरे शब्दों में कहूं तो यह पुतला परमात्मा का प्रतिनिधित्व ले-कर चलनेवाला है।

महाभारत के शांति पर्व में उल्लेख आया है :

नहि मानवात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्

मानव से बढकर श्रेष्ठतम अन्य कोई तत्व नहीं है। आज का मानव इन व्याख्याओं की रट भी लगा लेता है। शब्दों का अर्थ भी लगा लेता है, किंतु वह मानवीय जीवन का मूल्य नहीं समझ पा रहा है। कुछ ही व्यक्ति मानवता की भूमिका पर आरुढ होने-वाले मिलेंगे। अधिकांश मानवीय तनधारी व्यक्ति दानवीय जीवन की प्रतिकृति ले कर चलते रहे हैं।

रामायण में रावण का भी उल्लेख हुआ है और राम का भी। दोनों का तन मानवीय था। रावण राक्षसी सत्ता से अभिसंज्ञित हुआ और राम देवी संज्ञा से विभूषित हुए। तन वही आकृति वैसी ही। यह सुस्पष्ट है कि एक समान आकृति में रावण भी रह सकता हैं और राम भी.

जहां ईश्वर का संबंध है: इस मानवीय तन में ही इश्वर पर-परमात्मा की शक्ति दबी हुई हैं. ईसी आकृति में भगवान महावीर जैसी चैतन्य शक्ति भी रही हुई हैं। आज के डाकटर इस शरीर के भीतरी अवयवों को पहचान रहे हैं, लेकिन इस शरीर की मौलिक स्थिति क्या है, यह किससे संचालित है? ईसका संचालन कर्ता जो परिपूर्ण स्वतंत्रता का धारक है और इसी पिंड में समाया हुआ है, कौन सा तत्व है? इस और वहुत कम डाक्टरों का ध्यान जाता है.

देह के भीतर

शरीर का ऊपरी रूप एक दीख रहा है, किंतु इसके भीतर सूक्ष्म एवं सूक्ष्मतम शरीर विद्यमान हैं। वैसे आगमिक दृष्टि से

शरीर पांच प्रकार के बताये गये हैं । औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस और कार्मण । हमें केवल औदारिक शरीर ही दृष्टिगत होता है । अन्य तैजस, कर्मण, जो इसी शरीर से संयुक्त रहे हुए हैं, हमें दिखाइ नहीं देते हैं ।

जब हमें सूक्ष्म शरीर भी नहीं दिखाई दे रहे है तो इन शरीरों का निर्माता–नियंता एवं धारक, जो कि सूक्ष्माति सूक्ष्म है, कैसे दिखाई दे सकता है । जो चर्म चक्षुओं दृष्टिगत नहीं हो रहा है वहीं विज्ञानवान् आत्मा है । यद्यपि वह विशिष्टतम वैज्ञानिक अपनी शक्ति का उपयोग करना चाहता है, किंतु इस शरीर के आवरण में इतना दब गया है कि उसकी समस्त शक्ति मुरझा गई है । वह स्वयं विकास हेतु आगे बढ़ना चाहता है, बाहर आना चाहता है लेकिन अमानवीय तत्व, राक्षसी तत्व, आसुरी शक्तियां इस वैज्ञानिक को बाहर उभरने नहीं देती । वे अपना साम्राज्य जमा कर चल रही हैं ।

यद्यपि इन शक्तियों का स्वतंत्र कोई अस्तित्व नहीं है । इन शक्तियों का निर्माण भी इसी वैज्ञानिक ने किया है । शक्तियों का निर्माण करने के पश्चात् यह वैज्ञानिक गफलत में रहा और उन्होंने इस पर आधिपत्य प्राप्त कर लिया । यदि वह शरीर पिंड में रहने-वाला ज्ञानवान वैज्ञानिक अपने स्वयं के स्वरुप को पहचान ले तो इन सभी आवरणों को हटाकर के सारे विश्व में एक अपूर्व ज्योति जगा सकता है । यह ज्योति जगाने का माध्यम शरीर है । वह तभी संभव हैं जब कि मानव मानवता को सुव्यवस्थित करें ।

मनुष्य कहने से सामान्य रुप से सभी मानवों का ग्रहण हो जाता है । कोई मनुष्य नहीं बचता । वैसे ही मानवता कहने से एक भावात्मक स्थिति उभरती है ।

इस शरीर का मुख्य अंग मस्तिष्क है, जो संपूर्ण शरीर का केंद्र बिंदु है । इस मस्तिष्क में कौन–कौनसी शक्ति किस रुप में कार्य

कर रही है। इसका अनुसंधान अन्य नहीं, यह स्वयं ही कर सकता हैं. किंतु आज का मानव इस गरिमामय महान उपलब्धि का कितना सदुपयोग कर रहा है यह विचारणीय है. आज भी अधिकांशतया इस मानवीय शक्ति का दुरुपयोग ही होता दिखाई दे रहा है.

जीवन का उपयोग

एक बहुत बडा, जौहरी था, जिसने अपनी जिंदगी में बहुत जवाहरात का संचय किया, परीक्षण किया, व्यापार किया, बडी पूंजी एकत्रित की। उसकी दृष्टि में सार तत्व के रुप में तीन चंद्रकांत मणियां आ गई. उसने सोचा कि ये चंद्रकांत मणियां मेरे पुत्रों के लिए ही नहीं, अनेक पीढियो के लिए पर्याप्त है. मैं परलोक यात्रा की तैयारी कर रहा हूं, मुझे इन मणियों की पहचान है, मेरे पुत्रों को इतनी पहचान नहीं है. फिर भी मेरे उपर आस्थावान पुत्र यदि इनका सदुपयोग करेंगे तो वे एक पीढी नहीं, अनेक पीढियों तक शांति और सुख में अमन चैन का जीवन वितायेंगे.

पुत्रो को आह्वान किया, तीनों पिता के सामने उपस्थित हुए, पिता ने स्नेह और सौहार्द्र की भावना से पुत्रों के सिर पर हाथ रखा और कहा 'पुत्रों, में शरीर पिंड की दृष्टि से तुम्हारा जनक हूं. जनक का कार्तव्य होता है कि उसकी संतान सभी तरह से सुखी और समृद्ध वनें,-ऐसा प्रयत्न करे.

संतानो का कर्तव्य है कि अपने जनक को व्यवस्थित रुप में अंतिम समय तक सुख और शांति का संवल दे और उनके ऋण से अऋण हो. जनक ने सारी जिंदगी संतान के हेतु पाप में व्यतीत की तो संतान का कर्तव्य है कि अपने माता पिता का अंतिम समय सुखद भव्य तरीके से व्यतीत हो. ऐसा सहयोग दें।

आप लोग अपना कर्तव्य पालन करें या न करें मुझे विश्वास है कि तुम अपना कर्तव्य का पालन करोगे. किंतु मुझे सुख शांति

दोगे. इस दृष्टि से मुझे कुछ नहीं कहना है, और न इस भावना से कुछ देना है, मैं अपना कर्तव्य समझ कर मेरी जिंदगी का जो सार तत्व मैंने आर्थिक दृष्टि से प्राप्त किया है वह तुम तीनों में विभक्त कर देता हूं. ये तीन बहुमूल्य चंद्रकांत मणियां है इनका यदि सदुपयोग किया गया तो तुम जिंदे हो तब तक ही नहीं बल्कि तुम्हारी संतानो कीं अनेक जिंदगियों तक सुख और शांति देनेवाली होगी.

चंद्रकांत मणि—प्रदर्शन की दिशा में

एक भाई ने विचार किया कि अंधकार परिपूर्ण कमरे में दीपक जलाने से तेल खर्च होगा। क्या ही अच्छा हो कि इस चन्द्रकान्त मणि को रात्रि के समय ऊंचे स्थान पर रख दिया जाय, सारी रात्रि तक प्रकाश रहेगा। उसने उस अमूल्य मणिका वैसा ही उपयोग किया। उसके मन में बात समाई नहीं, उसने अपनी मणि का प्रचार प्रसार करना प्रारम्भ कर दिया कि मेरे पिताजी मुझे ऐसी मणि दे गये हैं जो अंधेरे में प्रकाश करती है। उसके कारण मुझे तेल खर्च नहीं करना पड़ता। रात्रि भर प्रकाश होता है। मैंने उसे ऊंचे स्थान पर रख दिया है।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है किं बहुमूल्य वस्तु को अधिक प्रचारित नहीं करना चाहिए उसे जितना गुप्त रखा जाता है उतना ही सुखप्रद होता है। लेकिन ईतनी गंभीरता, इतना धैर्य हर व्यक्ति के मन में नहीं रह पाता है। इस भाई को मणि का अधिक प्रचार करते पाया तो किसी का मन चंचल बन गया। सब में मानवता कहां रहती है। जिसमें मानवता होती है वह देखता है कि मेरा है सो मेरा है दूसरे का है वह दूसरे का है वह मेरा नहीं है। लेकिन जिसमें मानवता नहीं होती वह सोचता है कि मेरा है वह तो मेरा है ही, लेकिन जो दूसरे का है वह भी मेरा है। एक असभ्य

चोर ने रात्रि के समय उसके घर में चोरी कर ली। जिन्होंनें मानवता का सूत्र नहीं समझा वे दानवता का सूत्र ले कर चलते हैं। ऐसे व्यक्ति दूसरों की वस्तु का संग्रह करके आनन्द मनाते है। इस प्रचार-प्रसार के कारण पहले भाईकी मणि चोरी चली गई।

दूसरे भाई ने विचार किया कि मैं इस चन्द्रकांत मणि का क्या करुं.? मुझे तो पांच इन्द्रियों के विषय ही प्रिय हैं। इसलिए अधिक से अधिक उनका उपयोग किया जाय। वह स्वयं अपने घर से संतुष्ट नहीं था। संतुष्ट नहीं था इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसकी धर्मपत्नी कुरुप थी। सब कुछ सम्पन्नता होते हुए भी अपनी पाशविक भावनाओं पर वह कन्ट्रोल नहीं कर पा रहा था। वह रावण का साथी बन गया। उसे वेश्या वृत्ति की लत लग गई और उसनें नगरवधु के चरणों में चन्द्रकांत मणि भेंट कर दी।

संपत्ति का सही उपयोग-परमार्थ

तीसरे भाई ने सोचा कि मुझे इस मणि का किसी महान कार्य के लिए उपयोग करना है। किसी विशिष्ट ज्ञानी पुरुष के संरक्षण में इस की ज्योत्स्ना से किये रासायनिक वस्तु का निर्माण करके अधिक स्वर्ण का निर्माण करके मनुष्य तन में रहनेवाले जितने मेरे भाई हैं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना की दृष्टि से उन सब को सुख सुविधाओं का मुझे प्रयत्न करना है। इस चन्द्रकांत मणि से जितनी भी उपलब्धि हो उसे दुखित मानवों को सुख-सुविधा पहुंचाने के लिए विसर्जन कर दूं, उनके लिए त्याग कर दूं, इस भावना से उसने विशिष्ट पुरुष से संपर्क साधा और रसायन प्रक्रिया से पर्याप्त मात्रा में स्वर्ण उत्पन्न किया। उस स्वर्ण से सारे देश के व्यक्तियों को सन्तुष्टि दी। उनकी आवश्यकता की पूर्ति करके मानव कर्तव्य को निभाया। लोग जब उसकी तारीफ करने लगे तो उसने कहा कि मेरी तारीफ क्यों करते हैं, भौतिक पदार्थों की जितनी आवश्यकता

मुझे है उतनी सबको है। मेरे पास आवश्यकता से अधिक जो सामग्री है उसका मैं दूसरों में सम वितरण करता रहूं। वह इसी भावना से चलने लगा। उसने मानव जाति में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया। उसने सोचा कि यह विशेपता इतने मात्र से समाप्त न हो। मुझे तो आगे दिव्य ज्योति प्रगट करनी है जो मानवीय योनि में ही प्राप्त हो सकती है। उसका विकास तभी होगा जब कि मैं परिपूर्ण सत्यवादी बन जाऊं।

तीसरे भाई ने चंद्रकांत मणि को जनकल्याण के लिए समर्पित कर दिया। वह परिपूर्ण सत्य और परिपूर्ण अहिंसा के आधार पर आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त करके एक दिन परम सुख और परम शांति को प्राप्त कर लेता है।

बंधुओ, यह एक रुपक है। इस विषय में आप चिंतन करिये। यदि ऐसी चंद्रकांत मणि आज के मनुष्यों को मिल जाये तो वे उसका उपयोग किस भाई की तरह करेंगे? मैं किससे पूछूं। पूछ कर उत्तर लेने का प्रसंग नहीं है, लेकिन मैं सबको संबोधित कर रहा हूं, यदि आपके सामने चंद्रकांत मणि रख दी जाय तो उसे लेनेवाले कितने आयेंगे? किन्तु उसको ले कर करेंगे क्या? पहले भाई या दूसरे भाई की तरह बर्बाद करेंगे या तीसरे भाई की तरह उसका सदुपयोग करेंगे? आप कहेंगे कि आप तो स्वयं अपरिग्रही हैं आपके पास कहां है ऐसी मणि? ठीक है आपका चिंतन सुंदर है। किंतु इसे भावात्मक दृष्टि से समझें। चंद्रकांत मणि और सूर्यकांत मणि यह मनुष्य का तन ही है। इसका आज क्या उपयोग हो रहा है? इस मानवीय तन में रहनेवाली आत्मा रावण की साथी बन रही है या राम की। कर्मयोगी श्री कृष्ण ने मानव का क्या कर्तव्य बताया है? मैं किसको क्या हूं, चाहे किसी नाम से पुकारा जाय, जिन विशिष्ट पुरुषों का उल्लेख हो रहा है, वैसी परिपूर्ण सत्ता इसी तन में समाई हुई है। चंद्रकांत मणि है। तो सीमित प्रकाश कर सकती

है लेकिन यह मानवीय तन की मणि सारे विश्व को आलोकित कर सकती है, प्रकाशित कर सकती है, बशर्ते कि आप इसका सदुपयोग करना सीख जायें।

आज अधिकांश भाई कुछ आर्थिक सिद्धि प्राप्त करके उसका प्रदर्शन करने लग जाते हैं। पहले के जमाने में धन और रूप का प्रदर्शन कम होता था। रुप प्रदर्शन का कार्य केवल नगरवधुओं तक सीमित था, किन्तु आज इस मानवीय तन को विषयों में या एक दूसरे भाई को ठगने में लगाया जा रहा है। धोखा धंडी करके दूसरे का माल हड़पने के प्रयत्न में लगाया जा रहा हैं, दूसरे का कलेजा चीरने में लगाया जा रहा है। आज का आम व्यक्ति धर्म पर कितना आरुढ है यह तटस्त भाव से चिंतन करने का प्रसंग है। यहां पर सत्संग का प्रसंग है और इसी भाव से हमें समझना है।

प्रभु महावीर ने कहा है कि ज्ञान का प्रकाशन करो। किंतु यह तब होगा जब कि उसका सद्‌विनिमय करोगे।

आज की शिक्षा और उसका उपयोग

आज ज्ञान की कमी नहीं है लेकिन ज्ञान कैसा मिल रहा है? मूल वैज्ञानिक ज्ञान नहीं हो कर भौतिक तत्वों का ज्ञान प्राप्त हो रहा है और अंदर की विज्ञानवान आत्मा स्वयं दब रही है। कितना अभद्र व्यवहार हो रहा है। उस अनंत शक्ति संपन्न आत्मा के साथ।

आज सरकार की ओर से शिक्षण की बहुत सुविधा है। स्कूल, कालेज, डिग्री कालेज, विश्व विद्यालय आदि है। सब ज्ञान विज्ञान के निमित्त हैं। लेकिन वह ज्ञान किस रुप में है और उसका उपयोग किस रुप में किया जा रहा है, इसका विज्ञान क्या आज के तथा-कथित बुद्धिवादियों को है। इस मानवीय शरीर में रहनेवाले पांचों शरीर के निर्माता विज्ञानवान आत्मा का ज्ञान किसी को है? इससे संबंधित ऐसा शिक्षण क्या स्कूलों, कालेजों में दिया जाता है? जिससे

समता की संर्जना हो सके ? कदाचित् ऐसा शिक्षण मिलता तो प्रसन्नता अनुभव की जा सकती है ।

लेकिन जहां तक श्रवण करने को मिलता है उससे लगता है कि आज के विचार क्या हो रहे हैं । सिनेमा, जासूसी उपन्यास आदि के शिक्षण इंसान को क्या कुछ बना रहे हैं । स्कूलों, कालेजों से सब तरह की डिग्रियां प्राप्त होने पर भी जब तक स्वयं आत्मा की डिग्री प्राप्त नहीं करते, जब तक मानवी भूमिका पर आस्था नहीं होती तब तक क्या इस जीवन को आप मानवता का जीवन कहेंगे ? मैं एक घटित घटना आपके समक्ष रख रहा हूं जिसमें यह स्पष्ट हो जाता है कि आज की तथाकथित शिक्षा कैसी कैसी हरकते सिखा रही है । घटना संभवतः कानपुर की है ।

तथाकथित शिक्षित युवती

कालेज से डिग्री प्राप्त करने के बाद एक तरुणी कालेज से बाहर आई । कालेज में अध्ययन करने के साथ साथ उसने सिनेमा घरों में कई प्रकार के दृश्य देखें हैं । साथ ही जासूसी उपन्यास भी पढे हैं । उसने सोचा कुछ आधुनिक तरीके का पुरुषार्थ भी मैं जानती हूं । लेकिन इसकी पूर्ति के लिए अर्थ चाहिए और अर्थ के लिए समय की आवश्यकता है । जो मानवीय भूमिका से अर्थ उपार्जित करता है वह श्रम करके अर्थ पैदा करता है, लेकिन जो मानवता की भूमिका से खिसक चुका वह सोचता है कि सिनेमा घरों में और जासूसी उपन्यासों में अर्थ प्राप्ति के कैसे कैसे उपाय बताये हैं, उसी तरह का उपाय काम में लेना चाहिए ।

उस तरुणीने एक सुंदर पोषाक पहनी और टैक्सी में बैठ कर एक बड़े प्राइवेट अस्पताल में पहुंची । बंबई के बडे अस्तपतालों में कितनी भीड लगती है यह आप जानते ही हैं । सभी मरीज क्रम से जाते हैं क्रमांक से जाना ईमानदारी है, मानवता का रुप है । लेकिन यदि कोई

मानवता के विपरीत कार्य करे तो डाक्टर के पास जल्दी पहुंचा जा सकता है। वह तरुण महिला, कालेज से निकली हुई छात्रा बडी चतुराई से गई। उसने सोचा कि सबसे पहले डाक्टर से कैसे मिलना उसने पांच रुपये का नोट बैग में से निकाला और चपरासी के हाथ में थमाते हुए कहा कि मुझे सबसे पहले डाक्टर साहब से मिलना है। रुपये पाकर चपराशी भीड में से उस महिला को साथ ले कर डाक्टर के दरवाजे पर पहुंचा और डाक्टर के पास जा कर कहा कि एक संपन्न घराने की महिला आई है, पैसेवाली मालूम पडती है। पैसे का नाम आया तो डाक्टर का मन भी ललचा गया और उसने दूसरे सीरियस मरीज को, जिसे वह देख रहा था, कहा कि तुम फिर आना अभी एक सीरियस मरीजको देखना है। वह महिला अंदर पहुंची और ५० रु. डाक्टर को भेंट कर दिये। डाक्टरने देखा कि वास्तव में यह कोई बडी धनवान महिला मालूम होती है। उसने महिला से पूछा कि कहो क्या बात है। महिला ने कहा कि बात क्या है मैं बडी दुःखी हूं। डाक्टर ने कहा बोलो तुम्हें क्या दुःख है? वह बोली की मेरे माता पिता ने जिसके साथ मेरी शादी की है वह शादी के बाद विकृत दिमाग का हो गया है और मुझे तंग करता है। डाक्टर–"क्या वह पिटाई करता है या पागल हो गया है?" हां, वह पागल हो गया है लेकिन अनाडी पागल नहीं, सभ्य पागल है?" डाक्टर ने पूछा "क्या पागलपन करता है?" "वह जब भी बाहर से आता तब मुझसे कहता है कि बिल पेमेंट करो। किसी बिल के चक्कर में उसका दिमाग विकृत हो गया, अतः वह जहां जाता है, थोडी–थोडी देर में बोलता है 'बिल पेमेंट करो।' मैं थोडे–थोडे पैसे दे कर शांत करती हूं लेकिन आखिर में तंग आ गई हूं। मैं नारी हूं इतना रूपया कहांसे लाऊं, आप कृपा करके मेरे पतिका इलाज कर दें। उसके मस्तिष्क की जांच कर दें। पचास रुपये मैंने पहले आपको फीस के दिये हैं। ये पचास रुपये और देती हूं वह आपके पास जांच कराने आयेगा तो आपसे भी रुपये मांगेगा

तब आप ये रुपये उसे दे देना." उसने पचास रुपये और डाक्टर के हाथ में दे दिये. डाक्टर ने कहा कि जल्दी ले आओ. चपरासी से कह दिया कि वह बाई जी आवे तो पहले आने देना.

अस्पताल से चल कर वह महिला एक बडे जौहरी की दुकान पर पहुंची. मनुष्य की नजर सबसे पहले आगंतुक की पोषाक और आकृति की तरफ जाती है। सेठ की नजर भी उस तरफ गई. महिला को कार से उतरते देखा तो सेठ ने मुनीम जी से कहा कि जल्दी जाओ उसे स्वागत के साथ ले आओ, किसी बडे आफिसर या मिनिस्टर की पत्नी मालूम पड़ती है. जब वह दुकान पर आई तो सेठ और मुनीमजीने उसका स्वागत किया और पूछा कि बहिनजी क्या चाहिए। उसने कहा कि मेरे पति देव यहां के बहुत बडे डाक्टर हैं पैसे की उनके पास कभी नहीं है। घर में शादी का प्रसंग आ रहा है इसलिए अच्छे जेवर चाहिए और अच्छा जवाहरात चाहिए। सेठ ने कहा "हां, हां, लीजिए."। उसने जवाहरात और जेवर दिखाये। उस महिला ने अच्छे अच्छे जेवर और जवाहरात छांट लिए। उसने सारे जवाहरात की लिस्ट बनाई और कहा कि आप मुनीमजी को मेरे साथ भेज दीजिए मैं घर पर रुपये दिलवा देती हूं। सेठ जी ने सोचा कि आज अच्छे सुगन ले कर आया हूं जो इतनी अच्छी विक्री हो गई। सेठजी ने मुनीम से कहा कि बाईजी के साथ जा कर पचास हजार रुपये ले आओ।

बाइजी के साथ बडे मुनीमजी टैक्सी में बैठ कर होस्पिटल पहुंचे होस्पिटल का चपरासी बाईजी की राह देख ही रहा था. बाई जी ने उसके हाथ में पांच रुपये का नोट और थमा दिया। चपरासी ने उनको डोक्टर साहब के सुपुर्द कर दिया और कहने लगी कि हुजूर ये आ गये हैं इन्हें देखें, उसने दरवाजे के पास खडी रह कर इशारा कर दिया.

डाक्टर ने मुनीमजी से पूछा कि आपका स्वास्थ्य कैसा है ? उसने कहा "मेरा स्वास्थ्य सब ठीक है, "लाईये बिल पेमेंट करिये." डाक्टर ने सोचा कि महिला का कहना सही है। उसने कहा कि हां आपको रुपये दूंगा लेकिन पहले आपके मस्तिष्क की जांच कर लूं. मुनीमने कहा कि मैं पागल थोडे ही हूं। लाइए बिल पेमेंट करिये." डाक्टर विचार में पड गया कि बात क्या है। मुनीमजी ने दरवाजे के पास उस महिला की तरफ देखा, सो डाक्टर को हाथ से इशारा कर रही थी, कहा पचासों दे दीजिये। मुनीमजी सोचने लगे कि यह पचास हजार देने का कह रही है। बहिन का इशारा पा कर डाक्टर ने पचास रुपये मुनीमजी के हाथ में दे दिये। मुनीमजी ने कहा "पचास रुपयो से क्या होगा पचास हजार रुपये लाओ।" डाक्टर ने सोचा कि वास्तव में यह पागल है। अब पचास हजार रुपये मांग रहा है. डाक्टर ने दरवाजे की तरफ देखा तो बाईजी वहां से गायब थी डाक्टर ने पूछा तो मुनीम ने कहा कि मैं तो अमुक सेठ का मुनीम हूं, यह महिला दुकान से ५० हजार रुपये के कीमती जवाहरात और जेवर ले कर आई थी और कह रही थी कि मेरे पति के पास चलो वहां रुपये दिला देती हूं. वह अपने आपको आपकी पत्नी बता रही थी. डाकटर ने कहा कि मेरी पत्नी कहां है वह तो मुझे अपने को आपकी पत्नी बता रही थी, आपका इलाज कराने के लिए साथ ले कर आई थी. कह रही थी कि मेरे पति को दिमागी बीमारी है, वे बार—बार बिल पेमेंट करने की रट लगते है. डाक्टर और मुनिम एक दुसरे का मुंह देखने लगे. मुनीमजी भागे हुए दुकान पर गए और सेठ जी को वस्तु स्थिति से अवगत कराया किन्तु अब उस चालाक महिला का कहां पता लगने वाला था।

बंधुओ, जो कुछ घटना घटी हो. आप इस पर चिंतन करिये. इतनी डिग्रियां प्राप्त करने के बाद भी मानवीय जीवन में इस प्रकार का व्यवहार हो तो यह मानवीय जीवन है या और कुछ ? आज

क्या कुछ बन रहा है. आज व्यक्ति को शांति नहीं, परिवार में शांति नहीं, समाज, राष्ट्र और विश्व में शांति नहीं. यह सारी अवस्था क्यों हो रही है? आज के मानव ने मानवता को तिलांजली दे दी है. आज मानव कैसा कैसा रुप ले कर चल रहा है. आज के मानव को समझना है कि पांच शरीर क्या है, मानवता का धरातल क्या है. यह सारा विषय समय पर ज्ञात होगा. जो बातें आपके समक्ष रखी गई है उन पर आप चिंतन मनन करेंगे तो मानवीय तन में रहते हुए जीवन का सदुपयोग कर सकेंगे. सेठ के तीनों पुत्रों में से आप किस नंबर पर आना चाहेंगे, यह आप स्वय सोचें. तीसरे नंबर के पुत्र की तरह बनना पसंद हो, तो सबसे पहले मानवता की पवित्र भूमिका अदा करिए, मानव मानव के साथ समता का व्यवहार करना सीखिए. जब तक मानवता नहीं आयेगी तब तक वास्तविक आनंद का अनुभव नहीं कर पायेंगे। आज मानवता मरी नहीं, दब गई है। उसे पुनः अनावृत करना हैं तो समता के धरातल पर आना ही होगा। यदि यह नहीं तो मानव जीवन का ठीक तरह से सदुपयोग नहीं बन पायेगा. इसी पर चिंतन-मनन करेंगे तो शांति मिलेगी.

दिनांक २९-७-८४
बोरीवली (पूर्व) बंबई

सामायिक और मनकी समस्या

सामायिक के दो रुप

विगत कुछ दिनों से आत्म साधना के प्राथमिक सोपान सामायिक का विवेचन चल रहा हैं. अंतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर ने भव्य जनों के लिए आत्म सिद्धि हेतु जिन–जिन धार्मिक विधि विधानों का प्रतिपादन किया उन विधि विधानों में सबसे प्राथमिक विधान सामायिक साधना का है. प्रभुने सामायिक के प्रमुख रुप से दो भेद किये है. एक सर्व सामायिक और दूसरी देश सामायिक. सर्व सामायिक मुनियों की होती हैं तो देश सामायिक श्रावकों की। प्रस्तुत में देश सामायिक का विवेचन चल रहा है.

जो व्यक्ति सामायिक साधना यदि ४८ मिनिट तक भव्य तरीके से कर ले, उसका विधि विधान सीख ले, सामायिक के भेद प्रभेद का विज्ञान कर ले और उन्हें आचरण में ले आवे तो यह कहा जा सकता है कि शुद्ध आध्यात्मिक जीवन का बीजारोपण उसकी आत्मा में हो गया है.

सामायिक के विषय में आपके समक्ष जो कुछ विवेचन आ रहा है वह समझने का हैं.

सावद्य योग त्याग–भेद प्रभेद

सामायिक की साधना करने के लिए सावद्य योगों का त्याग आवश्यक है. इसलिए आप प्रतिदिन करेमि भंते के पाठ का उच्चारण करते हैं। इस पाठ से आप सावद्य योगों का त्याग करते हैं. यह सावद्य योग का त्याग भी एक दृष्टि से सामायिक साधना में [illegible]

वाली रुकावटों को, बाधाओं को रोकने का उपक्रम है। अतः सावद्ययोग के त्याग को भी सामायिक कहा जा सकता हैं। सामायिक के ६ भेदों का नामोल्लेख पूर्व में किया जा चुका है. सावद्ययोग त्याग रूप सामायिक के भी उपर्युक्त छः भेद होते है–नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव.

इसी प्रकार किसी का सावद्य योग त्याग नाम रख दिया जाय वह सावद्ययोग त्याग संबंधी नाम सामायिक है. अक्षर लिख दिये जायं, 'सावद्ययोग त्याग' वह स्थापना सामायिक की संज्ञा में आ जाती हैं।

द्रव्य सावद्य योग त्याग सामायिक ६ काया के जीवों की रक्षा है. अर्थात् ६ काया के जीवों का उपमर्दन नहीं करना एवं उनका संरक्षण जहां हो वह सावद्य योग त्यागरुप द्रव्य सामायिक है.

जिस क्षेत्र, जिस स्थान पर बैठ कर ६ काया के जीवों का उपमर्दन नहीं करते हैं–दो करण, तीन योग से। इस क्षेत्र के निमित्त से वह ग्रहीत त्याग क्षेत्र सामायिक है।

काल सामायिक जो ४८ मिनिट के अंतर्गत रहते हुए सावद्य योग की प्रवृत्ति पर अंकुश रखता है–सावद्य कार्यों में मन, वचन और काया के योगों की प्रवृत्ति नहीं करता, ४८ मिनिट तक इस अवस्था में स्थिर रहता है वह काल सामायिक है।

मन की समस्या और समाधान

कभी कभी मनुष्य सोचते हैं कि ४८ मिनिट तक मन स्थिर नहीं रह पाता। मन दौड़ लगाता रहता है। दो मिनिट के लिए भी मन स्थिर नहीं रहता। वह कहां से कहां चला जाता है। जब मन ४८ मिनिट तक अस्थिर रहता है तो वह काल सामायिक कैसे बन सकती है।

इस जिज्ञासा का समाधान इतना ही है कि जो व्यक्ति ४८ मिनिट के लिए सावद्य प्रवृत्तियों का त्याग करता है वह त्याग तीन योग से करता है मन से, वचन से और काया से, तो जो सामायिक पचकनेवाला पुरुष है वह क्या ४८ मिनिट की अवधि में सामायिक के क्षेत्र से उठ करके कहीं पाप करने के लिए जा सकता है ? नहीं जा सकता । वह शरीर तो वहीं रहता है, जितनी उसने क्षेत्र की मर्यादा रखी है. इसलिए शरीर कीं दृष्टि से उसी क्षेत्र और त्याग में स्थिर है. वचन कीं दृष्टि से वह पापकारी शब्द नहीं बोल सकता तो उतनी देर तक के लिए सामायिक काल में वचन भी स्थिर है ।

रहा प्रश्न मन का. मन इस अवधि में सामायिक की साधना करने में तन्मय नहीं होता और दुनिया भर में चक्कर काटता रहता है, उस अवधि में वह यह कल्पना भी कर लेता है कि सामायिक पुरी होते ही मैं व्यापार में लगूं या सामायिक का काल समाप्त होने पर मैं रसोई के कार्य में जुट जाऊं । अमुक लेन देन कर लूं, सगे संबंधियों से वात चीत कर लूं. यह कल्पना या इस प्रकार की अन्य कल्पना मानस से आ सकती हैं किंतु यह सारी कल्पना भविष्य से संबंधित है. पर कोई भी पुरुष, जिसने सावद्य योगों का त्याग किया है, वह ४८ मिनिट के समय के अंतर्गत समय में व्यापार कर लूं, रसोई कर लूं या अन्य कार्य कर लूं ऐसी कल्पना नहीं करता. ऐसी कल्पना करता है कि सामायिक पूरी होने के बाद यह करूं, वह करूं । सामायिक पूरी होने से पहले ऐसी कल्पना किस के मन में आती है ? मैं जहां तक समझता हूं । चाहे, बिना समझवाला व्यक्ति क्यों न हो, उसकी सामायिक चालू है और उसको भूख लगी है, माता कह रही है कि भोजन ठंडा रहा है, जल्दी आ जाओ तो वह कहता है कि अभी मेरी सामायिक पूरी होने में कुछ समय लगेगा । उसके मन में यह कल्पना नहीं आती कि मैं सामायिक के काल में ही भोजन कर लूं । इस दृष्टि से ४८ मिनिट के काल में

मन सीमा में रहता है। यद्यपि उसको भविष्य की कल्पना नहीं करनी चाहिए, किंतु कर लेता है। यह कुछ साधना की कमज़ोरी मानी जा सकती है।

सामायिक करने तो बैठ गये, लेकिन आपने उसका हेतु नहीं समझा। आपने सावद्य योगों का त्याग कर लिया, लेकिन सामायिक साधना कैसी करनी चाहिए, यह कार्यक्रम मन को नहीं सौंपा, तो बिना काम के मन रह नहीं सकता। उसे कोइ-न-कोई कार्य चाहिए। यदि आप सामायिक साधना का कार्य मन के सुपूर्द करके सामायिक करते तो मन सामायिक साधना के कार्य में लगा रहता, आपने सावद्य योगों का त्याग कर दिया तो आपका मन उसमें मजबूत है कि मैं सामायिक में कोई पाप नहीं करु, कच्चे पानी के हाथ नहीं लगाऊं। छोटा बच्चा भी सोचेगा कि कच्चे पानी का लौटा नहीं उठाउं, क्यों कि मेरे सामायिक है। इतना काम संभला रखा है। लेकिन आगे को कार्य मन के सुपुर्द नहीं किया तो मन का क्या दोष ?

मन एक नौकर

एक व्यक्ति आपके यहां नौकरी सर्विस करता है। नौकरी मिली और वह आपके यहां काम करने आया, यदि आपने उसको काम नहीं बताया तो वह आपकी दुकान पर बैठा रहेगा कि हाथ पैर हिलाने की चेष्टा करेगा ? और कुछ नहीं तो लकड़ी ले कर लकीरें खींचेंगा, इधर उधर देखेगा, आगे की कल्पना करेगा कि इस दुकान के आगे किस-किस की दुकान है और उसमें क्या-क्या माल भरा है, वह अने जानेवालों के साथ बात करने की कोशिष करेगा. यदि आप उसको दुकान का कार्य संभला देते हैं और कह देते हैं कि इतने समय तक यह कार्य करो। तो फिर वह नौकर कार्य करने के अलावा दूसरी कल्पना कर सकता है क्या ? वह गलत

रास्ते पर नहीं जा सकता । वैसे ही आपका मन भी नौकर है और सामायिक करनेवाला कर्ता आत्मा स्वामी है । आत्मा कोई शुभ कार्य उसको नहीं बताती और सावद्य योग का त्याग करवा कर सामायिक में बिठा देती हैं, तो बैठा-बैठा वह दूसरी कल्पना करेगा ।

यह द्रव्य मन खतरनाक भी है और सहायक भी है । स्वर्गीय गुरुदेव इस विषय में एक रुपक दिया करते थे ।

मन एक भूत

एक किसान के पास बहुत जमीन थी, सैंकडो बीघा । उस सारी जमीन को वह बोना चाहता था, लेकिन पूरे खेत में खेती करने के लिए मजदूर नहीं मिल रहे थे । उस किसान ने सोचा कि क्या किया जाय । मुझे सबसे बड़ी और अच्छी खेती करनी है और इसके लिए कितने ही मजदूर क्यों न रख लूं तो भी वे पूरी खेती करने में समर्थ नहीं होगे । थोड़ा समय तो लगेगा लेकिन किसी सिद्ध पुरूष के पास जा कर मैं मंत्र सीख लूं और उस मंत्र के सहारे किसी देव का आह्वान कर लूं । देव में बहुत बड़ी शक्ति होती है, ऐसा शास्त्रकार कहते है । नौकर के बदले में देव से काम लूंगा । देव थोड़े समय में काम निपटा देगा और मंत्र की साधना से वह मेरे आधीन हो जायगा, फिर तो मैं चाहूंगा जैसा कार्य उस देव से लूंगा ।

इस भावना से वह किसान एक सिद्ध पुरुप के पास पहुंचा अनुनय विनय किया कि भगवन्, एक ऐसा मन्त्र दीजिए जिससे मैं देवलोक के किसी देव को अपने आधीन कर सकूं ।

सिद्ध पुरुप भी कई तरह के होते है । आध्यात्मिक साधना को सब कुछ माननेवाले सिद्ध पुरुप कम होते हैं लेकिन लौकिक वृत्ति को साधनेवाला अधिक होते हैं । वह किसान लौकिक साधनावाले सिद्ध पुरुष के पासा गया । उस सिद्ध पुरुष ने कहा-भाई ऊपर के

मन सीमा में रहता है। यद्यपि उसको भविष्य की कल्पना नहीं करनी चाहिए, किंतु कर लेता है। यह कुछ साधना की कमजोरी मानी जा सकती है।

सामायिक करने तो बैठ गये, लेकिन आपने उसका हेतु नहीं समझा। आपने सावद्य योगों का त्याग कर लिया, लेकिन सामायिक साधना कैसी करनी चाहिए, यह कार्यक्रम मन को नहीं सौंपा, तो बिना काम के मन रह नहीं सकता। उसे कोइ-न-कोई कार्य चाहिए। यदि आप सामायिक साधना का कार्य मन के सुपूर्द करके सामायिक करते तो मन सामायिक साधना के कार्य में लगा रहता, आपने सावद्य योगों का त्याग कर दिया तो आपका मन उसमें मजबूत है कि मैं सामायिक में कोई पाप नहीं करुं, कच्चे पानी के हाथ नहीं लगाऊं। छोटा बच्चा भी सोचेगा कि कच्चे पानी का लौटा नहीं उठाउं, क्यों कि मेरे सामायिक है। इतना काम संभला रखा है। लेकिन आगे को कार्य मन के सुपुर्द नहीं किया तो मन का क्या दोष ?

मन एक नौकर

एक व्यक्ति आपके यहां नौकरी सर्विस करता है। नौकरी मिली और वह आपके यहां काम करने आया, यदि आपने उसको काम नहीं बताया तो वह आपकी दुकान पर बैठा रहेगा कि हाथ पैर हिलाने की चेष्टा करेगा ? और कुछ नहीं तो लकड़ी ले कर लकीरें खीचेंगा, इधर उधर देखेगा, आगे की कल्पना करेगा कि इस दुकान के आगे किस-किस की दुकान है और उसमें क्या-क्या माल भरा है, वह अने जानेवालों के साथ वात करने की कोशिष करेगा. यदि आप उसको दुकान का कार्य संभला देते हैं और कह देते हैं कि इतने समय तक यह कार्य करो। तो फिर वह नौकर कार्य करने के अलावा दूसरी कल्पना कर सकता है क्या ? वह गलत

रास्ते पर नहीं जा सकता। वैसे ही आपका मन भी नौकर है और सामायिक करनेवाला कर्ता आत्मा स्वामी है। आत्मा कोई शुभ कार्य इसको नहीं बताती और सावद्य योग का त्याग करवा कर सामायिक में बिठा देती हैं, तो बैठा-बैठा वह दूसरी कल्पना करेगा।

यह द्रव्य मन खतरनाक भी है और सहायक भी है। स्वर्गीय गुरुदेव इस विषय में एक रुपक दिया करते थे।

मन एक भूत

एक किसान के पास बहुत जमीन थी, सैंकडो बीघा। उस सारी जमीन को वह बोना चाहता था, लेकिन पूरे खेत में खेती करने के लिए मजदूर नहीं मिल रहे थे। उस किसान ने सोचा कि क्या किया जाय। मुझे सबसे बड़ी और अच्छी खेती करनी है और इसके लिए कितने ही मजदूर क्यों न रख लूं तो भी वे पूरी खेती करने में समर्थ नहीं होंगे। थोड़ा समय तो लगेगा लेकिन किसी सिद्ध पुरुष के पास जा कर मैं मंत्र सीख लूं और उस मंत्र के सहारे किसी देव का आह्वान कर लूं। देव में बहुत बड़ी शक्ति होती है, ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। नौकर के बदले में देव से काम लूंगा। देव थोड़े समय में काम निपटा देगा और मंत्र की साधना से वह मेरे आधीन हो जायगा, फिर तो मैं चाहूंगा जैसा कार्य उस देव से लूंगा।

इस भावना से वह किसान एक सिद्ध पुरुष के पास पहुंचा अनुनय विनय किया कि भगवन्, एक ऐसा मन्त्र दीजिए जिससे मैं देवलोक के किसी देव को अपने आधीन कर सकूं।

सिद्ध पुरुष भी कई तरह के होते हैं। आध्यात्मिक साधना को सब कुछ माननेवाले सिद्ध पुरुष कम होते हैं लेकिन लौकिक वृत्ति को साधनेवाला अधिक होते हैं। वह किसान लौकिक साधनावाले सिद्ध पुरुष के पासा गया। उस सिद्ध पुरुष ने कहा-भाई ऊपर के

देवलोक के देव तो तुम्हारे आधीन नहीं हो सकते, क्योंकि वे इन वस्तुओं से आकर्षित नहीं होते। उनके लिए तो बहुत बडी साधना और मन की एकाग्रता की जरुरत रहती है। लेकिन साधारण देव व्यन्तर जाति के देव या भूत तुम्हारे अन्दर में आ सकते हैं।

उस किसान ने सोचा कि भूत से काम बन सकता है। भूत बहुत काम कर सकते हैं! उस किसान ने कहा–"मेरे लिए छोटा देव ही सही।" उस सिद्ध पुरुष ने उस किसान को साधना का सूत्र दिया और उसकी विधि बता दी। वह लगन के साथ साधना सिद्ध करने के लिए बैठा। साधना सिद्ध हुई तो एक नीची जाति का व्यन्तर देव या भूत उसके सामने उपस्थित हो गया और कहा "बोलो मुझे तुमने क्यों आकर्षित किया?" किसान ने कहा तुमसे मुझे बहुत काम है। "भूत बोला" क्या काम करना है? मैं आया हूं तो देव दर्शन खाली नहीं जायेंगे, कुछ–न–कुछ काम करके जाऊंगा। तुम बतलाओ क्या काम करना है?" किसान ने कहा कि काम मेरे पास बहुत हैं लेकिन खेती का काम ज्यादा है इसलिए उसमें लगजाओ। इतने बीघा खेत बोना है, फसल ज्यादा लेनी है। उस देव ने कहा "काम तो मैं प्रारम्भ कर देता हूं, लेकिन शर्त यह है कि जब तक तुम काम बतलाओगे तब तक काम करुंगा। काम बताना बन्द कर दिया तो मैं खाली नहीं रहूंगा तुझे खा जाऊंगा।" किसान ने सोचा कि यह तो लेने से देना पड गया। वह बडी असमंजस में पड गया। आखिरमें कुछ सोच कर कहा "मेरे पास बहुत काम है, तुमको खाली रहने का प्रसंग नहीं आवेगा। तुम्हारी शर्त मुझे मंजूर है। काम नहीं बता सकूं और रुकना हो जाय तो मुझे खा जाना।" देव ने भी शर्त मन्जूर कर ली और उसको काम बता दिया। बात की बात में उसने काम पूरा कर दिया और कहा कि लाओ ... फसल का सारा काम पूरा हो गया। पटेल और उ... सोचने लगे कि अपन तो और दुविधा में फंस गये।

भूत के लिए काम

वे फिर उस सिद्ध पुरुष के पास गये और उनसे बोले कि अपने देव या भूत को वापस बुला लो, नहीं तो यह मुझे खा जायेगा। साधक ने उसको चाबी बता दी और कहा कि इस तरह से प्रयोग करना। उधर देव कार्य करने आया तो पटेल ने कहा कि जब तक मैं तुम्हें दूसरा काम नहीं बताऊं तब तक तुम सारे संसार के जंगलों में जाओ और वहां पर सबसे ऊंचा पेड़ हो उसको उखाड़ कर लाओ। वह गया और सबसे बडा वृक्ष उठा लाया और बोला कि पटेल क्या करूं? किसान ने कहा—"मेरे दरवाजे के सामने इसको गाड दो।" उसने दरवाजे के सामने पेड गाड दिया और बोला बताओ काम, नहीं तो तुझे खाता हूं।" पटेल ने कहा "जब तक तुमको दूसरा काम नहीं बताऊं तब तक तुम इस वृक्ष के ऊपर चढो और उतरो, यह काम बराबर करते रहो।" तब वह देव बोला कि तू तो मेरे भी सिर के ऊपर का निकला। बोल तुझे यह कला किसने बताई? उसने कहा कि जिस सिद्ध पुरुष ने तुझे प्राप्त करने की कला बताई उसने ही तुझे काम पर लगाने की कला बताई है। उस देव ने कहा कि उस सिद्ध पुरुष ने तुझे यह कला बताई है तब तो तू जीता और मैं हारा। तू मुझे वृक्ष के ऊपर चढ़ने और उतरने का काम बता रहा है। तू मुझे छोड दे, जब तुम्हारा काम होगा और मुझे बुलायेगा तभी मैं आ जाऊंगा और तुम्हारा काम कर दूंगा। पटेल को उचित मार्ग मिल गया और उसने देव को छोड़ दिया।

इससे आप क्या शिक्षा ग्रहण करेंगे? आचार्य देव फरमाते थे कि पूर्व जन्म में महात्माओं के संपर्क में इस आत्मा ने अधिक पुण्य सम्पादन किया। यह पूर्व जन्म की साधना का फल है कि यह मन मिला। यह मन उस भूत के तुल्य है। इसे यदि काम दें तो काम करता है। नहीं तो तुम्हें ही खा जायेगा। यही इस मन की स्थिति है। जब तक इसे काम देते हैं तब तक सुन्दर ढंग

से काम करता है और काम नहीं दे तो किसको खाता है? स्वयं की शक्ति को ही खा जाता है। वह अनेक प्रकार की चिंताएं अपने सिर पर ले लेता है। चिता और चिंता दो शब्द हैं। दोनों ही जलाने का काम करती है। चिंता जिंदा आदमी को जला देती है और चिता मरने के बाद आदमी को जलाती है। चिता जलाती है मुर्दे को और चिंता जलाती है जिंदे को। किंतु चिंता से जलनेवाला मन है। जिसके मन है वह चिंता करता है। एकेंद्रिय के जीव पानी, अग्नि और वायु के जीव और वेन्द्रिय आदि के जीव हैं उनके मन नहीं होता। उनके द्रव्य मन नहीं है, भाव मन है। संज्ञी पंचेन्द्रिय के द्रव्य मन है। इस भूत रुपी मन के पास काम नहीं होता है तो मस्तिष्क में तनाव पैदा होता है।

तो बंधुओ, अपने इस मन को सामायिक साधना में लगा दीजिए। सावद्य योगों का त्याग कर दिया, ४८ मिनिट तक वह सामायिक में रहेगा सावद्य योग का कार्य नहीं करेगा, लेकिन इसे साधना में नहीं लगाया तो या तो तुम्हें चिंता में डालेगा या चिता में जलाने जैसा कार्य करेगा। सामायिक के ६ भेद बताये है उनको अच्छी तरह से समझ कर इस मन रुपी भूत को सामायिक के कार्य-क्रम से संबंधित कीजिए। यदि ऐसा करेंगे तो मन भाग कर नहीं जायगा और आप हैरान नहीं होंगे। आपने सामायिक के सूत्र को समझा नहीं इसलिए हैरान होते हैं। जिसने इसको समझा है वे सामायिक सूत्र को याद करके चलते है और सामायिक साधना का वास्तविक आनंद प्राप्त करते है।

दिनांक ३१-७-८४
बोरीवली, (पूर्व) बम्बई

सामायिक साधक का प्रभाव

अंतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर के साधना का जो सुपथ बताया वही हमारे जीवन का संबल है। जैसे एक लघु प्रपात है छोटा-सा झरना आगे बढ़ता हुआ विराट रुप ले लेता है। ठीक इसी प्रकार साधना का प्रारंभ छोटे स्वरूप से होता है किन्तु वह आगे चल कर विराट रुप धारण कर लेता है। जो साधना प्रारंभ में लघु रुप में साधी जा रही है वह आगे चल कर विराट बन जाय, वही साधना श्रेष्ठतम साधना है।

सामायिक साधना की वर्णमाला

प्रारंभ में विद्यार्थी को जिस वर्णमाला का शिक्षण दिया जाता है अ, आ, इ, ई, क ख ग आदि वही वर्णमाला आगे की कक्षाओं में विकसित होती चली जाती है। ए. एम. में भी वही वर्णमाला रहती है। विद्यार्थी सफलता तभी प्राप्त कर सकता है जब कि वर्णमाला का क्रम यथावत् चले। प्रारंभ में वर्णमाला दूसरी बनाई जाय वह वही छूट जाय और एम. ए. में दूसरी आए तो वह विद्यार्थी उस विषय में विकास नहीं कर सकता।

वैसे ही साधना के क्षेत्र में प्रारंभिक साधना-वर्णमाला की तरह सामायिक साधना बताई गई है। वही विकसित होती हुई विराट रुप में पणित होती है। सावद्य योग का त्याग निरवद्य अवस्था का आसेवन यह सामायिक साधना का प्रारंभिक रुप है। वही सामायिक आगे बढ़ती हुई गृहस्थ में पौषध का रुप ले सकती है और गृहस्थ परित्याग के बाद सर्वव्रती साधु का रुप ले सकती है। इसी सामायिक के माध्यम से मोक्ष की स्थिति में परम शांति, एकांत सुख

की अब स्थिति प्राप्त हो सकती है । जिस ४८ मिनिट की सामायिक का विवेचन प्रस्तुत है उसी सामायिक के प्रसंग से सावद्य योग के निषेध का विधान है ।

सावद्य योग का अर्थ है-पापकारी योग । पाप करनेवाला है मन, वचन और काया, इनकी जो प्रवृत्ति पाप की हो रही है इन को मोड़ दे कर इन्हें अहिंसक स्थिति में उपस्थित करना और उस अहिंसक स्थिति का सम भाव के साथ विकास करना सामायिक की प्रारंभिक अवस्था है ।

कल सावद्य योग का निषेध रूप सामायिक के विषय में ६ भेदों का विवेचन प्रस्तुत किया था । उनमें से जो अवशेष रह गये हैं उनका कुछ स्वरूप आपके समक्ष आ रहा है ।

नाम सामायिक, स्थापना सामायिक, द्रव्य सामायिक; क्षेत्र सामायिक और काल सामायिक इन पांच भेदों का स्वरुप आपके समक्ष आ गया गया । अब छठा भेद है भाव सामायिक ।

भाव सामायिक

सामायिक की सुरक्षा के लिए सावद्य योग का त्याग नितांत आवश्यक है । भाव सामायिक उन पांचों में प्राण फूंकने वाली है । पांच भेद जो बताये गये है उन भेदों में यदि भावों का प्राण है तो सामायिक के सावद्य योग का त्याग सही रुप में पालन होगा । जैसे नाम से सामायिक की चर्चा में कहा, आपसे कोई पूछे कि आप क्या कर रहे है तो आप कहेंगे कि हम सामायिक कर रहे हैं । यह सामायिक नाम आपके भावों के साथ जुड़ता है । नाम भाव के साथ भी होता है । और अभाव से भी । सामायिक का शुद्ध रूप भाव सामायिक है । जहां किसी का नाम नहीं है वहां अभाव है। लेकिन सामायिक के भाव सहित नाम है वही सामायिक की परिधि में आता है ।

स्थापना में यह मुंहपत्ति लगाई, बैठका बिछाया, जीवों की यतना करने के लिए पूंजनी ली। सामायिक की पोशाक धारण की यह स्थापना सामायिक के निशान के साथ इसकी स्थापना की। स्थापना में भाव वही चल रहे हैं। जहां भाव सामायिक का प्रसंग है उसमें ६ काया के जीवों की रक्षा का विधान है। ६ काया के जीवों की रक्षा तभी होगी जब कि आपका उपयोग इसमें लगेगा पहले नाम और स्थापना सामायिक हो गई लेकिन भाव के अभाव में सामायिक विशुद्ध सामायिक नहीं बनती। आप बिना पूंजे अंधेरे में चले या रात्रि के समय, बिना देखे, गर्दन ऊंची उठाकर चले तो वह सामायिक भाव शून्य मानी जायेगी। आपकी दृष्टि जमीन पर रहे इस भावना से कि मेरे पैरों के नीचे ६ काया के जीव-पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति एवं चलते फिरते जीव मर न जायें। पृथ्वी के जीव तो आपकी दृष्टि में नहीं आते लेकिन ताजा मिट्टी खोदी गई है, उसमें जीव होते हैं। इसी तरह से अन्य जीव भी हो सकते हैं, लेकिन जहां जमीन लेवल पर है और नीचे की ताजा मिट्टी बाहर पड़ी है [illegible] उसमें पृथ्वी काय के जीव हो सकते हैं। [illegible] मिट्टी पर पैर नहीं रखना। धूप से भी पृथ्वी काय के जीव समाप्त हो जाते हैं। पानी बरसने से भी समाप्त हो जाते हैं पानी नहीं बरसे तो [illegible] ताजा खुदी हुई मिट्टी पर पैर नहीं रखना। पानी की [illegible] पर [illegible] पैर नहीं रखने का उपयोग होना चाहिए। चलते समय विवेक से चलना चाहिए। चलते समय किसी ने सिगरेट या बीड़ी [illegible] हुई फेंक दी तो साधक को ध्यान रखना चाहिए उसका स्पर्श न हो। [illegible] इधर उधर देख रहा है तो चिनगारी के पैर [illegible] सकता है [illegible] उपयोग-जागरण रहना चाहिए। आप सामायिक में बैठे हुए हैं, गर्मी का मौसम है, गर्मी लग रही है, [illegible] करते हैं और पंखा विद्युत से चलता है, इसमें [illegible] [illegible] की हिंसा होती है, तो आपकी सामायिक [illegible]

होगी । गर्मी सहन नहीं हो रही है तो पुस्तक, हाथ या कपडे से भी हवा नहीं कर सकते हैं । पंखे के नीचे बैठकर सामायिक करना तो कल्पता ही नहीं है । सामायिक के साथ भाव नहीं जुडे तो सामायिक सुरक्षित नहीं रह पायेगी । आप रास्ते में चल रहे हैं हरी वनस्पति का उपयोग नहीं रखा । उस पर पैर रख दिया तो दोष लग गया । आपको सामायिक में दोष लगा हो तो उसकी आलोचना करनी चाहिए । हरी पर पैर लगा न लगा लेकिन बिना पूंजे चले तो सूक्ष्म जीवों की घात हो सकती है । इस दृष्टि से ६ काय के जीवों की रक्षा से युक्त सामायिक में भावों का पुट होना आवश्यक है ।

वैसे ही क्षेत्र की दृष्टि से जिन स्थान पर आप बैठे हैं उस स्थान को बिना पूंजे बिना देखे बैठका (आसन) बिछा दिया और उससे जीव हिंसा हो गई तो क्षेत्र की दृष्टि से सामायिक में बाधा आयेगी ।

काल की दृष्टि से ४८ मिनिट का काल लिया है, इस काल में छ काय के जीवों की हिंसा नहीं करें ।

सामायिक अनासक्ति योग की साधना

ये जो सामायिक के ६ भेद हैं इन सब में मन के भाव क्या होने चाहिए ? आप सामायिक में बैठे हुए हैं, अचानक किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु की सूचना मिल गई तो उस समय रोना या आर्त ध्यान नहीं करना चाहिए. यदि यह किया जा रहा है–रुदन करना, हाय हाय करना, सीना पीटना आदि यह सब सामायिक में किया जा रहा है तो समभाव की साधना तो दूर रही, भाव सामायिक में व्यवधान आ जायेंगे.

मैंने सुना हैं कि शांत क्रांति के जन्म दाता आचार्य श्री गणेशी लालजी महाराज साहब जब उदयपुर में छोटे बच्चे के रूप में थे, तब उनके पिता साहब लालजी धर्मस्थान में सामायिक पोषध के लिए

पहुंचते तो बच्चे के रूप में गणेशलालजी भी उनके साथ पहुंच जाते। उनके पिता सामायिक करते तो वे भी मुंहपत्ति लगा कर उनके पास में बैठ जाते. बच्चा अनुकरणशील होता है. बड़े बुजूर्ग क्या कर रहे हैं इसका ख्याल बच्चे को रहता है. चाहे बुजूर्ग कहें या न कहें, बच्चे उनकी नकल अवश्य करेंगे. दुकान पर तराजु मे कोई चीज तोली जा रही है तो व्यापारी का बच्चा भी तोलने की चेष्टा करेगा और कुछ नहीं तो धूल ही तोलेगा। कृषक का लड़का कृत्रिम हल बना कर चलाने की चेष्टा करेगा। जिसके माता-पिता सामायिक करते हैं, तो बचा बिना कहे सामायिक करने की चेष्टा करेगा। बच्चा क्या बन जाये, इसका श्रेय माता पिता को जाता है।

पोषध की साधना २४ घंटो की होती है लेकिन वह कितना महत्वपूर्ण होती है। इससे परिवार के सभी सज्जनों पर असर होता है. सामायिक का या पोषध का लाभ तो करनेवाले को मिलता है लेकिन जो देखनेवाले हैं उनके अंदर भी शुभ भावना पैदा होती है. जो देख कर गद्गद् हो जाते है। उनके शुभ भावों से कर्मों की निर्जरा होती है और पुण्यवानी बधती है. पुण्यानुबंधी पुण्य बंधता है. पौपध करते है तो सारे परिवार का ध्यान परिवार के मुखिया की तरफ रहता है. के सोचेंगे आज पिताजी पोषध में है. जितनी वक्त ये विचार आयेगे, पुण्यवानी बंधेगी, निर्जरा होगी. दूसरा व्यक्ति किसी आवश्यक का कार्य के लिए आया है और वह देखता है कि ये अभी नित्य नियम में बैठे हैं तो वह भी विलंब करेगा. इसका कितना प्रभाव फैलता है. यदि यह कहा जाय कि यह प्रकाश पुंज है तो चल सकता है। दीपक के प्रकाश में जो व्यक्ति जाते है उन सब को रोशनी मिलती है. वह सब को प्रकाशित करती है.

इसी तरह से पोषध एवं सामायिक की साधना भी सबको प्रकाशित करती है. लेकिन मेरे भाइ इसका महत्व नहीं समझते हैं। वे

ऐसे ही घंटों वातों मे बैठ जायेंगे, लेकिन सामायिक पचकर नहीं बैठते। सामायिक में कितना लाभ मिलता है, इस बात का ध्यान रख कर चला जाय तो अधिकांश भाई इस शुभ मार्ग पर लग सकते हैं और वे सामायिक की साधना कर सकते है।

मैं स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. के बचपन की बात कर रहा था जो उस समय छोटे बच्चे के रुप में सायबलालजी के पास चले जाते और सामायिक ले कर बैठ जाते। इस उम्र में अधिकांश बच्चों का खेलना ही होता है। अन्य घटनाएं तो घटी सो घटी ही आचार्य श्रीलाल जी म. सा. की वाणी फलित हुई। मैं मूल विषय पर आ रहा हूं, मैं कह रहा था एक रोज साहबलालजी पोषध में धर्म साधना में विराजमान थे, इधर उनकी पुत्री का स्वर्गवास हो गया। पडोसी ने सूचना दी कि साहबलालजी पोषध में क्या बैठे हो तुम्हारी पुत्रपुत्री की मृत्यु हो गई है। पुत्री के स्वर्गवास का समाचार सुन कर पोषध में स्थिर रहना कितना कठिन होता है. श्री साहबलालजी ने कहा कि मैं पोषध में हूं, आप लोग जैसा उचित समझ कर सकते हैं। सूर्यास्त होनेवाला था लेकिन साहबलालजी पोषध से उठ कर नहीं आये. मित्रगण और पडोसी बच्ची को उठाकर ले गये. साथ में आचार्य श्री गणेशलालजी, जो बालक ही थे, भी गये. वहां श्मशान में पहुंचने के पश्चात् लकड़ी की आवश्यकता थी, लकड़ी कुछ दूरी पर मिलती थी. सब विचार करने लगे कि लकड़ी लाने के लिए जायेंगे तो शब के पास कौन बैठेगा। उस समय नन्हें बालक श्री गणेशलालजी ने कहा शव के पास मैं बैठा हूं, आप जाइए. कहावत है कि "पूत के पग पालने पहचाने जाते हैं।" वे लाश के पास बैठ गये। घर में लाश पडी है तो भी बडे-बडे लोगों को डर लगता है और एक दूसरे को कहने लगते है कि हम बाहर बैठे हैं तुम पास में बैठो। बडों के लिए भी मुर्दे के निकट बैठना मुश्किल होता है। मुर्दे से डर लगता है। लेकिन नन्हा बालक गणेशील

निर्भीक हो कर रात्रि में एकाकी श्मशान में बैठा रहा। वही छोटा बच्चा आगे चल कर क्रांतिकारी महापुरुष बन गया। साहबलालजी पोषध में इतने स्थिर थे कि पुत्री के मरने की भी परवाह नहीं की. वे जानते थे कि यह मरण की स्थिति है। मरने वाला वापिस नहीं आता उस समय वे रोये नहीं आंसू नहीं निकाले धर्म ध्यान में स्थिर रहे।

यद्यपि यदि कोई सेवा करनेवाला नहीं है, और किसी की स्थिति मरणासन्न हो तो सामायिक में रहनेवाला सेवा के चला जाए तो सामायिक व्रत, जो कि शिक्षा व्रत है, भंग होगा किंतु अहिंसा व्रत की आराधना होगी।

जैसे कि किसीने चार लोगस्स का ध्यान किया हो और नेत्र खुले हो, कोई हिंसा का दृश्य सामने हो तो आधे ध्यान में ही रक्षा हेतु जाने पर ध्यान भंग नहीं होता है। वैसे ध्यान की विधि दो तरह की है। प्रायः प्रचलित यह है कि नेत्र खुले रहें। आंखें बंध करके ध्यान नहीं करना, क्योंकि वैसी स्थिति में नींद अथवा प्रमाद आ जाता है। जब जागरण का अभ्यास हो जाय तो नेत्र बंद भी कर सकते हैं। व्याख्यान हो रहा है और आप आंखे बंध करके सुन रहे हैं, तो नींद आना स्वाभाविक है। आंखें खोलकर अच्छी तरह से सुनना चाहिए। ध्यान की स्थिति में भी आंखें खुली रहे। दो लोगस्स का ध्यान किया और कदाचित् जिस स्थान पर बैठे हैं वहां पर आग लग गई, तो उठ कर दूसरे स्थान पर बैठ कर पुनः ध्यान कर सकते हैं। अतः जीव रक्षा के अथवा अपरिहार्य सेवा के निमित्त से उठा जा सकता था। उसकी आलोचना की जा सकती थी किंतु श्री सायबलालजी अपने व्रत में स्थिर रहे। वास्तव में धर्म साधना ऐसी होनी चाहिए. जिसमें परिवार आदि बाह्य बन्धनों पर आसक्ति कम होती है। ऐसी भाव सामायिक का आराधन करेंगे तो आपकी आत्मा को शांति प्राप्त होगी।

दिनांक ९-८-८४

बोरीवली, (पूर्व) बम्बई

ऐसे ही घंटों बातों मे बैठ जायेंगे, लेकिन सामायिक पचकर नहीं बैठते । सामायिक में कितना लाभ मिलता है. इस बात का ध्यान रख कर चला जाय तो अधिकांश भाई इस शुभ मार्ग पर लग सकते हैं और वे सामायिक की साधना कर सकते है।

मैं स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. के बचपन की बात कर रहा था जो उस समय छोटे बच्चे के रुप में सायबलालजी के पास चले जाते और सामायिक ले कर बैठ जाते । इस उम्र में अधिकांश बच्चों का खेलना ही होता है । अन्य घटनाएं तो घटी सो घटी ही आचार्य श्रीलाल जी म. सा. की वाणी फलित हुई । मैं मूल विषय पर आ रहा हूं, मैं कह रहा था एक रोज साहबलालजी पोषध में धर्म साधना में विराजमान थे, इधर उनकी पुत्री का स्वर्गवास हो गया । पडोसी ने सूचना दी कि साहबलालजी पोषध में क्या बैठे हो तुम्हारी पुत्रपुत्री की मृत्यु हो गई है । पुत्री के स्वर्ग वास का समाचार सुन कर पोषध में स्थिर रहना कितना कठिन होता है. श्री साहबलालजी ने कहा कि मैं पोषध में हूं, आप लोग जैसा उचित समझ कर सकते हैं । सूर्यास्त होनेवाला था लेकिन साहबलालजी पोषध से उठ कर नहीं आये. मित्रगण और पडोसी बच्ची को उठाकर ले गये. साथ में आचार्य श्री गणेशलालजी, जो बालक ही थे, भी गये. वहां श्मशान में पहुंचने के पश्चात् लकड़ी की आवश्यकता थी, लकड़ी कुछ दूरी पर मिलती थी. सब विचार करने लगे कि लकड़ी लाने के लिए जायेंगे तो शव के पास कौन बैठेगा । उस समय नन्हें बालक श्री गणेशलालजी ने कहा शव के पास मैं बैठा हूं, आप जाइए. कहावत है कि "पूत के पग पालने पहचाने जाते हैं ।" वे लाश के पास बैठ गये । घर में लाश पडी है तो भी बडे-बडे लोगों को डर लगता है और एक दूसरे को कहने लगते है कि हम बाहर बैठे हैं तुम पास में बैठो । बडों के लिए भी मुर्दे के निकट बैठना मुश्किल होता है । मुर्दे से डर लगता है । लेकिन नन्हा बालक गणेशीलाल

निर्भीक हो कर रात्रि में एकाकी श्मशान में बैठा रहा। वही छोटा बच्चा आगे चल कर क्रांतिकारी महापुरुष बन गया। साहबलालजी पौषध में इतने स्थिर थे कि पुत्री के मरने की भी परवाह नहीं की. वे जानते थे कि यह मरण की स्थिति है। मरने वाला वापिस नहीं आता उस समय वे रोये नहीं आंसू नहीं निकाले धर्म ध्यान में स्थिर रहे।

यद्यपि यदि कोई सेवा करनेवाला नहीं है, और किसी की स्थिति मरणासन्न हो तो सामायिक में रहनेवाला सेवा के चला जाए तो सामायिक व्रत, जो कि शिक्षा व्रत है, भंग होगा किंतु अहिंसा व्रत की आराधना होगी।

जैसे कि किसीने चार लोगस्स का ध्यान किया हो और नेत्र खुले हो, कोई हिंसा का दृश्य सामने हो तो आधे ध्यान में ही रक्षा हेतु जाने पर ध्यान भंग नहीं होता है। वैसे ध्यान की विधि दो तरह की है। प्रायः प्रचलित यह है कि नेत्र खुले रहें। आंखें बंध करके ध्यान नहीं करना, क्योंकि वैसी स्थिति में नींद अथवा प्रमाद आ जाता है। जब जागरण का अभ्यास हो जाय तो नेत्र बंद भी कर सकते हैं। व्याख्यान हो रहा है और आप आंखें बंध करके सुन रहे हैं, तो नींद आना स्वाभाविक है। आंखें खोलकर अच्छी तरह से सुनना चाहिए। ध्यान की स्थिति में भी आंखें खुली रहे। दो लोगस्स का ध्यान किया और कदाचित् जिस स्थान पर बैठे हैं वहां पर आग लग गई, तो उठ कर दूसरे स्थान पर बैठ कर पुनः ध्यान कर सकते हैं। अतः जीव रक्षा के अथवा अपरिहार्य सेवा के निमित्त से उठा जा सकता था। उसकी आलोचना की जा सकती थी किंतु श्री साहबलालजी अपने व्रत में स्थिर रहे। वास्तव में धर्म साधना ऐसी होनी चाहिए, जिसमें परिवार आदि बाह्य बन्धनों पर आसक्ति कम होती है। ऐसी भाव सामायिक का आराधन करेंगे तो आपकी आत्मा को शांति प्राप्त होगी।

दिनांक १-८-८४
बोरीवली, (पूर्व) बम्बई

सामायिक का मूल्य

एकमौलिक सिद्धांत है "या या क्रिया सा सा फलवती" जितनी भी क्रियाएं होती हैं वे फलवान होती हैं, कोई भी क्रिया निष्फल नहीं जाती। क्रिया की प्रतिक्रिया के सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक क्रिया का फल अवश्य होता ही है। वह फल शुभ भी हो सकता है अशुभ भी। शुभ फल होता है तो आत्मा को अपनी साधना के लिए संबल मिलता है और अशुभ फल मिलता है तो वह साधना में विघ्न उत्पन्न करता है। यह जीवन का क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। इस क्रम में चाहे भवी हो या अभवी जितनी भी आत्माएं संसार में परिभ्रमण कर रही हैं उन सभी आत्माओं के लिए यह विषय लागू होता है। लेकिन भव्य जन अपनी समग्र साधना विधि सुविधि पूर्ण बनाने के लिए कुछ ज्ञान प्राप्त करता है और सोचता है कि कौन सी क्रिया मेरी आत्म शुद्धि के लिए निमित्त बनेगी कौन सी साधना मेरे जीवन कल्याण करने में सफल होगी। इस जिज्ञासा से यदि वह वीतराग देव की वाणी के समीप पहुंचता है तो उसे निःसंदेह सुन्दरतम मार्ग मिल जाता है।

भव्यों की प्रिय वीतराग वाणी

वीतराग देव ने आत्म कल्याणार्थ जो मार्ग बतलाया है वह सर्वथा निर्दोष एवं सर्वाधिक पवित्र है। इस मार्ग में कोई दोष खोजना चाहे, नुक्स निकालना चाहे तो निकाल नही सकता। इसका चिंतन करके बुद्धिवादी व्यक्ति अपनी बुद्धि का जितना बल लगाना चाहे, लगा ले, कितनी ही युक्तियां, प्रतियुक्तियां, तर्क प्रस्तुत करे किंतु वीतराग सिद्धांत का स्याद्वाद रुपी कवच अभेद्य ही रहता है। उन सब का समाधान भी साधना के स्वरुप ज्ञान से स्पष्ट हो जाता

है। ऐसी पवित्र साधना पद्धति भाग्यशाली ही प्राप्त कर सकते हैं। जिसने पुण्यानुबन्धी पुण्य का संचय किया वही व्यक्ति इस पवित्र साधना का लाभ उठा सकता है। जिस पुरुष का पुण्यानुबन्धी पुण्य नगण्य है, उस पुरुष के लिए यह पवित्र साधना सही नहीं रह सकती, क्योंकि जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। जब पापानुबन्धी पुण्य के कारण उसकी दृष्टि में फर्क है तो हर वस्तु को वह उसी रूप में देखने की कोशिश करेगा।

सर्प ने किसी पुरुष को डस लिया है और उसका विष उस पुरुष पर चढ़ रहा है तो बाहर से अन्दाज लगाने के लिए गारुडी या मन्त्रवादी कुछ प्रयोग करता है। कड़वे नीम के पत्ते लेकर उस व्यक्ति को चखाता है और कहता है कि बोलो यह नीम तुझे कड़वा लगता है या मीठा? जिस पर पर्याप्त मात्रा में विष का असर हो गया है उसको कड़ुवा नीम अच्छा लगता है, वह कहता है कि मुझे नीम की पत्तियां मीठी लगती हैं। मन्त्रवादी हतोत्साह होता है। वह सोचता है कि यह विष बहुत आगे बढ़ गया है, मेरा मन्त्र काम करेगा या नहीं, वह चिंतन करने के लिए बाध्य हो जाता है। फिर भी वह पुरुषार्थ नहीं छोड़ता और साहस के साथ मन्त्र का प्रयोग करता है। कुछ समय तक प्रयोग किया, फिर उसको वही नीम की पत्तियां चबवाता है। वह व्यक्ति चख कर कहता है कि अब इन पत्तियों में उतना मीठापन नहीं रहा, कुछ कड़ुवाहट मालूम हो रही है। मन्त्रवादी आशान्वित हो जाता है कि मेरा मन्त्र लागू हो गया, जहर उतरना चालू हो गया। और धीरे धीरे वह जहर को उतार ही देता है।

वैसे ही सत्य और असत्य का प्रसंग है। संसार के समस्त भौतिक पदार्थ आत्मा को बंधन में डालने वाले हैं अतः कड़ुवाहट से भरे हैं, किंतु सर्प के विष के समान अनादि पर मोह का इतना आवरण आ जाता है, मोह रूपी सर्प ने अनादि को इतना डस लिया

है कि उस समय उसको वासना-विकारो की कडवाहट मीठी लगती है और वीतराग देव की वाणी या साधना अच्छी नहीं लगाती। संसार के विषय, जो कि कडवे नीम के तुल्य है, ५ इंद्रियों का उपयोग, एक दृष्टि से आत्मा पर उलझन पैदा करनेवाला है। वह मीठा लगता है। भवी और अभवी में इसलिए अंतर आ जाता है कि अभवी कभी भवी नहीं बन सकता, उस पर आत्म कल्याण का किंचित् मात्र भी असर नहीं होता। जैसे कोरडू एक ऐसा धान होता है जो सीज नहीं पाता। आप इसको क्या बोलते है आप आपनी भाषा में समझ लेना। एक ही दाने को सिजाने के लिए १० किलो पानी उबाल लिया जाय, पानी का भाप बन जायगी लेकिन वह दाना नहीं सीजेगा। यदि दूसरे धान का दाना उतने समय तक उबाला जाय तो वह सीज कर गल जायगा।

इसी तरह से अभवि को कितना भी उपदेश दे, उस पर असर नहीं होता। जैसे अग्नि का असर कोरडु पर नहीं होता।

भवि जन पर वीतराग देव की वाणी इतनी प्रभावी रहती है कि संसार के विषय उसको काटने लगते है। वह हर समय सोचता है कि हा हा यह अमूल्य मनुष्य जीवन जो देवो के लिए दुर्लभ है आज मैं इसका क्या उपयोग कर रहा हूं, नाशवान चीजों के लिए इसको गंवा रहा हूं। संसार के विषयों का अनेक बार मैंने उपभोग किया। कई वार मैं लखपति, करोडपति, राजा महाराजा बना, इंद्र बना किंतु इस आत्मा से मोह का जहर नहीं उतरा। इस मिथ्यात्व के जहर को उतारने वाली वीतराग वाणी ही है। यह वाणी अमृत से बढ़कर कल्याण करने वाली है।

प्रारंभिक साधना सामायिक

इसी वीतराग वाणी में अभिव्यक्त साधना का प्रारंभिक किंतु मौलिक रूप विगत कुछ दिनों से आपके समक्ष रख रहा था। वह

है सामायिक का अधिकांश। भाई बहिन इसे जानते। सामायिक की पोशाक पहनकर बैठ जाना भी सामायिक का अंग है लेकिन इनकी जानकारी यहीं तक है। पोशाक लगा के बैठ जाना स्कूल में प्रवेश होने के तुल्य है। लेकिन सामायिक का जो तात्पर्य या अर्थ है उसको यदि ध्यान में ले तो वह आत्मा को निर्मल बना कर पवित्र बना सकता है।

लगता है यह सामायिक साधना आपको जितनी अच्छी नहीं लग रही है। बंबई जैसे शहर में आप बहुत से भाई बहिनों को देखते हैं किंतु यहां धर्म स्थान में तो संतों को देखने की चेष्टा करें, उनकी साधना से परिचय प्राप्त करें। किंतु कौन भाई आ रहा है कौन जा रहा है कौन बहिन आ रही है, कौन जा रही है, जब तक आप अपनी दृष्टि का उपयोग उनको देखने की तरफ करेंगे तब तक वाणी सुनने में आपकी रुचि नहीं होगी। आप अपनी दृष्टि का उपयोग मेरी तरफ करिये।

अनेक बंधु चाहे वे तरुण ही हैं लेकिन उनकी दृष्टि और कान मेरी तरफ हैं क्यों कि उनको वाणी सुनने में ज्यादा आनंद आ रहा है। यदि धर्म स्थान में आ कर भी आपको इधर उधर देखना है तो यहां आने का उपयोग ही क्या रहा?

बंधुओ बात आध्यात्मिक एवं गहन होने से आपको समझने में कुछ दिक्कत पड़ेगी. किंतु यह ख्याल अवश्य रखिये कि मैं जिस साधना की बात कह रहा हूं, वह इतनी सहज नहीं है। इसका वास्तविक स्वरूप क्या है यह समझने की कोशिश करें, पर कोशिश करे कौन? आप चाहते हैं कि सामायिक की पोशाक लगा ले बस। आगे हमको हमारे काम से काम है। थोड़ी देर आसन. लगाके से बैठ जायेंगे फिर उठेंगे तब भी वैसा ही रहेगा.

सामायिक है तलवार की धार पर चलना

मेरा संकेत इसलिए है कि जहां हम सामायिक में बैठ गये फिर प्रचलित सामायिक के अनुसार सावद्य योगका त्याग किया "सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि" हे भगवन मैं सामायिक करता हूं वह सामायिक सम+आय की है। कापका चिंतन इस दिशा में हो कि सामायिक में बैठ कर समता भाव का अभ्यास कैसे किया जाय। केवल पाप का त्याग करने मात्र से सामायिक नहीं हो सकती; सामायिक साधना बडी टेढ़ी खीर है। दूसरे शब्दों में कहूं तो तलवार की धार पर चलना तो फिर भी सहज है लेकिन इस साधना पर चलना कठिन है। छोटी से छोटी साधना को जीवन में उतारना और उसको पचाना इसके लिए बहुत बड़ी जठराग्नि की आवश्यकता होती है। जिन्होंने केवल मक्का की राब ही राबखाई है उन्हें आपके बम्बई का मशहूर सोहन हलवा थोडा सा खिलाया जाय तो क्या उनकी जठराग्नि उसको पचाने में कामयाब होगी? वैसे हीं यह सामायिक साधना सोहन हलवे से मी बढ़कर है अतः इस साधना के लिए कहा जा रहा है कि तलवार की धार पर चलना सहज है पर इस पर चलना कठिन हैं, साधना के क्षेत्र में बहुत ऊंचे पहुंचे हुए महा-पुरुष की यह वाणी है। अंतर की बात अंतर को छूती है पर किस व्यक्ति को छूती है? जो जिज्ञासु है उसको छूती है: कवि आनन्दघन जी की अन्तरंग वाणी है—

> धार तरवारनी सोहिली, दोहली,
> चउदमा जिनतणी चरण सेवा.
>
> धार पर नाचता देख बाजीगरा,
> सेवना धार पर रहे न देवा.

बंधुओ, मैं क्या कहूं—जितना व्यक्ति उन्डाण में जाता है, अंदर में उतरता है उतना ही वह अंदर के गहन रहस्य को प्राप्त

करता है और जब उद्बोधन करता है तो वाणी के माध्यम से उसे बाहर प्रगट करता है। आनंदघन जी लोक दिखावे में नहीं आते थे, छिपाने की भावना ही नहीं करते थे। राजा महाराजा आ जावे तो भी उन्हें कोई फिक्र नहीं थी। वे साधारण साधक नहीं थे। जब भक्ति साधना में उतरे तो १४ वे भगवान् की स्तुति करते हुए कहा कि तलवार की धार पर चलना आसान है किंतु साधना करना दुष्वार है :

"धार पर नाचता देख बाजीगरा"

वैक्रिय लब्धिधारी तलवार की धार पर सहज ही चल सकते हैं। बाजीगर भी चल सकते हैं। लेकिन वीतराग देव की साधना तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। मनकी साधना उससे भी कठिन है।

सामायिक का मूल्य

आपकी ४८ मिनिट की सामायिक साधना से कितना लाभ होता है, यह तो आप, जो रोज सामायिक साधना करते हैं उनकी जानकारी का प्रसंग है। राजा श्रेणिक के प्रसंग से आपने कई बार सुना होगा कि राजा श्रेणिक अपनी नरक का बंधन काटने के लिए भगवान के बताये अनुसार पूणिया श्रावक के पास सामायिक खरीदने गया, तो पूणिया श्रावक सामायिक देने के लिए तत्पर हो गया, लेकिन पूणिया श्रावक को सामायिक की कीमत मालूम नहीं थी। तब पूणिया ने श्रेणिक से कहा कि राजन आज मैंने एक अनोखी बात सुनी है। इतने दिन तो मैं जानता था कि सामायिक बेची नहीं जा सकती। धर्म क्रिया पैसों से मोल नहीं ली जाती।

यह कौन समझ रहा है? भगवान की आज्ञा में चलने वाला पूणिया श्रावक समझ रहा है। लेकिन आज के श्रावक क्या समझते हैं? वे तो धर्मकर्म को पैसों में देखते हैं। इतने रुपये होंगे तो यह कर दूंगा, इतने रुपये होंगे तो यह

तपस्या कर लूंगा। मैंने उधर सुना कि एक तेले के पीछे वीस-वीस रुपये मिल जाते हैं। तेला सस्ता हो जाता है, क्योंकि वहुत वडी नामवारी हो जाती है कि हमारे यहां इतने तेले हो गये। क्या वीतराग देव ने तेले की कीमत वताई है। भाई वहिनों ने सामायिक की कीमत कर ली है। भगवन् मेरा वच्चा ठीक हो जाय तो ५० सामायिक कर लूंगा या १०० सामायिक कर लूंगा। वुखार ठीक करानेवाले सामायि की कीमत करते है। १०४ डिग्री वुखार है तो मेटासिन की गोली से वुखार ठीक हो जायगा। तो आपने सामायिककी कीमत कर ली मेटासिन की गोली जितनी।

पूणिया श्रावक सोच रहा है कि सामायिककी कीमत नहीं हो सकती। सम्राट श्रेणिक ने पूछा कि सामायिक की कीमत क्या है तो पूणिया ने कहा कि "राजन् जिसने आपको सामायिक खरीदने की वात कही है उन्हीं से पूछो कि सामायिक की कीमत क्या होती है।"

राजा श्रेणिक प्रभु महावीर के पास गया और निवेदन किया कि भगवन् आपने मेरी नरक टालने के जो और उपाय वताये हैं उनको तो मैं कर नहीं सकता, लेकिन पूणिया श्रावक मुझे सामायिक देने के लिए तैयार है और मैं खरीदने को तैयार हूं, मेरा काम वन गया। श्रावक ने कहा कि एक सामायिक लो, दो तीन या जितनी चाहिए उतनी ले लो यह तो उनकी उदारता है, लेकिन उसको सामायिक की कीमत मालूम नहीं है। अतः उसने कहा कि कीमत तो वे ही वतायेंगे जिन्होंने सामायिक खरीदने का उपाय वताया है। प्रभो, अब आप ही वता दीजिए कि एक सामायिक की कीमत कितनी है? प्रभु ने पूछा—सम्राट आपके भंडार में धन कितना है? "भगवन्, मेरे पास में धन कितना है, यह आपके केवल ज्ञान से छिपा हुआ है क्या?" मेरे केवल ज्ञान से तो छिपा हुआ नहीं है। लेकिन दुनिया की दृष्टि से तुम्ही वर्णन करो कि तुम्हारे खजाने में जेवर, जवाहरात, रत्न वगैरा कितने है?" "भगवन्, यदि मैदान में मेरे खजाने के

धन का ढिग लगाया जाय तो ५२ डूंगरियां लग सकती है।" भगवान् महावीर ने कहा "५२ डूंगरियां जितना धन तो एक सामायिक की दलाली के लिए चाहिए। बोलो तुम्हारे पास कीमत चुकाने के लिए क्या है?"

आज के भाई बहिन सामायिक का मूल्यांकन क्या कर रहे हैं? जब सामायिक का महत्त्व ही नहीं जानते तो उसका मूल्यांकन क्या करेंगे।

सामायिक के ६ भेद मैंने बतला दिये हैं। अगला विषय बताने की तैयारी में हूं। लेकिन यह सूक्ष्म बात आपके लिए कितनी हितकर होगी इसका चिंतन कर लेना चाहता हूं। यह सूक्ष्म बात तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। इसका प्रयास किया जाय तो कर्मों के पुंज के पुंज टूट जाते हैं।

कई व्यक्ति संसार की दृष्टि से सोचते हैं लेकिन कई कार्य विपरीत हो जाते हैं। ऐसी विचित्र समस्या मनुष्य के सामने उपस्थित है। आज का मनुष्य अनेक प्रकार की विसंगतियों में उलझ रहा है, तथापि वह सुलझना चाहता है किंतु मूल में भूल चल रही है। सुलझाने की चाबी आपके पास ही है। आप उसको निकालिए तो सही, देखिए तो सही आपको भान होगा कि आपके पास क्या क्या है! आपको ऊपर से यह शरीर दिखता है। दर्पण में अपना मुंह देख लेंगे, शरीर के ऊपर जो चमड़ी है उसे देख लेंगे। किन्तु अंदर में आत्मा का मौलिक गुण सामायिक कहां है, उसको नहीं देख पा रहे हैं। इसीलिए यह उलझन हो रहा है। समस्या को सुलझाने के हेतु भी इस साधना में ही हैं। इस हेतु को देख लिया तो सारी समस्या हल हो जायेगी। सामायिक साधना अनेक समस्याओं का निदान प्रस्तुत करती है। आप इसको समझ करें और आनंद प्राप्त करें।

ता. ३-८-८४
बोरिवली (पूर्व) बंबई

तपस्या कर लूंगा। मैंने उधर सुना कि एक तेले के पीछे वीस–वीस रुपये मिल जाते है। तेला सस्ता हो जाता है, क्योंकि वहुत वडी नामवारी हो जाती है कि हमारे यहां इतने तेले हो गये। क्या वीतराग देव ने तेले की कीमत वताई है। भाई वहिनों ने सामायिक की कीमत कर ली है। भगवन् मेरा वच्चा ठीक हो जाय तो ५० सामायिक कर लूंगा या १०० सामायिक कर लूंगा। वुखार ठीक करानेवाले सामायि की कीमत करते हैं। १०४ डिग्री वुखार है तो मेटासिन की गोली से वुखार ठीक हो जायगा। तो आपने सामायिककी कीमत कर ली मेटासिन की गोली जितनी।

पूणिया श्रावक सोच रहा है कि सामायिककी कीमत नहीं हो सकती। सम्राट श्रेणिक ने पूछा कि सामायिक की कीमत क्या है तो पूणिया ने कहा कि "राजन् जिसने आपको सामायिक खरीदने की वात कही है उन्हीं से पूछो कि सामायिक की कीमत क्या होती है।"

राजा श्रेणिक प्रभु महावीर के पास गया और निवेदन किया कि भगवन् आपने मेरी नरक टालने के जो और उपाय बताये हैं उनको तो मैं कर नहीं सकता, लेकिन पूणिया श्रावक मुझे सामायिक देने के लिए तैयार है और मैं खरीदने को तैयार हूं, मेरा काम वन गया। श्रावक ने कहा कि एक सामायिक लो, दो तीन या जितनी चाहिए उतनी ले लो यह तो उनकी उदारता है, लेकिन उसको सामायिक की कीमत मालूम नहीं है। अतः उसने कहा कि कीमत तो वे ही बतायेंगे जिन्होंने सामायिक खरीदने का उपाय बताया है। प्रभो, अब आप ही वता दीजिए कि एक सामायिक की कीमत कितनी है? प्रभु ने पूछा–सम्राट आपके भंडार में धन कितना है? "भगवन्, मेरे पास में धन कितना है, यह आपके केवल ज्ञान से छिपा हुआ है क्या?" मेरे केवल ज्ञान से तो छिपा हुआ नहीं है। लेकिन दुनिया की दृष्टि से तुम्ही वर्णन करो कि तुम्हारे खजाने में जेवर, जवाहरात, रत्न वगैरा कितने है?" "भगवन्, यदि मैदान में मेरे खजाने के

धन का ढिग लगाया जाय तो ५२ डूंगरियां लग सकती है।" भगवान् महावीर ने कहा "५२ डूंगरियां जितना धन तो एक सामायिक की दलाली के लिए चाहिए। बोलो तुम्हारे पास कीमत चुकाने के लिए क्या है?"

आज के भाई बहिन सामायिक का मूल्यांकन क्या कर रहे हैं? जब सामायिक का महत्व ही नहीं जानते तो उसका मूल्यांकन क्या करेंगे।

सामायिक के ६ भेद मैंने बतला दिये हैं। अगला विषय बताने की तैयारी में हूं। लेकिन यह सूक्ष्म बात आपके लिए कितनी हितकर होगी इसका चिंतन कर लेना चाहता हूं। यह सूक्ष्म बात तरवार की धार पर चलने से भी कठिन है। इसका प्रयास किया जाय तो कर्मों के वृंद के वृंद टूट जाते हैं।

कई व्यक्ति संसार की दृष्टि से सोचते है लेकिन कई कार्य विपरीत हो जाते हैं। ऐसी विचित्र समस्या मनुष्य के सामने उपस्थित है। आज का मनुष्य अनेक प्रकार की विसंगतियों में उलझ रहा है, तथापि वह सुलझना चाहता है किंतु मूल में भूल चल रही है। सुलझाने की चाबी आपके पास ही है। आप उसको निकालिए तो सही, देखिए तो सही आपको ज्ञात होगा कि आपके पास क्या क्या है! आपको ऊपर से यह शरीर दिखता है। दर्पण में अपना मुंह देख लेंगे, शरीर के ऊपर जो चमड़ा है उसे देख लेंगे। किंतु अंदर में आत्मा का मौलिक गुण सामायिक कहां है, उसको नहीं देख पा रहे है। इसीलिए यह उलझाव हो रहा है। समस्या को सुलझाने के हेतु भी इस साधना में ही है। इस हेतु को देख लिया तो सारी समस्या हल हो जाएगी। सामायिक साधना समस्त समस्याओं का निदान प्रस्तुत करती है। आप इनमें रमण करें और आनंद प्राप्त करें.

ता. २-८-८४

बोरीवली (पूर्व) बंबई

सामायिक साधना बनाम इन्द्रिय विजय

श्रवण उतरे जीवन में

हम कितने सौभाग्यशाली हैं कि हमें वीतराग देव की वाणी सुनने का अवसर प्राप्त हो रहा है। जो वीतराग देवकी वाणी को, अंगीकार करके इस लोक और परलोक में सुखी वने, ऐसे दिव्य पुरुषों का वर्णन आपको विद्वद्वर्य मुनि श्री सुना रहे है। कितने सुंदर ढंग से आपके समक्ष व्याख्या उपस्थित कर रहे है। आप भी ध्यान से श्रवण कर रहे हैं, लेकिन यर श्रवण तक ही सीमित न रहे। यदि कोई भी मनुष्य अपने वर्तमान को सुखी वनाना चाहे और परलोक में सदा-सदा के लिए सुखी वनने की भावना रखता है तो अमृत तुल्य वीतराग के वचनों को यथा शक्ति जीवन में स्थान दे, उन्हें पूर्णतया जीवन में उतारने की कोशिश करें, जिससे वर्तमान की समस्याओं का हल सहजतया हो सके।

इसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रभु ने जो-जो भिन्न भिन्न रूपों में संकेत दिये हैं, उन्हें संत लोग आपके समक्ष उपस्थित कर रहे हैं।

आपके समक्ष सुबहकुमार का विवेचन चल रहा है। सुबाहुकुमार कितना ऋद्धिशाली था, शारीरिक दृष्टि से कितना भव्य था, कितना कमनीय एवं कोमल था, उसकी इस स्थिति को देख कर अनेक व्यक्तियों के मानस में विविध प्रकार की जिज्ञासाएं उत्पन्न हो गई थी। गौतम स्वामी ने उन भव्यों की आंतरिक जिज्ञासा को देखकर प्रभु महावीर से प्रश्न किया "भगवन् सुबाहुकुमार को यह मनुष्य शरीर इतना आकर्षक, कोमल, कमनीय, कांति स्वरुप वाला कैसे प्राप्त

हुआ ? मनुष्य की आकृति एक समान दिखाई देती हैं लेकिन उसकी कमनीयता में अंतर आता है शरीर की रचना का प्रकार विभिन्न होता है, अतः आप कृपा करके फरमावें कि सुबाहु कुमार ने यह कमनीय सौंदर्य कैसे प्राप्त किया ?

आम व्यक्ति की दृष्टि वर्तमान जीवन पर रहती है और वह अपने से गुण संपन्न और वैभव संपन्न व्यक्ति को देखता है तो उसके मन में भी एक जिज्ञासा उठती है कि यह कैसे वना ! । यह जिज्ञासा इस वात के लिए उठती है कि मैं भी इसी प्रकार की स्थिति प्राप्त करुं । अच्छे व्यक्ति की तरह वनने की जो भावना वनती है । वह मनुष्य के विकास का सूचन करती है । यह शरीर इस जन्म की पुण्यवानी से नहीं, पूर्व जन्म की पुण्यवानी और पूर्व के कर्मों के फलस्वरुप मिला है । गौतम स्वामी ने सुवाहुकुमार के संवंध में प्रश्न कर लिया "किं वा दच्चा किं वा भोच्चा, किं वा समायरित्ता...

पूर्व जन्म में सुवाहुकुमार ने क्या दान दिया, क्या खाया क्या आचरण किया जिससे इतना पुण्य का वंध हुआ और आकर्षक रुप मिला ? प्रभु गौतम के इस प्रश्न में वहुत वडा रहस्य भरा हुआ है.

प्रश्न वहुत सुवोध प्रतीत होता है किंतु उस प्रश्न में जीवन का स्पर्श रहा हुआ है । मनुष्य का वर्तमान जीवन इन तीन वातों से संपन्न होता है । या तो वह कुछ देता है, दे कर पुण्यवानी वांधता है । या कुछ खाता है, या कुछ आचरण करता है । उसने कौन सा ऐसा कार्य किया जिससे, ऐसा जीवन मिला, ऐसा तन मिला, इतनी रिद्धि मिली ? मनुष्य कुछ-न कुछ देता है, देता नहीं तो कुछ-न-कुछ खाता है । देने को तो आप सव कुछ जानते हैं । अपने पास जो शक्ति है, संपत्ति है, उसका ही सदुर्विनिमय करते हैं, किसी-न-किसी को सहायता पहुंचाते हैं, आर्थिक दृष्टि से कमजोर

व्यक्ति को सहयोग देना, साधार्मिक को सहयोग देना, ये जो शुभ भाव हैं वे पुण्यवानी का बंधन करनेवाले है। यदि सही पात्र को दिया तो पुण्यवानी बंधेगी. गुणी पुरुष को दिया तो धर्म भी होगा. व्यक्तिगत तौर पर सम दृष्टि भाव में रहनेवाली आत्मा को समदृष्टि भाव के साथ वात्सल्य भाव से कुछ दिया तो भी पुण्य संचय होगा.

पुण्यबंध के प्रकार

तीर्थंकरों ने पुण्य, बांधने के ९ साधन बताये हैं : अन्न, पुण्य, पान पुण्य, लयन पुण्य, शयन पुण्य, वस्त्र पुण्य, मन पुण्य, वचन पुण्य, काय पुण्य और नमस्कार पुण्य. ये जो ९ साधन बताये हैं, उनमें से जो भी देता है शुभ भावना से देता है और सम्यग्दृष्टि भाव का पोषण करता हुआ देता है, वह साधारण व्यक्ति को देने की अपेक्षा अधिक पुण्य लाभ कमाता है। इससे आगे यदि कोई व्रतधारी श्रावक है उसको सहयोग देता है, उसके व्रत में मददगार बनता है, व्रत का परिपालन करने में सहायक होता है तो वह धर्म कमाता है और पुण्य बंध करता है। इससे भी बढकर जो पांच महाव्रत धारी साधु है, जो पास में कुछ नहीं रखते, अकिंचन होते है, लेकिन होते हैं. सारे जगत के वंदनीय-पूजनीय, उनको देते हैं तो भावात्मकता इतनी बढ़ जाती है कि जिससे कर्मो के वृंद के वृंद टूट जाते हैं और धर्म प्राप्ति के साथ पुण्य का अंबार लग जाता है।

ये वृत्तियां मनुष्य जीवन में सहज और सुगम है। इसलिए गौतम स्वामीने प्रश्न किया कि सुबाहु कुमार ने पूर्व जन्म में क्या दिया, खाया? सुबाहु कुमारने पूर्व जन्म में सुपात्र दान दिया. सुपात्र के तीन भेद बताये हैं। जघन्य सम्यग्दृष्टि, मध्यम, व्रतधारी श्रावक और उत्तम व्रतधारी साधु. सबसे उत्तम व्रतधारी साधु हैं।

सुपात्र दान देने से सुबाहु कुमार की पुण्यवानी बहुत बढ़ गई. प्रभु गौतम ने दान के साथ खाने का भी उल्लेख किया है कि सुबाहु कुमार ने पूर्व जन्म में ऐसा कौन सा खाना खाया, जिससे उसकी सुंदरता इतनी बढ़ गई. ऐसा खाना यदि आपको मिल जाय तो फिर क्या चाहिए. यहां खाने का संबंध वर्तमान जीवन से नहीं पूर्व जन्म से है। संयम साधना की पुष्टि के लिए खाया जानेवाला भोजन पुण्य बंध और निर्जरा का कारण होता है।

दान से सौंदर्य

आपको मालूम होगा कि वैद्य जी ऐसी दवा देते हैं जिससे मनुष्य सुन्दर बन सकता है। किंतु वैद्य जी सुन्दर बनने की कितनी ही अच्छी दवा दे दें, उस दवा से सुबाहु कुमार जैसा सुन्दर शरीर नहीं बन सकता। यदि आप सादी सीधी खुराक बिना औषधि के लेते हैं, भोजन के समय रूखा सूखा जैसा भी भोजन आप हर रोज करते हैं, उसमें यदि आप रासायनिक तत्व घोल दें, रासायनिक तत्व का तात्पर्य यह नहीं समझें जैसा कि डाक्टर प्रयोग करते हैं. जिससे कोयल से हीरा बना देते हैं अथवा स्वर्ण से स्वर्ण भस्म बना देते हैं। अपितु भोजन करने से पहले आप यह भावना भावें कि यह भोजन मैं हर रोज करता हूं वैसा ही कर रहा हूं। यह भोजन मैं स्वाद के लिए नहीं कर रहा हूं, न मोह को बढ़ाने के लिए कर रहा हूं, लेकिन इस भोजन से मैं ऐसी साधना कर सकूं, जैसी सुबाहु कुमार ने की और अन्ततोगत्वा वह सदा सदा के लिए सुखी बन गया। वैसे ही यह भावना भावें कि भगवन्, मैं भोजन करने बैठ रहा हूं. भोजन करने से पहले कोई त्यागी पुरुष आजावें तो उनको दान दे कर फिर मैं भोजन करूं। यदि ऐसा योग नहीं बने तो पहले पांच नवकार मन्त्र गिने बिना भोजन नहीं करूं। संभव है आपको इस भावना की पद्धति में कष्ट होगा, लेकिन यदि इस तरह

की भावना भा कर और पांच नवकार मन्त्र गिनकर, आप भोजन करना चालू करते है तो एक आध्यात्मिक रासायनिक प्रक्रिया चालू हो जाती है। आपने भोजन पर बैठ कर भावना भाई, दान लेनेवाला कोई नहीं भी आया फिर भी आपको पुण्य बंध हो गया। खाते समय भी आप भावना करिये कि मेरा जीवन इस आहार को पा कर पवित्र बन जाय, मैं सामायिक का स्वरूप प्राप्त कर लूं। यदि सामायिक का वास्तविक स्वरुप मेरे जीवन में आ गया तो उसके सहारे मैं भी सुबाहु कुमार के समान बन जाऊंगा।

वह आहार आपकी सामायिक साधना में सहयोगी बन जायेगा। उसमें समरस का रसायन मिल जायेगा।

आप सामायिक के स्वरुप के संबंध में जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। अभी सामायिक का स्वरुप जितना चाहिए उतना हृदयंगम नहीं हुआ है। आरंभ किया है और कुछ आगे बढ़ रहे है। ४८ मिनिट तक एक स्थान पर बैठ कर यह सम भाव की प्राप्ति कैसे हो। यदि यह सूत्र आचरण में आ जाता है तो व्यक्ति भविष्य में भी जैसा चाहे वैसा बन सकता है और वर्तमान में भी बन सकता है। मैं यह बात केवल भावनात्मकरुप से नहीं कह रहा हूं, यदि वर्तमान जीवन को बनाने की कला आ जाती है और सामायिक का योग सावद्य लेते है तो देखिये कि आपका जीवन कैसा शांत-प्रशांत बन जाता है। किंतु सामायिक योग साधना के लिए यह चिंतन आवश्यक है कि आप सामायिक करके आये हैं, उसमें कुछ नवीनता प्रगट करके आये हैं या रीति रिवाज की तरह करके आये हैं। आपने करेमिभंते के पाठ का उच्चारण कर लिया। सावद्य योगों का त्याग कर लिया, उस अवधि में कुछ स्तुति वगैरा बोल कर ४८ मिनिट पूरे कर दिये और सोच लिया कि हमारी सामायिक पूरी हो गइ। यही तो मौलिक भूल चल रही है। सामायिक का शाब्दिक अर्थ है सम+आय अर्थात्

सम भाव की प्राप्ति। यह जब तक प्राप्त न हो सामायिक अधूरी ही मानी जायेगी।

यह चर्चा सूक्ष्म अवश्य है, लेकिन सूक्ष्म विषय को समझे बिना सामायिक से जितना लाभ होना चाहिए उतना लाभ नहीं हो सकता। इसलिए आप सामायिक साधना उसके मौलिक रूप में करें। आपने जो सामायिक की साधना की है, सावद्य योग का त्याग है–४८ मिनिट के लिए, वह आपके भीतर में कितनी उतरी है। कोई डाक्टर आपसे यह कहता है कि आपके रोग निवारण के लिए यह आवश्यक है कि आप लूखी (बिना चुपडी) रोटी खाओ और बिना नमक मिर्ची की भाजी (सब्जी) खाओ तो आप डाक्टर की आज्ञा मान लेंगे, किंतु सामायिक के लिए गुरु महाराज की आज्ञा भी मानेंगे ?

सामायिक के रासायनिक प्रक्रिया

मैं आपसे पूछुं कि आपको सामायिक का रस आया या नहीं ? यदि कुछ आया तो उसका जीवन के व्यवहार में कुछ प्रभाव हुआ या नहीं ? कुछ सीमा तक भी समता का जागरण हुआ या नहीं ? यदि आप भोजन करने बैठे और दाल में नमक कम हो या अमुक चीज की कमी है तो आप क्रोध से लाल पीले तो नहीं होंगे, कटोरी या थाली उठाकर तो नहीं फेंक देंगे। यदि वहां समभाव नहीं रहा तो समझ लीजिए कि सामायिक का रस नहीं आया है, आपको अभी रासायनिक प्रक्रिया करनी नहीं आई है। यदि रासायनिक प्रक्रिया आ जाय तो देखिये उससे कैसी परिणति हो जाती है।

पीरदान जी चोथरा तिवरी के मूल निवासी थे। आज कल उनका परिवार दुर्ग में रहता है। वे रोज सामायिक करते थे और सन्तों के प्रवचन का प्रायः बिना व्यवधान लाभ लेते थे। उनको सामायिक का रस किस रूप में लगा यह नहीं कहा जा सकता,

लेकिन उनकी जीवन-चर्या से ज्ञात होता है कि उन्होंने उस साधना से कुछ पाया । एक दिन प्रवचन के प्रसंग में प्रसंग चला कि कुछ त्याग करना चाहिए, तो उन्होंने मुनि राज से कहा कि भगवन्, एक बात का त्याग करा दीजिए कि जो भोजन एक बार परोस देंगे वह खा लूंगा, मेरे हाथ से नहीं लूंगा । अधिक होगा तो निकाल दूंगा और कम होगा तो दुबारा नहीं मांगूगा । उन्होंने यह प्रतिज्ञा ग्रहण कर ली । यह मारवाड़ का प्रसंग है ।

रसना विजय एक श्रावक का

एक रोज उनकी पत्नी ने बाजरे का खीचड़ा बना कर रखा था, एक तरफ भैंसों को खिलाने का बांटा भी सिजो कर रख दिया उस समय मारवाड़ में पानी लाने के लिए दूर-दूर जाना पडता था। अब पानी की सुविधा हो गई हो तो मैं नहीं कह सकता । पानी लाने के लिए उनकी पत्नी जा रही थीं । जाते समय अपनी सास से बोल गई कि खीचड़ा तैयार है, यदि वे आवें तो आप परोस देना । पहले की बहिनें पति का नाम नहीं देती थीं । इसलिए 'वे' शब्द का प्रयोग किया करती थीं आज कल तो पति पत्नी को एक दूसरे को नाम ले कर पुकारना एक आम बात अथवा-फैशन सी हो गई है । माता को आंखों से दिखाई नहीं देता था । उसने कहा कि बीनणी जी, तुम जाओ, पीरु आयेगा तो मैं परोस दूंगी । पानी लाने के लिए दूर जाना पडता था । इसलिए लौटने में विलंब हुआ करता था ।

पत्नी के जाने के बाद पीरदान जी दुकान से घर पर आये और माता से कहा "माताजी, मैं आ गया हूं ।" माता ने कहा ? "पीरू, बीनणी पानी लाने गई है, खीचड़ा तैयार पड़ा है, तुम ले कर जीम लो." पीरदानजी ने कहा "मेरे हाथ से लेने का त्याग है" माताने कहा "मुझे आंख से नहीं दीखता है, फिर भी तू बैठ मैं परोस

देती हूं।" आप जानते हैं माता के हृदय में पुत्र के प्रति कितना ममत्व होता है। माता दीवार के सहारे चल कर खीचड़े की हांडी के पास गई और हाथ से टटोल कर लकड़ी का चाटू चम्मच उठाया और भैंस के बांटे की हंडिया को खीचड़े की हंडिया समझ कर उसमें से दो चाटू चम्मच भर के बांटा थाली में परोस दिया और पीरदानजी के सामने रख दिया. पीरदान जी के सामने वस्तु आते ही उन्होंने भावना भाई और बांटा खा कर हाथ धो लिए और थाली एक तरफ रख कर पुनः अपने काम पर चले गये।

कुछ समय पश्चात् पीरदान जी की पत्नी पानी ले कर आई, उसने खीचड़े की हंडिया देखी तो वह वैसी की वैसी भरी हुई थी। उसने पूछा "सासू जी, क्या वे नहीं आये?" माता ने कहा "पीरू आ गया और खीचड़ा खा कर चला गया." पत्नीने कहा कि खीचड़े की हांडी तो पूरी भरी हुई है, आपने उनको बांटा तो नहीं परोस दिया? बांटे की हांडी देखी तो वह थोड़ी खाली थी. पत्नीने कहा "आपने उनको बांटा परोस दिया." माता को बड़ा दुख हुआ बोली "उसको हाथ से ले कर खाने की सौगंद थी. लेकिन यह तो कह सकता था कि यह बांटा है। मुझे तो दीखता नहीं था, लेकिन वह बांटा खा कर ही चला गया." माता को बड़ा पश्चाताप, हुआ इतने में पीरदानजी आ गये और माता ने कहा "तू बांटा खा कर चला गया, मुझे बताया भी नहीं कि यह बांटा है, खीचड़ा नहीं है." उन्होंने कहा "भैंस बांटा खाती है, उसके भी आत्मा है. मैं भी आत्मा हूं."

उन्होंने बांटा सम भाव से खाया. कहां तो बांटा खा लेना और कहां थोड़ा साग में नमक कम हो जावे तो परात थाली पटक देना,

थोड़ी सी कमी रहने पर आपका मन ऊंचा नीचा हो जाता है। सम भाव की कमी के कारण ऐसा होता है।

सुबाहु कुमार की तरह यदि आपकी इच्छा मोक्ष में जाने की है तो उस के लिए सबसे पहली साधना सामायिक की है। ४८ मिनिट तक क्या करना चाहिए, क्या सोचना चाहिए, क्या चिंतन करना चाहिए, सामायिक में सम भाव कैसे आता है, इन सब पर गंभीर चिंतन आवश्यक है। यही नहीं उसका प्रभाव जीवन में कैसे आये यह भी विचार आवश्यक है। उसका परीक्षण भोजन के समय विशेष रुप से होता है। खाते समय सम भाव से खाना चाहिए। ऊंचे नीचे परिणाम नहीं आने दें। मान लीजिए दो भाई एक साथ रहते हैं। छोटे भाई की पत्नी परोस रही है तो यह ख्याल नहीं रखना चाहिए कि उसने मेरे को क्या परोस दिया और छोटे भाई को क्या परोस दिया। उसका ध्यान अपनी तरफ नहीं जा कर दूसरे की तरफ जायेगा, तो वहां विषमता आ जायेगी। जो व्यक्ति अपनी शक्ति को नहीं देख कर दूसरों की तरफ दृष्टिपात करता है वह जीवन में समता प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे दूसरों को देखें वैसे ही अपने को देखें। दूसरा गलती कर रहा है तो वह देखे कि कहीं मैं भी गलती तो नहीं कर रहा हूं। एक रुपक है :

इन्द्रियों का परस्पर विश्वास

एक व्यक्ति जा रहा था—नेशनल पार्क की ओर। शरीर एक था लेकिन उसमें दो आंखे थी एक नाक था, दो कान थे, एक जिह्वा थी। आंखें दूर तक देख रही थी। आंखों ने दूसरी इन्द्रियों से

कहा—"देखो यहां पहाड़ दिखाई दे रहा है, कितना बड़ा है। इस बात को कानों ने सुना और कहा कि कहीं पहाड़ है अगर पहाड़ होता तो सबसे पहले कानों में आवाज आती? इसी तरह से नाक ने कहा कि अगर पहाड होता तो मुझे सुगन्ध आती। जिह्वाने कहा कि पहाड़ होता तो मुझे चखने को मिलता। स्पर्श इन्द्रिय कहने लगी कि मैं हाथ लगा कर अनुभव कर सकती थी। किंतु वह पहाड़ नहीं है। आंखों ने फिर कहा कि देखें—देखें ये भ्रमर उड रहे है। दूसरी इन्द्रियों ने कहा कि आज आंखों को क्या हो गया है, जो बेतुकी बात कह रही है। पहले कहा कि पहाड़ दिख रहा है और अब कह रही है कि भंवरे उड रहे हैं। बाकी की चारों इन्द्रियां आंखों के साथ संघर्ष करने लग गई। किसी शिक्षक ने बालकों को शिक्षा देने की दृष्टि से यह रुपक प्रस्तुत किया। वह कल्पना यह समझाने के लिए है कि आंखे देखने का कार्य करती हैं, लेकिन कान देखने का कार्य नहीं करते, वे सुनने का कार्य करते है, नाक सूंघने का कार्य करता है। उसी तरह से जीभ का कार्य अलग है और स्पर्श इन्द्रिय का कार्य अलग है। पांचो इन्द्रियों को अलग-अलग कार्य बांटा हुआ है। पांचो को अपना-अपना कार्य करते हुए एक दूसरे पर विश्वास करना चाहिए। आंखें अपनी दृष्टि से देख कर कह रही है कि पहाड़ है और भवरों की पंक्तियां उड रही है, तो जो बात कह रही है अन्य चारों इंद्रियों को विश्वास करना चाहिए, आंखें जो बात कर रही है वह सही है। इसलिए कहा गया है कि जो व्यक्ति अपने को देखने के साथ ही पर को देखता है और यथेष्ट चिंतन करता है तो वह व्यक्ति समता भाव से आगे बढ़ सकता है।

इस दृष्टि से अनुभवी व्यक्ति कहते हैं "तुम सामायिक की साधना करो। यह एक दिव्य आंख है। इस दिव्य आंख से देखने की चेष्टा करो। हर समय ध्यान में रखो कि मैं सामायिक कर रहा हुं मैंने सावद्य योग का त्याग किया है। यह साधना मुझे निश्चित ही आत्म शांति प्रदान करेंगी।"

दिनांक ४-८-८४
बोरीवली (पूर्व) बंबई

रक्षा बंधन का पर्व भारतीय संस्कृति का प्रतीकात्मक पर्व है। यह अपने गर्भ में अनेक ऐतिहासिक प्रागैतिहासिक घटना क्रमों को समेटे हुए है। यही नहीं इसके साथ अनेक किंवदन्तियां भी जुड़ी हुई है। जो इसकी प्रयोजनीयता को ध्वनित करती है।

इस पर्व ने कितनीदर्दीली मनः स्थितियो को सांत्वना प्रदान की है। कितने विरोधी सम्प्रदायों, जातियों एवं व्यक्तियो को एक दूसरे के करीब लाकर उनमें अद्भुत एकत्व, आत्मीयता, स्नेह, सौहार्द्र की स्थापना की है।

किंतु खेद है कि आज का रक्षा बंधन पर्व प्राण रहित देह का ढांचा मात्र बनकर रह गया है। लगता है इसकी आत्मा खो गई है—हमारे हाथ में केवल कलेवर रह गया है। रक्षा बंधन का पवित्र भावों से वेष्टित यह धागा चंद नोटों के आदानप्रदान का विषय बन कर रह गया है। या यों कहें इसका चंद पैसों में सौदा होने लगा है।

रक्षा बंधन का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक रूप कैसा होना चाहिए ? रक्षा के धागे का क्या महत्व है? इसकी ऐतिहासिकता क्या है? इसके सांस्कृतिक मूल्य क्या हैं. आदि जिज्ञासाओं के समाधान के साथ ही समाज के कर्णधारों के प्रति समाज एवं संस्कृति के जागरण का एक सशक्त आह्वान पढ़िये प्रस्तुत प्रवचन में।

संपादक

रक्षा-संस्कृति की

रक्षा बंधन-संस्कृति की अविच्छिन्न धारा

आज रक्षाबंधन का पर्व है। पर्व की उपयोगिता एवं उपादेयता विदित हैं। कुछ पर्व ऐसे होते हैं जो बाहरी आमोद-प्रमोद के साथ ही हमारी प्राचीन सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करते हैं।

अनंत अनंत उपकार की, अमोघ धारा से आध्यात्मिक ज्ञान की वर्षा करनेवाले, निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का उदात्त एवं भव्य स्वरुप जनता के समक्ष प्रस्तुत करनेवाले तीर्थंकर देवों के उपकार का कोई और छोर नहीं देखा जा सकता उन्होने निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का जो उद्बोध किया है वह कितना व्यापक एवं विशाल है उसमें कितनी अमोघ शक्ति भरी हुई है। जिससे जन-जन के जीवन में अपूर्व शांतिएवं अपूर्व प्रकाश का अनुभव हो सकता है। एसी निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति-उच्चतम साधु जीवन की पवित्र संस्कृति इस विश्व में अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं हो सकती है। भारतीय संस्कृति अध्यात्म प्रधान संस्कृति है। इस संस्कृति में निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का अपना विशिष्ठ स्थान हैं।

आज के परिवेश में अनेक संस्कृतियां हो गई है। आधुनिक संस्कृतियां अधिकांशतया पांच इंद्रियों के आकर्षण में उलझाने वाली है लेकिन प्राचीन भारतीय संस्कृति पांच इंद्रियों के विषय की प्रवृत्ति को संशीधित करनेवाली है। और उसमें भी निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति तो आत्मा के स्वरुप को इतना संशोधित कर डालती है कि उस पर कभी भी अशांति की छाया न पड सके। समस्त वेदना और बाधाएं उसके निकट नहीं आ सकें। इसी निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के परि-

पैक्य से आज का बंधन का प्रसंग आपके समक्ष उपस्थित हो रहा है।

रक्षा बंधन का त्योहार भारतीय त्याहारों में विशेष स्थान रखता है। अन्य त्योंहारों में जातीयता एवं साम्प्रदायिकता का अंतर आ सकता है लेकिन इस त्योहार में भारतीय जनता चाहे किसी जाति या पार्टी में रही हुइ हो प्राय: एक मत हो कर चल रही है।

कुछ तो इस भारतीय भूमि का प्रभाव ही है कि इस में निवास करनेवाले धीरे धीरे अपने आपको इस की संस्कृति के अनुरुप ढाल लेते हैं। रक्षा बंधन की परिपाटी कब से कहां और कैसे चली, इस विषय में अनेक ऐतिहासिक अथवा प्रागैतिहासिक प्रसंग हैं।

रक्षाबंधन-पौराणिक दृष्टि

दानवराज बलि बहुत बड़ा यज्ञ करता है, जिससे देवराज इंद्र का सिंहासन हिल उठता है. वह इस डर से कि कहीं इस तप के द्वारा दानवराज मेरा सिंहासन नहीं हड़प ले, विष्णु की शरण में जाता है। विष्णु बलि की दान शाला में बौना रूप ले कर याचक बन कर जाते हैं और साढे तीन पैर जमीन मांगकर तीन पांव में तीनों लोक नाप कर आधे पांव में बलि को तीसरे पाताल लोक में पहुंचा देते है। वहां बलि की दान शीलता से प्रसन्न हो कर उसे वरदान मांगने को कहते हैं। बलि ने मांगा कि मैं पाताल का राजा बनुं और आप मेरे द्वारपाल बने। वचन बद्धता के अनुसार विष्णु ने वैसा स्वीकार कर लिया। इसीलिए आज ब्राह्मण लोग रक्षा सूत्र बांधते समय बोलते हैं—

येन बद्धो बलि राजा, दानवेन्द्रो महाबलि।
तेन तां प्रति बध्नामि, रक्षा मा चल मा चल॥

दानवों के राजा बलि और देवों के राजा इंद्र, यो दानव और देव, उपर से कुछ और सूचना कर रहे हे लेकिन चिंतन की दृष्टि से दोनों भौतिकवादी विचारों का प्रतिपादन करनेवाले और आध्यात्मिक उत्तरदायित्व लेकर चलनेवाले विचारों के प्रतीक है।

जैन दर्शन में रक्षा बंधन की ऐतिहासिका अकंपन आचार्य की कहानी और उसमें भी निग्रन्थ श्रमण संस्कृति के संरक्षक ७०० मुनिराजों के संरक्षण के साथ जुडी हुई, एक मुनि ने आज के दिन निग्रन्थ श्रमण संस्कृति की साधना करते हुए जिस उत्तरदायित्व का परिचय दिया, ७०० मुनिराजों का संरक्षण किया, वह कथा भी इस निग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा की दृष्टि से बहुत विस्तृत है।

रक्षाबंधन का ऐतिहासिक रुप

महाराज पद्मनाम भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व लेकर चलनेवाले थे. उनके नमूचि बलि आदि चार मंत्री अकारण ही मुनि द्वेषी बन गए थे उन्होने इस आध्यात्मिक निग्रन्थ श्रमण संस्कृति पर अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया और वह अत्याचार इतना आगे बढ़ गया कि स्वयं पद्मनाम महाराज विकट धर्म संकट में फंस गए. हुआ यो कि पद्मनाभ महाराज ने उनके एक किसी कार्य से प्रसन्न हो कर उन्हें कुछ वरदान दे दिया. महाराज की कृपा प्राप्त कर वे अत्यंत उद्दण्ड बन गए. इधर एक बार अकंपनाचार्य, जिनके साथ इन चारों मंत्रियों का द्वेष था, अपने ७०० शिष्यों के परिवार सहित पद्मनाभ की राजधानी में पहुंचे और नगर के बहार बगीचे में अपनी संयम यात्रा का निरवहन करते हुए रह रहे थे. उस समय उन नास्तिक वादी दूसरे शब्दों में भौतिकवादी या पांच इंद्रियों के विषय मे आसक्त रहनेवाले व्यक्तियों ने कुछ अपना प्रभाव दिखानां चालू किया. उन्होंने सम्राट से वरदान के रुप में सात दिन का राज्य ले लिया और निश्चय किया कि सातवें रोज उन ७०० मुनियों को अग्नि भस्म सात् कर देना है।

पद्मनाभ महाराज का राज्य बहुत विशाल था और उस राज्य का पूर्ण अधिकार सात दिन के लिए उन मंत्रीयों को मिल गया था। उन्होंने एलान करा दिया कि निर्ग्रंथ श्रमण संस्कृति से हमको कोई प्रयोजन नहीं, इन श्रमणों की हमें कोई आवश्यक्ता नहीं। ये व्यक्ति हमारी भौतिक सुख सुविधाओं में बाधक है। हमें जो पांच इंद्रियों के विषय सुलभता से प्राप्त है. ये इसमें विघ्न पैदा करते है यह लुदयों से पांच इंद्रियों के विषय छुड़वाते हैं और आध्यात्मिकता की बात कर के दुनिया को गुमराह करते है. ऐसे इन मुनियों को हम अपने राज्य में नहीं रहने देंगे. ये सब मुनि सात दिन के अंदर अंदर हमारे राज्य से बाहर चले जायं, वे इस राज्य में नहीं रहे अन्यथा सातवें दिन इनको अग्नि में होम दिया जायगा इतनी क्रूरता उन मंत्रियों में आ गई.

पद्मनाभ महाराज संत समुदाय का आदर करते थे, उनके सामने नतमस्तक होते थे. संत जीवन की गरिमा उनकी रग रग में समायी हुई थी लेकिन वे वचन बद्ध थे, इसलिए कुछ नहीं कर पा रहे थे।

उनके छोटे भ्राता छोटी वय में ही आध्यात्मिक साधना में ही संलग्न हो गये और निग्रन्थ श्रमण संस्कृति की उदात्त एवं पवित्र छाया में आत्म विकास कर रहे थे. वे अपने गुरुमहाराज के पास साधना की दृष्टि से अरण्य में–पहाड की गुफा में साधना कर रहे थे. इधर दूसरे गुरु शिष्य भी अन्य गुफा में साधना कर रहे थे.

रक्षा—श्रमण संस्कृति की

आज श्रावणी पूर्णिमा की रात्रि को श्रवण नक्षत्र आकाश में चमक रहा था। गुफा में से शारीरिक चिन्ता निवृत्ति के साथ साथ स्वाध्याय की साधना करने की दृष्टि से आकाश प्रति लेखन को गुरु महाराज बाहर निकले आकाश में चमकते हुए तारे देखे। गुरुमहाराज की दृष्टि इस श्रवण नक्षत्र पर गई। वे श्रावण नक्षत्र को पहले-भी

देख चुके थे, आज भी देख रहे थे। आज श्रावण नक्षत्र प्रकंपित हो रहा था। उन्होंने देखा कि आज यह नक्षत्र प्रकंपित क्यों हो रहा है वे विशिष्ट ज्ञानी थे। अतः ज्ञान से अनुमान लगाया कि यह श्रावण नक्षत्र प्रकंपित हो रहा है इससे लगता है देश में धर्म एवं संस्कृति पर कुछ संकटमय परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। हो सकता है ७०० मुनिराज जो पद्मनाभ के राज्य में आये हुए हैं उन पर बहुत बडी विपत्ति हो, उनके प्राणों के समाप्त होने का प्रसंग लग रहा है, उन आचार्य उनके मुंह से सहसा निकल पडा "अहो कष्टम् अहो अष्टम्" ये शब्द अन्दर साधना करने वाले शिष्य ने भी सुने। उसने कल्पना की कि गुरू महाराज बाहर पधारे है, यह जंगल का प्रसंग है, जहां जंगली जंतु रहते हैं संभव है, उन पर कोई आपत्ति आ गई हो इसलिए ये शब्द उनके मुंह से निकले हो शिष्य ने अपनी साधना गौण की ओर बाहर आया तो देखा कि गुरुमहाराज तो सुरक्षित खडे है, उनकी दृष्टि आकाश मंडल की ओर लगी हुई है और उनके मुंह से शब्द निकले हैं अहो कष्टम्। शिष्य ने निवेदन किया कि गुरुदेव आज आपके मुंह से ये शब्द कैसे निकले? ऐसी आश्चर्यजनक बात कैसे आई? आप ज्ञानी हैं। गुरुमहाराज ने कहा कि शिष्य! क्या बताऊं, आज की रात्रि समाप्त होने के पश्चात् पद्मनाभ महाराज के राज्य में ७०० मुनिराजों का अन्त होनेवाला है। उनका संरक्षण करना आवश्यक है। यदि उनका संरक्षण नहीं हुआ तो निर्ग्रन्थ श्रमणं संस्कृति पर महान वज्राघात होगा, मेरे मन में यही वेदना है, इसीलिए मेरे मुंह से अहो कष्ट का शब्द निकल गया। शिष्य ने कहा कि गुरुदेव इनका संरक्षण कौन कर सकता है? गुरु महाराज ने कहा कि भाई पद्मनाभ महाराज के लघु भ्राता विष्णु कुमार, वे इस कष्ट का निवारण करने में समर्थ हैं, लेकिन उनको जानकारी मिले तो वे यह कार्य कर सकते है शिष्य ने पूछा "गुरुदेव वे कहां है?" गुरु महाराज ने कहा "यहां से बहुत दूर एक गुफा में गुरु शिष्य दोनों साधना कर रहे हैं।" "गुरुदेव, उनके पास सूचना कैसे पहुंच

सकती है।" गुरु महाराज ने कहा "वत्स मैं भी यही चिंतन कर रहा हूं। या तो कोई आध्यात्मिक शक्ति से वहां जा सकता है या शीघ्रगामी कोई साधन हो तो उनके पास सूचना पहुंच सकती है।" शिष्य ने कहा कि गुरुदेव आपकी कृपा से मुझे आध्यात्मिक साधना से कुछ उपलब्धि हो रही है और मैं इतनी शक्ति संपादित कर चुका हूं कि मैं किसी भी सुदूर क्षेत्र में जा सकता हूं; यद्यपि इस शक्ति को मैं प्रयोग में नहीं लाना चाहता लेकिन ऐसे प्रसंग पर, जब कि आपके मुंह से अहो कष्टम् शब्द निकल रहे हैं, मैं अनुभव कर रहा हूं कि कोई बहुत बडी बात है। इस निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के लिए मुझे यदि शक्ति का प्रयोग करना पडे तो मैं बाद में प्रायश्चित कर सकता हूं। मैं मुनि विष्णु कुमार के पास शीघ्र पहुंच सकता हूं, लेकिन वापिस शीघ्र आने की शक्ति अभी तक संपादित नहीं कर पाया हूं। गुरुमहाराज ने कहा कि पुनः आने की फिक्र मत करो। एकबार उनके पास संदेश पहुंचा देते हो तो वे उनकी रक्षा करने में सफल हो जायेंगे।

शिष्य ने तथास्तु कह कर अपनी शक्ति का प्रयोग किया और विष्णु कुमार मुनि के पास पहुंचे गुरुमहाराज द्वारा बतलाये हुए उद्गार उनके समक्ष प्रस्तुत किये। विष्णु कुमार मुनि वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करके सूर्योदय होते होते पद्मनाभ महाराज के पास पहुंच गए।

भ्राता मुनिराज को देखकर पद्मनाभ महाराज प्रसन्न हुए, उनका सत्कार सन्मान किया तब मुनि ने कहा कि राजन मेरा क्या सत्कार सन्मान कर रहे हो। निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का सत्कार सन्मान करो। वह आज खतरे में पडी है। थोडा विलंब हुआ तो ७०० मुनिराजों का घात हो जायेगा और निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति भी विकट समस्या में पड जायेगी। सम्राट ने कहा—मैं क्या कर सकता हूं मुझसे बहुत बडी भूल हो गई। उन अज्ञानी मंत्रियों की तात्कालिक

उपलब्धियों को देखकर मैं वचनबद्ध हो गया। मुझे पता नहीं था कि ये लोग वरदान का दुरुपयोग करेंगे, अनीति और अत्याचार करेंगे। लेकिन मुंह से निकले वचनों के कारण वरदान दे दिया और ७ दिन के लिए राज्य उनके आधीन कर दिया। उसके बाद मैं निहत्था हो गया। सत्ता और शस्त्र मेरे पास नहीं रहे, समस्त अधिकार उनके पास चले गये। मुझे अत्यन्त दुख हो रहा है लेकिन मैं कर कुछ नहीं सकता। आप समर्थ है आप ही उन मुनियों की रक्षा करें। मुनि ने कहा "राजन, मैं अपनी स्थिति से जो करना चाहूंगा वह करूंगा," किंतु आप यह संकल्प करें कि इस प्रकार तत्क्षण लुभावने द्रश्य दिखानेवाले भौतिकवादियों के चक्करमें नहीं आयेंगे। ऐसे नाटकीय ढंग से ठगने वाले व्यक्ति दुनियां में बहुत होते है। उनके चक्कर में आने से पवित्र संस्कृति, जिसको भारतीय संस्कृति का सिरमोर बताया है, आज खतरे में पड गई है। महाराज ने कहा कि मैं आगे के लिए सावधानी रखूंगा सात दिन बाद सत्ता वापिस मेरे पास आ जायेगी, फिर अपनी स्थिति में चलूंगा। फिर किसी भी मुनि की ओर कोई अंगुली उठाकर नहीं देख सकेगा। पद्मनाभ के विचार सुनने के बाद विष्णु कुमार उन मंत्रियों के प्रधान के पास गये और कहा कि अब तो तुम राजनपाति राजा हो गये हो, मुझे भी कुछ दान दोंगे? आप यज्ञ कर रहे है, उसमें कुछ दान भी दिया जाता है? उसने कहा "बोलो क्या चाहते हो?" उन्होंने कहा "मैं तो साधु हूं। मुझे क्या चाहिए, सिर्फ साढे तीन हाथ जमीन शयन के लिए चाहिए।" प्रधान ने कहा कि साढे तीन हाथ क्या और अधिक चाहिए तो ले लो। मैं देने के लिए तैयार हूं। नहीं मेरे लिए तो इतनी ही पर्याप्त है। उसको वचन में आबद्ध करके वैक्रिय लब्धि से विराट रुप बनाया। तीन हाथ में सारी जमीन नाप गये और बोले कि बताओ अब आधा हाथ कहां रखूं प्रधानों के आंतरिक विचार शीतल हुए, उनका अभिमान चूर चूर हो गया।

विष्णु कुमार के चरण पकडे और प्राणों की भिक्षा मांगने लगे–"मैं आपके शरण में हूं, अब कभी ऐसा कार्य नहीं करूंगा। मुनिराज ने उनको अभयदान दिया। लेकिन उनका जीवन बदल दिया। इस प्रसंगसे ७०० मुनिराजों की रक्षा हुई।

इधर पुराण की दृष्टि से देवों की रक्षा हुई। आसुरी प्रवृत्ति से दैवी प्रवृत्ति की रक्षा हुई। और उधर भौतिक प्रवृत्ति से आध्यात्मिक प्रवृत्ति की रक्षा हुई। ये दोनों स्थितियां रक्षा बन्धन के इतिहास को स्पष्ट करती हैं।

तत्कालीन जन प्रमुखों ने उस समय की परिस्थिति को देखकर, दैवी प्रकृति और आध्यात्मिक जीवन की रक्षात्मक उदात्त भावनाओं को प्रश्रय देने के लिए रक्षा बंधन का पर्व प्रचलित किया. पर्व किसी भी निमित्त से चला हो, उसका उद्देश्य महान और है. किंतु आज का पर्व प्रायः निष्प्राण सा हो गया है जैसे लौ रहित दीपक. जैसी बिना ज्योतिवाले दीपक की स्थिति है ठीक वही स्थिति आज रक्षाबंधन की बन रही है. यहां रक्षा की भावना जिस रूप से प्रचलित हुई? उस उद्देश्य को आज की जनता भूल गई. इस रक्षा के विपरीत उद्देश्य में प्रवृत्ति करने के लिए प्रकाश रहित रक्षा का डंडा लेकर चल रही है, लेकिन प्राण खो दिये हैं आज का पर्व इतने में ही सीमित हो गया है कि सूत के धागे में चमकीला पदार्थ लगा कर रक्षा बांध दी जाती है और भाई बहिन को कुछ दे देता है।

बंधुओ, क्या आप जानते हैं कि इसके पीछे भ्रात प्रेम की स्थिति कैसे सुरक्षित रहनी चाहिए। आज भ्राता रक्षा बांधने के बदले में पांच रुपये, दस रुपये, पचास रुपये या पांच सौ रुपये दे देगा, लेकिन वह बहिन यदि संकट में है कष्ट पा रही है, उसके जीवन की अत्यंत दयनीय दशा है. उसका परिवार दुःखी हो रहा है, उस समय

जिसके हाथ में बहिनने रक्षा बांधी, वह रक्षा बंधानेवाला व्यक्ति कहा गया ? और उसने बहिन के लिए क्या कुछ किया ? क्या वह उस समय बहिन की मदद करता है ? क्या वह रक्षा बंधन का कुछ महत्व समझता है ? मैं आपसे क्या कहूं ? इसका महत्व समझाने-वाले विरले ही होते हैं । रक्षा बंधन का संबंध केवल धागे तक ही सीमित नहीं है । इसके पीछे बहुत बड़ा दायित्व छिपा हुआ है ।

रक्षा सूत्र और हुमायू

ऐतिहासिक तथ्यों से संबंधित एक घटना है–जब बादशाह हुमायू भारत भूमि पर राज्य कर रहा था । उस समय बहादुरशाह चित्तोड़ पर चढ़ कर आ गया. चित्तोड़ के किले को उसने चारों ओर से घेर लिया. चित्तोड़ के राजघराने का परिवार, मेवाड़ की सारी जनता खतरे में पड़ गई. राणा की इतनी ताकात नहीं थी कि वह बहादुरशाह की सेना हरा सके ।

हुमायू उस समय बंग देश को विजय करने कीं तैयारी कर रहा था विराट सेना ले कर बंगाल विजय की उम्मीद ले कर चल रहा था. उस समय मेवाड़ की महारानी किरणावती ने एक रक्षासूत्र राखी का धागा हुमायू के पास भेजा और साथ में पत्र भी. आपके राखी बांधती हूं. मैं आपकी धर्म बहिन हूं. आज आपकी बहिन खतरे में है और उसका परिवार संकटपूर्ण स्थिति में चल रहा है । आप इस रक्षा के धागे को मेरी ओर से हाथ में बांधे और बहिन, उससे संबंधित परिवार एवं राज्य की रक्षा करें. महारानी का आंतरिक स्वर लच्छेदार भाषा में मुहावरों के पुट के साथ नहीं पहुंचा. लेकिन सीधे सादे शब्दोमें पहुंचे ।

बादशाह हुमायू जाति और संस्कृति की दृष्टि से थोड़ा भिन्न पड़ता था. लेकिन भारतीय संस्कृति में राज्य होने से भारतीय

संस्कृति से अछूता नहीं रह सका. वह भी रक्षा बंधन से प्रभावित हुआ और जाति, व्यक्ति और पार्टी के भेद को गौण करके, अपने को मिलनेवाली विजय को पीठ दे कर अपनी ही जाति के बहादुरशाह से संघर्ष करने के लिए अपने दल बल सहित पहुंच गया और महारानी की रक्षा की.

ऐसी ही नागौर की घटना है। दीलिपसिंह एवं रुद्रसिंह की मैं ऐतिहासिक अन्यान्य घटनाओं के विस्तार में नहीं जाकर संकेत मात्र दे रहा हूं।

आज का भाई इन बहिनों से रक्षा बंधवाता है, किन्तु रक्षा का धागा बंधवाने के बाद क्या उसके मन में रक्षा का उत्तरदायित्व जागता है? यदि उसने आज बहिन को कुछ देदिया और उसके कुछ माह बाद बहिन भूखों मर रही है उसके बाल बच्चे अन्न के लिए बिलख रहे हैं और भाई के पास अपार समृद्धि है. तो क्या वह भाई उस बहिन के दुर्भाग्य से संघर्ष करने के लिए अग्रसर होगा? क्या रक्षा के धागे की रक्षा करेगा? किसे क्या कहा जाय! समाज की इस दयनीय दशा पर तरस आता है.

भारतीय संस्कृति की रक्षा

आज भारतीय संस्कृति भारतवासियों के कर कमलों में रक्षा का धागा बांध रही है। त्योहार सूचित कर रहा है कि मैं भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व ले कर आया हूं। भारतवासियों! तुम चाहे किसी भी पोस्ट पर रहे हुए हो, चाहे धर्म के सिंहासन पर हो या राजस्थान या महाराष्ट्र के सिंहासन पर हो साधारण व्यक्ति हो या उसका हाथ सूखा हुआ रहा नेता हो, आप भारतीय संस्कृति के अञ्चल में पले पुसे हैं, उसके दायित्व और महत्त्व को ले कर चलते हैं.

जिसके हाथ में बहिनने रक्षा बांधी, वह रक्षा बंधानेवाला व्यक्ति कहा गया ? और उसने बहिन के लिए क्या कुछ किया ? क्या वह उस समय बहिन की मदद करता है ? क्या वह रक्षा बंधन का कुछ महत्व समझता है ? मैं आपसे क्या कहूं ? इसका महत्व समझाने-वाले विरले ही होते है । रक्षा बंधन का संबंध केवल धागे तक ही सीमित नहीं है । इसके पीछे बहुत बड़ा दायित्व छिपा हुआ है ।

रक्षा सूत्र और हुमायू

ऐतिहासिक तथ्यों से संबंधित एक घटना है—जब बादशाह हुमायू भारत भूमि पर राज्य कर रहा था । उस समय बहादुरशाह चित्तोड़ पर चढ़ कर आ गया. चित्तोड़ के किले को उसने चारों ओर से घेर लिया. चित्तोड़ के राजघराने का परिवार, मेवाड़ की सारी जनता खतरे में पड़ गई. राणा की इतनी ताकात नहीं थी कि वह बहादुरशाह की सेना हरा सके ।

हुमायू उस समय बंग देश को विजय करने की तैयारी कर रहा था विराट सेना ले कर बंगाल विजय की उम्मीद ले कर चल रहा था. उस समय मेवाड़ की महारानी किरणावती ने एक रक्षासूत्र राखी का धागा हुमायू के पास भेजा और साथ में पत्र भी. आपके राखी बांधती हूं. मैं आपकी धर्म बहिन हूं. आज आपकी बहिन खतरे में है और उसका परिवार संकटपूर्ण स्थिति में चल रहा है । आप इस रक्षा के धागे को मेरी और से हाथ में बांधे और बहिन, उससे संबंधित परिवार एवं राज्य की रक्षा करें. महारानी का आंतरिक स्वर लच्छेदार भाषा में मुहावरों के पुट के साथ नहीं पहुंचा. लेकिन सीधे सादे शब्दोमें पहुंचे ।

बादशाह हुमायू जाति और संस्कृति की दृष्टि से थोड़ा भिन्न पड़ता था. लेकिन भारतीय संस्कृति में राज्य होने से भारतीय

संस्कृति से अछूता नहीं रह सका. वह भी रक्षा बंधन से प्रभावित हुआ और जाति, व्यक्ति और पार्टी के भेद को गौण करके, अपने को मिलनेवाली विजय को पीठ दे कर अपनी ही जाति के बहादुरशाह से संघर्ष करने के लिए अपने दल बल सहित पहुंच गया और महारानी की रक्षा की.

वैसी ही नागौर की घटना है। दीलिपसिंह एवं रुद्रसिंह की मैं ऐतिहासिक अन्यान्य घटनाओं के विस्तार में नहीं पाकर संकेत मात्र दे रहा हूं।

आज का भाई इन बहिनों से रक्षा बंधवाता है, किन्तु रक्षा का धागा बंधवाने के बाद क्या उसके मन में रक्षा का उत्तरदायित्व जागता है? यदि उसने आज बहिन को कुछ देदिया और उसके कुछ माह बाद बहिन भूखों मर रही है उसके बाल बच्चे अन्न के लिए बिलख रहे हैं और भाई के पास अपार समृद्धि है, तो क्या वह भाई उस बहिन के दुर्भाग्य से संघर्ष करने के लिए अग्रसर होगा? क्या रक्षा के धागे की रक्षा करेगा? किसे क्या कहा जाय! समाज की इस दयनीय दशा पर तरस आती हैं.

भारतीय संस्कृति की रक्षा

आज भारतीय संस्कृति भारतवासियों के कर कमलों में रक्षा का धागा बांध रही है। त्योहार सूचित कर रहा है कि मैं भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व ले कर आया हूं। भारतवासियों! तुम चाहे किसी भी पोस्ट पर रहे हुए हों, चाहे धर्म के सिंहासन पर हों या राजस्थान या महाराष्ट्र के सिंहासन पर हों साधारण व्यक्ति हो या जनता द्वारा चुना हुआ बडा नेता हो, आप भारतीय संस्कृति के अन्न-जल से पले पुषे हैं, उसके दायित्व और महत्व को ले कर चलते हैं.

जनता भारतीय संस्कृति का रक्षा सूत्र, जिनके पास भेजती है उन सबका रक्षाबंधन हो जाता है। भारतीय जनता की रक्षा का उत्तर-दायित्व सारे भारतवासियों पर आ जाता है, चाहे वह हिन्दु हो, मुसलमान हो या और कोई हो, जिन्होंने भारतीय धरा का अन्न जल लिया है उसकी सुरक्षा के लिए उन्हे कटिबद्ध होना चाहिए, क्या भारतवासी इस भारतीय संस्कृति की सुरक्षा के लिए तत्पर हैं?

मैं किसको क्या कहूं, आप जितने यहां बैठे हैं उनको संकेत करता हूं. यदि आप ठीक समझते हैं तो भारतीय धरती पर आज जो हिंसा हो रही है. कत्लखाने चल रहे है. मुर्गी उद्योग चल रहे है, मच्छी उद्योग चल रहे है. अंडों का प्रचार हो रहा है, यह सब भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल है. मानव जाति के लिए हितावह नहीं है. ये संस्कृति के लिए खतरा पहुंचाने वाली प्रवृत्तियां है.

संस्कृति की दयनीय दशा

वैसे ही पाश्चात्य संस्कृति के संस्कार स्कूल, कालेजों के माध्यम से भरे जा रहे है. जो भारतीय जमीन पर पले पुषे है, फिर भी पाश्चात्य संस्कृति में बह रहे हैं उनको सोचना है—वे परतंत्र है और पाश्चात्य संस्कृति से ओत प्रोत हो रहे है, यह बहुत बडा आक्रमण है हमारी संस्कृति पर। यह बहादुरशाह के आक्रमण से भी बढकर है. यह इस प्रकार का आक्रमण है कि भीतर के संस्कारों की दृष्टि से भारतीय संस्कृति को समाप्त करने की कोशिश की जा रही है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक भारतीय को वीरता दिखानी चाहिए। उसकी रग रग में अहिंसा एवं संस्कृति का बहनेवाला खून ठंडा नहीं पडना चाहिए। युवा वर्ग में संस्कार जगने चाहिए।

आज इस भारतीय संस्कृति की दयनीय दशा हो रही हैं। यह संस्कृति किसी व्यक्ति, जाति, पार्टी की नहीं है। यह संपूर्ण विश्व को विश्व शांति का अमोघ संदेश देनेवाली है। किंतु आज यह निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति खतरे में पडी है। उस पर आधुनिक वासियों का खतरा बढ रहा है. वे जमाने के नाम पर इन्हे नोचने की कोशिश कर रहे है। जैसे द्रोपदी का चीर हरण करने के लिए दुशासन आया था। आज उसी तरह के कई व्यक्ति खडे हो गये है। वे कह रहे है कि रुढीवाद को समाप्त करो, जो युग के साथ नही बदला वह टिक नहीं पायेगा। आज जैन संस्कृति एक सीमित क्षेत्रीय दायरे में ही रह गई है, अतः हमें प्रचारक बन कर इसे सर्वत्र फैलाना चाहिए। भावुक जनता उन आधुनिकों की भावना में बह रही हैं। निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कति में पले पुषे व्यक्ति भी आधुनिकता के वायुमंडल में बह रहे हैं। भौतिकवादियों के साथ इस संस्कृति को नीचे गिराने का प्रयास कर रहे हैं। उन महानुभावों को मेरा परामर्श है कि वे रुढिवाद एवं प्रगति वाद को ठीक से समझ तो लें। क्या संस्कृति के मूल को तहस–नहस करके संस्कृति का प्रचार करना प्रगति वाद है? समय एवं प्रचार के नाम पर मौलिक सांस्कृतिक मूल्यों को विकृत कर देना प्रगति है? रुढिवाद का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम मूल सिद्धांतों पर स्थिर न रहें. यदि हम रुढिवाद के परिवर्तन की ओट में मूल सिद्धांतों को तोडते जावें तो यह प्रगति है या अवनति? क्या वे यह नहीं समझते कि ऐसा करते हुए वे अपना ही अवमूल्यन नहीं कर रहे हैं, अपितु भारतीय संस्कृति की प्राणरुप संस्कृति का अवमूल्यन कर रहे हैं। इसका परिणाम क्या होगा, यह तो भविष्य ही बतायेगा। मैं भी निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की अनुछाया में पलनेवाला एक साधक हूं। आपको कर्तव्य की दृष्टि से संकेत दे रहा हूं। आप रक्षा बंधन का महत्वपूर्ण संकेत समझें.

संघ प्रमुखों के दायित्व

एक दृष्टि से देखा जाय तो निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के उपासकों की संख्या इस बंबई महानगरी में बहुत अधिक है. यहां ३२ संघ बने हुए है। महा संघ के प्रमुख एक रोज आये थे गिज्जुभाई, डाक्टर छाडवा साहब भी संघ प्रमुख हैं। संघ के अगुवा के नाते इस संस्कृति को आगे बढाने का इनका कर्तव्य है। ३२ संघो में से और भी कुछ आये थे। श्रमण संस्कृति बहिन आप सभी प्रमुखों को रक्षा बांध रही है और कह रही है कि वीरा हमारी रक्षा करो. बंबई महासंघ के सभी संघो के प्रमुख यदि इस संस्कृति के लिए अपना कर्तव्य संभाले, तो सहज ही इसकी सुरक्षा हो सकती है। आज पाश्चात्य संस्कृति, भौतिकवादी—अवसरवादी राक्षसी प्रवृत्ति इस संस्कृति को तहस नहस कर रही हैं। महासंघ के नेता यदि कान में तेल डाल कर सोते रहे, तो क्या स्थिति होगी, यह तो समय बतायेगा क्या कहुं. हुमायूं, जाति का मुसलमान था। लेकिन जाति भाइयों से लडने गया था और धर्म बहिन की रक्षा की थी। क्या महासंघ के महानुभाव ईस संस्कृति की रक्षा करने के लिए आगे आयेंगे। मैं जिस रोज यहां आया था उस रोज भी मैंने आप लोगों को आगाह किया था, शायद उस समय उनके मन में विशेष हलचल नहीं हुई। इस संस्कृति की रक्षा के लिए आप पर उत्तरदायित्व है. अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वहन नहीं किया तो क्या पता क्या स्थिति बनेगी.

अभी तो आपको कुछ वाह वाही प्रसिद्धि मिल जायगी कि हमारे अध्यक्ष अच्छे हैं. लेकिन वह वाहवाही टेंपरेरी है, यह रिश्वत है। रिश्वत दे कर संस्कृति को नीचे गिराने का प्रयास है। आप हुमायूं की तरह इस संस्कृति की रक्षा करें. यह बहिन राखी बांधती है तो भाई प्राण एवं यश किर्ति की परवाह नहीं करके रक्षा करता है.

मैं इस महानगरी के प्रतिनिधियों के माध्यम से सारे हिंदुस्तान के जैन समाज को संबोधित कर रहा हूं. वह चिंतन मनन करें और निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की रक्षा करने के अपने कर्तव्य में सक्रिय बनें. प्रमुख को बहुत कुछ ध्यान रखने की आवश्यकता है। मैं समझता हुं कि यहां पर महासंघ के प्रमुख नहीं बोरीवली संघ प्रमुख डाक्टर साहब आये हुए है। मैंने भावनगर में इनके विचार सुने थे. रतलाम में भी दीक्षाओं के प्रसंग पर उपस्थित हुए थे। इन्हें निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति से प्रेम है। अतः इनके माध्यम से मैं सभी को संबोधित कर रहा हूं।

डाक्टर साहब गरीजों को रोजाना संभालने की कोशिष करते है। लेकिन उन पर शरीर का ही उत्तरदायित्व नहीं है, उन परऔर भी अधिक ऊत्तरदायित्व है। जिनको आप वंदनीय पूजनीय मानते है उनको आप सम्मान के साथ उपर रखें और उनसे कहें कि आप अपनी मर्यादा के अनुसार सीमा में रहें, बाकी काम हम करेंगे जैसे शरीर का काम करते हैं वैसे ही आध्यात्मिक दृष्टि से अपने कर्तव्य का पालन तन मन से करेंगे. डाक्टर साहब के साथ जो दो सज्जन आये हैं उनमें से एक प्रिंसिपल और एक प्रोफेसर हैं. ऐसी स्थिति में यह कार्य और भी सुगम हो गया। भारतीय संस्कृति के प्रति उनका भी उत्तरदायित्व है, कालेज में पढने के लिए आनेवाले बच्चों के अंदर उनकी रग रग में संस्कृति के अनुरुप भाव भरें! ऐसी संस्कृति आपको दुनिया में और कहीं नहीं मिलेगी। यदि आपको शांति की श्वांस लेनी है तो इसी की शरण में आना पडेगा पाश्चात्य संस्कृति में पलनेवाले उच्चस्थिति के वैज्ञानिक भौतिकवाद को गौण करके आध्यात्म की ओर बढ रहे है. रुस के बहुत बडे वैज्ञानिक फायदो ने अपने मन के जरिये मन के संदेश का संप्रेशन १५,०० मील की दूरी पार बैठे मनुष्य के मन में तरंगित किया. आगे चल

कर यदि यह रफतार बढी तो यह मनोविज्ञान–टेलिपेथी वेतार, टेलिफोन टेलिविजन आदि सब को पीछे छोड देगा. भारतीय संस्कृति में बढनेवाले वैज्ञानिकों को भी आगे बढना है या नहीं ? पाश्चात्य संस्कृति में पलनेवाले वैज्ञानिक खोज करते करते यहां तक पहुंचे हैं। यदि उनका संतुलन ठीक चला तो नास्तिक कहलाने वाले कैसे आगे बढ जायेंगे ? आस्तिक कहलानेवाले यदि कान में तेल डाल कर सोये रहे तो सोते ही रह जायेंगे। संत लोग कभी कभी उदाहरण देते हैं।

एक पुरुष अपनी वीरता और सजगता की डींग हांका करता था। मैं ऐसा हूं। वैसा हूं। उसकी पत्नी भी उसकी तारीफ किया करती थी। एक रोज उसके मकान में चोरोंने प्रवेश किया। उसकी पत्नीने कहा "पति देव, मकान में चोरों ने प्रवेश कर दिया है।" पतिने कहा उनको प्रवेश करने दो मैं जग रहा हूं। सावचेत हूं। "पत्नीने कहा–" पति देव, चोर अपना माल और सामान उठा रहे हैं। "उसने कहा "उठाने दो मैं जागृत हूं।" पतिदेव वे सामान उठाकर जा रहे है। "जाने दो, मैं सावधान हूं। वे सामान ले कर चले गये।" जाने दो मैं सावधान हूं। इस बहादुरी और सावधानी सें क्या रहा। कहीं यही स्थिति तो समाज के कर्णधारों की नहीं है ? क्या संस्कृति लुप्त हो जायेगी तभी वे उठेंगे ? नहीं ऐसा नहीं होना चाहिए, पानी आने से पहले पाल बांध लेनी चाहिए।

इस संस्कृति की रक्षा कैसे होगी ? इसका उत्तरदायित्व सब पर है। कालेज के प्रिंसिपल और प्रोफेसरों पर तो और भी अधिक दायित्व है। वे युवा पीढ़ी को संस्कारित करें। आज युवकों एवं बालकों की क्या स्थिति है ? वे किस दिशा में जा रहे है। उनमें किन संस्कारों की आवश्यकता है ? यह अतीव विचारणीय विषय है। यदि हम अभी से संस्कारों की दृष्टि से सावधान नहीं होंगे तो

आनेवाले समय में हमारी संस्कृति की रक्षा बहुत मुश्किल हो जायेगी। मैं आशा करता हूं कि वे लोग अपना कर्तव्य सोचेंगे। समय की दृष्टि से समाज प्रमुखों को सावधान होना चाहिए।

मैं रक्षा बंधन के प्रसंग से वात कह रहा हूं। यह पर्व भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। इसको अंतर हृदय से समझें, यह बाहरी धागा केवल धागा ही नहीं है, इसका गौरवपूर्ण इतिहास है। इसको हम समझ कर चलेंगे तो जीवन मंगलमय वन सकता है।

मैं भी भारतीय निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का एक अनुयायी हूं। मेरा कर्तव्य है, मेरे भाई और साथियो को मित्रवत् सही मार्ग दर्शन देना, इस वारे में बहुत कुछ कह गया हूं। कालेज के प्रिंसिपल, प्रोफेसर, विद्यार्थी ये सव जनता का प्रतिनिधित्व ले कर चलते हैं। समाज के जो मुखिया है। जन सेवा, समाज सेवा करने वाले जो भी हैं, उन सबको अपने अपने स्थान पर रहते हुए ठीक तरह से चिंतन मनन करने की आवश्यकता है।

महासती कस्तूरकंवर जी तप के द्वारा अपनी आत्म शुद्धि करने में लगी हुई है। उनके परिवार के सभ्य भी आ गये है। अमरमुनि जी के पांच भ्राता है उनमें से उनके दो वडे भ्राता यहां आये हैं। अमर मुनि जी के पुत्र और पौत्र जो महासती जी के संसार पक्ष के पुत्र और पौत्र है वे भी आये हैं। इनके परिवार के लगभग १३ सभ्य परिवार से निकल कर इस पवित्र मार्ग पर लगे हैं। महासती जी के आज ४७ तपस्या है। इन्हीं के परिवार की दूसरी महासती के ३० की तपस्या है। अन्य संत संतियों की भी तपस्या चल रही है। इसी तरह से भाई वहिनों के भी तपस्या चल रही है। तपस्याएं आत्मशुद्धि के लिए चल रही है न कि किसी राजनीतिक

मांग के लिए । आप भी इस तपोत्सव में सम्मिलित हो कर इतना तो अवश्य करे कि निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का अवमूल्यन हो ऐसा कार्य नहीं करेंगे । अगर इतना सा संकल्प जागृत हुआ तो समजिये रक्षा बंधन मनाना सार्थक हो जायेगा ।

(इति)

दिनांक ११-८-८४
बोरीवली, (पूर्व) बंबई

परिशिष्ट (१)

卐

समाधान

卐

रविवार के प्रश्नोत्तर

अध्यात्म संबंधी युगीन जिज्ञासाओं के तर्क संगत समाधान समता विभूति समीक्षण ध्यानयोगी धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. द्वारा.

—संपादन

दो शब्द

जिज्ञासा मानव मन का केंद्रीय भाव हैं। विश्व के नूतन एवं पुरातन समस्त तत्वों–पदार्थों–दृश्यों एवं विभिन्न क्रिया कलापों–विधि विधानों को देखकर प्रत्येक चिंतन शील प्राणि के मानस में सहज संख्यातीत जिज्ञासाएं प्रादुर्भूत हो जाती हैं कि ऐसा क्यों होता है ? यह सब किस लिए–किस प्रकार के हैं ? इनका उद्देश्य क्या है, आदि.

उसमें भी अध्यात्म जगत तो जिज्ञासा का केंद्र ही है, चूंकि अध्यात्म दर्शन अथवा अध्यात्म शास्त्र हमें जीवन की चली आ रही रूढ़ परंपराओं से एक अलग ही–स्वस्थ दिशा की ओर गति देता है, अतः उसके विषय में अधिक जिज्ञासाओं का उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है.

जीवन स्वयं ही एक जटिल पहेली है, उसमें भी अध्यात्म–दर्शन तो सामान्य जनमानस की पहुंच से दूर होने के कारण जटिलतम पहेली बना ही हुआ है, फिर इसके सूक्ष्मतम विधि–विधान आज के आम व्यक्ति की समज में जल्दी से नहीं आते हैं, विज्ञान की नूतन आविष्कृतियों ने तो अध्यात्म साधना एवं पुरातन मान्यताओं पर बड़े–बड़े प्रश्नवाचक चिह्न खड़े कर दिये हैं.

ऐसी स्थिति में यह नितांत आवश्यक है कि कोई अध्यात्म दर्शन का तल स्पर्शी अध्येता एवं गूढ़ व्याख्याता आज के युवा मानस में स्फूरित होने वाली विविध आयामी जिज्ञासाओं का तर्क संगत ही नहीं, विज्ञान सम्मत समाधान प्रस्तुत कर धर्म से विचलित होती हुई इस नई पीढ़ी को अध्यात्म की स्वस्थ दिशा प्रदान करें.

अतीव हर्ष का विषय है कि भारतीय दर्शनों के उच्च कोटि के विद्वान एवं प्रखरतम वाग्मी समता–विभूति जैनाचार्य श्री नानालाल जी म. सा. ने इस विषय में पहल की है, आचार्य प्रवर ने अपने बंबई आगमन के दिवस ही जिसमें बंबई महासंघ के अध्यक्ष आदि गण मान्य सज्जन उपस्थित थे, स्वागत समारोह के उत्तर देते हुए

स्पष्ट शब्दों में उद्‌दीप किया था कि मैं बंबई महानगरी में समाज के प्रबुद्ध चेता कर्मठ बुद्धिजीवियों से संपर्क का दृष्टि कोण भी लेकर आया हूं, बंबई महासंघ ख्याति प्राप्त संघ है, यहां के कार्यकर्ता बुद्धिजीवी है, वे खुले दिल दिमाग से समाज उत्थान एवं श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के संदर्भ में खुलकर चर्चा करें और शुद्ध सैद्धांतिक धरातल पर भावात्मक एकता के प्रयास करें, इस आव्हान को सातत्य प्रदान करने हेतु आचार्य श्री ने बंबई महानगरी के समस्त अध्यात्म प्रेमी बुद्धिजीवियों को खुला आव्हान किया है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की जिज्ञासा लेकर उपस्थिति हो, उसे तर्क संगत समाधान देने का प्रयास किया जायेगा, और रविवार दिः ५ एवं 22-7-84 को प्रश्नोत्तरी का कार्यक्रम प्रातः ९-30 से 11-30 बजे तक आयोजित किया गया, उन्हीं प्रश्नोत्तरों के संकलन-संपादन का यह विनम्र प्रयास है।-

शांति मुनि

प्रश्न आपके – उत्तर आचार्य श्री के

15–7–84
बोरीवलि

प्रश्न. 1.: जिज्ञासु श्री पन्नालालजी चोरडिया:

कच्चे पानी में असंख्य जीव बताये गये हैं, किंतु धोवण पानी और गर्म पानी में जीव नहीं होते–यह कैसा माना जाये?

उत्तर: प्रश्न बहुत सुंदर और व्यावहारिक है, इसे हर व्यक्ति को समझने की आवश्यकता है, अतः कुछ विस्तृत उत्तर अपेक्षित है, यह जो पानी बरस रहा है यह सब कच्चा पानी है, तालाब में, नदी में, टैंक में, समुद्र में, कुए में जो पानी है, वह सब कच्चा पानी है, इस कच्चे पानी में असंख्य जीव माने गये हैं, असंख्य शब्द की आगमिक परिभाषा यह है कि जिसकी गिनती नहीं की जा सके, इस कच्चे पानी में एकेंद्रिय जीवों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के जीव भी पाये जाते हैं, एकेंद्रिय असंख्य जीव तो हैं ही, बेइंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, पांच इंद्रियवाले जीव भी होते हैं और लीलन फूलन के जीव भी होते हैं.

कल्पना करिये एक घड़ा कच्चे पानी से भरा हो उसमें उपर्युक्त वर्ग के जीव पाये जाते हैं, एकेंद्रिय जीव इतने कोमल है कि घड़े में एक बार गिलास डालेंगे तो कुछ जीव गिलास के स्पर्श से मर जाते है और सारे पानी को हिलाने, चलाने से भी अनेक जीव मर जाते हैं। पानी के उस घड़े में जितने जीव हैं वे सब नहीं मरे फिर भी उन्हें कष्ट तो हुआ ही, अतः उन सबकी हिंसा का पाप आपको लगा, दुबारा और तीबारा पानी में गिलास डाली या जितनी बार गिलास डाली या हाथ डाला उतना उतना पाप हर समय लगेगा, क्योंकि कच्चे पानी में पुनः पुनः जीवोत्पत्ति होती रहती है.

अब रहा प्रश्न धोवण और गर्म पानी का, इसे अचित पानी कहते हैं. कच्चे पानी के जीव कोमल हैं और उनके साथ–साथ कुछ सख्त चलते फिरते जीव भी हैं, आप कल्पना करेंगे कि कच्चे पानी

में इतने जीव हमें दिखते कहां है, ? किन्तु पानी में अंगुली डाल कर बाहर निकालेंगे तो अंगुली गीली दिखती है, और कुछ नहीं दिखता, लेकिन अंगुली से एक टीपा (बूंद) पानी नीचे आया तो खोज करने वाले वैज्ञानिकों ने सूक्ष्मदर्शक यंत्र लगाकर देखा, उनको सैंकडों जीव नजर आये, उन्होंने उन जीवों की फोटो ली तो 36450 जीव एक बूंद में पाये गये, यह वैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्यक्ष हो गया, यह गणना तो चलते फिरते प्राणियों की है, एकेंद्रिय जीव तो गिनती में ही नहीं आते, ये सभी जीव कच्चा पानी पीने वालों के पैट में जाते हैं, पानी छान कर पीते हैं तो कुछ बच जाते हैं–अन्यथा सभी जीव पीने वाले के पेट में जाते हैं और कई प्रकार की वीमारियां पैदा करते हैं, शरीर में अनेक रोग घर बना लेते हैं, कोई धार्मिक दृष्टि से नहीं समझते हैं तो भी विना छाने पानी नहीं पीना चाहिए, जब बीमार हो जाते हैं तो डाक्टर कहते हैं कि पानी उवला हुआ पीना चाहिए, मैं जव नोखा में था, वहां पोलियो की वीमारी वहुत फैल गई थी तब सरकार की ओर से घोषणां हुई कि सब उबला हुआ पानी पीएं.

पानी के जीव कोमल होते हैं किसी प्रकार का कठोर या क्षार युक्त स्पर्श होने से वे मर जाते हैं, राख से वर्तन मांजे–पानी से छीये, वेसन, आटा, दूध आदि का स्पर्श होने पर वे नष्ट हो जायेंगे, ऐसी स्थिति में वह पानी अचित हो जायेगा, गर्म पानी करने के लिए पानी को उबालते हैं तो चलते फिरते और दूसरी प्रकार के सभी जीव नष्ट हो जाते हैं, फलतः वह पानी भी अचित हो जायेगा, एक बार तो हिंसा हो गई, पाप लग गया अब उस पानी में गिलास पचास वार भी डालेंगे तो पानी संबंधी जीवों का पाप नहीं लगेगा क्योंकि वह जीव रहित हो जाता है, यहां यह जिज्ञासा हो सकती है कि धावन पानी अथवा गर्म पानी में जीव नहीं रहे, किंतु उसमें हिंसा तो हो ही गई, फिर हिंसा के दोष से कैसे बचा जाय ?

इस जिज्ञासा का समाधान यह है कि धोवन पानी प्रत्येक घर

अर्थादण्ड–सप्रयोजन है, किंतु एक गिलास पानी व्यर्थ में गिरा दिया तो वह अनर्थादंड का अधिक पाप का कार्य हो जायेगा,

प्रश्न 3 (अ) एकेंद्रिय जीवों मारने पर और पंचेंद्रिय जीवों को मारने पर एक सरीखा पाप लगता है या अलग अलग ?

उत्तर : अलग अलग. एकेंद्रिय जीव की हिंसा के पाप में और पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा के पाप में अंतर है.

प्रश्न 3 (ब) : कितना अंतर है ?

उत्तर : संकल्प पूर्वक की जाने वाली पंचेंद्रिय जीवों की हिंसा में महान पाप लगता है, किंतु एकेंद्रिय जीवों की हिंसा में पंचेन्द्रिय जितना पाप नहीं लगता है....इस विषय को समझाने के लिए कुछ विस्तार में जाना होगा, हिंसा का अर्थ है किसी प्राणी का हनन करना, "प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा, ।" जैन दर्शन में दस प्राण बताये गये हैं –पांच इंद्रिय, मन, वचन, काया, श्वासोच्छ्वास और आयु, इन दस में जिस प्राणी के जितने कम प्राण हैं उसकी हिंसा में अपेक्षाकृत उतना कम पाप लगता है। एकेंद्रिय के चार प्राण है और पंचेंद्रिय के दस, अतः एकेंद्रिय की हिंसा में अल्प पाप है और पंचेंद्रिय की संकल्पजा हिंसा में महापाप.

इसे एक व्यावहारिक रूपक से समझें–एक व्यक्ति किसी ग्रामीण को चांटा मार देता है तो उसे क्या सजा मिलेगी ? वह ग्रामीण दो चार गाली दे देगा। किंतु उसी व्यक्ति ने किसी नगर पालिका के चेअरमेन को, मिनिस्टर, चीफ मिनिस्टर अथवा प्राईमिनिस्टर को चांटा मार दिया तो क्या होगा ? उसकी सजा का अनुपात उसी क्रम से बढता जायेगा, यद्यपि उपर्युक्त सभी व्यक्ति मनुष्यत्त्व की दृष्टि से समान है, किंतु उनकी योग्यता–प्रतिनिधित्व में बहुत अंतर है। इसी प्रकार जीव–जीव के समान होते हुए भी एकेंद्रिय एवं पंचेंद्रिय की हिंसा में महान अंतर है।

प्रश्न 4 : यदि पंचेंद्रिय जीव की रक्षा करने के लिए असंख्य

छोटे जीवों को मारने का प्रसंग आता है, तो उसको पाप लगा या नहीं ? एक मरते हुए मनुष्य को पानी पिलाया तो क्या होगा ?

उत्तर : पंचेंद्रिय जीव की रक्षा करने के लिए किसी ने अनेक छोटे जीव मार दिये किंतु उसकी भावना पंचेंद्रिय जीव की रक्षा करने की थी–मारने की नहीं. लाचारी वश जो साधन उसने काम में लिए उससे छोटे जीव मर गये. प्रथम तो कल्पना करिये पक्का पानी पिला दिया. रोटी खिला दी. तो इसमें जीव मारने का प्रसंग नहीं आया. कदाचित् किसी ने कुछ पानी पिला दिया, उसमें जीव मर गये, लेकिन पंचेंद्रिय जीव की रक्षा तो उसने की, इसमें उसे अल्प पाप लगा किंतु पंचेंद्रिय की रक्षा का महान लाभ मिला. क्योंकि गृहस्थ में रहने वाले व्यक्ति की आरंभ जनक हिंसा तो खुली ही है. वह हिंसा नहीं कर रहा है तब भी उसके पाप की क्रिया उसे आ रही है. अब यदि उसने उसी लगते हुए पाप में से किसी पंचेंद्रिय की रक्षा कर ली तो पुण्य कमा लिया.

एक छोटा सा रूपक दूं यह बंबई शहर है, इसमें एक व्यक्ति को बंबई में शादी करनी है. शादी ६ महिने बाद होनेवाली है. लेकिन बंबइ में शादी करने लायक सार्वजनिक स्थान जल्दी से नहीं मिलते हैं । इसलिए उस व्यक्ति ने देखा कि ६ महीने पहले ही, आज जो मकान मिल रहा है उसका बुकिंग कर लूं, यह सोच कर उसने शादी लायक मकान किराये पर ले लिया। उसका किराया चार हजार या पांच हजार जो कुछ भी था, जिस रोज बुकिंग कराया उसी रोज से चालू हो गया.

इसी बीच उसके पड़ोसी ने आकर उससे कहा कि आपके बच्चे की शादी तो ६ माह बाद होनेवाली है, मेरी लड़की की शादी कल ही है और दूसरा मकान मिल नहीं रहा है आप कृपा करके आप द्वारा किराये पर लिया हुआ मकान दो दिन के लिए मुझे दे दीजिए.

आपने दया करके, शुभ भावना रख कर या उसका प्रेम संपादन करनेके लिए दो रोज के लिए पड़ोसी को मकान दे दिया,

तो आपको इसके लिए नया किराया नहीं देना पड़ा. उसी चा
किराये में आपने पड़ोसी का प्रेम संपादित कर लिया.

अब कल्पना करिए कि दो रोज तो वे निकल गये और शेषका
में कोई महात्मा इधर पधार गये, दूसरे मकान की स्थिति नहीं थी. सं
के मुखिया व्यक्ति, जो आपके साधर्मी थे उन्होंने आपके पास आ क
कहा कि कोई महात्मा पधार रहे हैं उनको ठहराने के लिए तथ
हमारे धर्म की आराधना के लिए २९ रात्रि के लिए आपका चाहिए
आपने धर्म कार्य के लिए महीने भर के लिए मकान उनको दे दिया
तो क्या आपको नया किराया लगा ? नहीं लगा. और आपने
धार्मिक लाभ उठा लिया.

अब ऐसी स्थिति आ गई कि स्थिति आ गई कि एक बड़े
आचार्य का चातुर्मास यहां खुल गया. संघ के प्रमुख लोग फिर
आपके पास आये और कहने लगे कि संतो का चौमासा कराना
है- चार महिनों के लिए मकान दीजिए। आपने संतों के लिए मकान
दे दिया। आपका किराया चालू ही था।

अब सोचिये उसी चालू किराये में आपने पडोसी का प्रेम
संपादित कर लिया, शेष काल में संतो को ठहराने का लाभ ले
लिया, और संतों का चातुर्मास करवा कर साधर्मी भाईयों को खुश
भी कर दिया.

वैसे ही गृहस्थाश्रम के व्यक्तियों के लिए भगवान् ने अहिंसा
व्रत में बताया है- निरपराधी, निरपेक्ष चलते फिरते प्राणी की संकल्प
पूर्वक हिंसा नहीं करना जो। व्यक्ति आपका अपराध नहीं कर रहा है,
निर्दोष है उसको नहीं मरना। वैसे ही पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय,
वायुकाय, वनस्पतिकाय के छोटे छोटे जीव, खेती करते हैं तो
खेती करने में मरनेवाले जीव, अनजान में मर जाते हैं तो
उनकी हिंसा आपके लिए खुली है- जैसे चालू किराये का चक्का
चालू है उसी तरह से छ काय के जीवों की हिंसा चालू है.
उसी चालू हिंसा में यदि आपने मरते हुए मनुष्य को पानी

पिलाया तो आपकी हिंसा तो चालू है वही है। कच्चे पानी की हिंसा चालू थी ही, लेकिन उस पंचेंद्रिय जीव की रक्षा करने का अतिरिक्त लाभ हो गया. नये सिरे से हिंसा नहीं हुई. अभी आप यहां बैठे हैं कुछ भी काम नहीं कर रहे हैं फिर भी आपको हिंसा लग रही है. विवेक करके त्याग करते तब तो बात अलग थी– जितनी हिंसा खुली है उसका पाप आपको लगता ही है। अतः पानी पिलाने में नयी हिंसा का पाप नहीं लगा।

प्रश्न 5. जिज्ञासु कमल खिवेसरा :

साधु सचित नहीं ले सकता–किंतु दीक्षा देते समय सचित शिष्य को कैसे ग्रहण करते हैं ?

उत्तर : सचित–सचित में अंतर है. एक सचित ऐसा है. जिसके हाथ लगने से वह मर जाता है. दूसरा हाथ लगने से कष्ट पाता है. एक ऐसा है, जो हाथ लगने से आनंद का अनुभव करता है. समझ लीजिए आप सचित हैं– आप यह समझते होंगे प्रणाम करने पर पिताजी आपके सिर पर हाथ रखें तो आप खुश होंगे या नाराज होंगे ? जो खुशी का कार्य है उससे वर्ष होता है. अब रहा सवाल साधु बनने का. साधु कौन बनता है ? जो अपना आत्म कल्याण करना चाहता है वही गुरु के पास पहुंचता है या जबर्दस्ती किसी को बुलाया जाता है ? जो दीक्षा लेना चाहता है उसको जब तक दीक्षा नहीं दी जाती तब तक वह मन ही मन दुखी होता रहता है. दीक्षा पचकाने पर प्रसन्न हो जाता है. जो संसार में रहेगा वह अनंत अनंत जीवों का संहार करेगा। दूसरी बात, जब तक उसके संरक्षकों की आज्ञा नहीं होती तब तक उसे दीक्षित नहीं किया जाता है. संरक्षक कहते हैं कि इसे आप अपने चरणों में ग्रहण करो, तभी उसे अहिंसक सेना में भर्ती किया जाता है। वह हाथ लगाने से अत्यंत प्रमोदितो होता है. अतः दीक्षा देकर सचित शिष्य को ग्रहण करना हिंसा नहीं, अहिंसा की उच्चत्तम आराधना है.

प्रश्न 6. जिज्ञासु महेंद्र जी मेहता :

ज्ञान बड़ा है, फिर क्यों पुरुष साधु ऊपर बैठता है और साध्वियां नीचे बैठती हैं, जब कि कई साध्वियां कई साधुओं से अधिक 'विद्वान' होती हैं ?

उत्तर : ज्ञान दो तरह के हैं—एक भौतिक ज्ञान और दूसरा आध्यात्मिक ज्ञान, इस आध्यात्मिक ज्ञान के भी दो प्रकार हैं—एक चारित्र के साथ परिपक्व हुआ ज्ञान और दूसरा बिना चारित्र के केवल मस्तिष्क से—बुद्धि से होने वाला ज्ञान. संभव है, एक विद्वान में ज्यादा हो ! एक दिन के दीक्षित साधु में उतना ज्ञान नहीं होता, किंतु एक गृहस्थ में रहनेवाला विद्वान 32 शास्त्रों का ज्ञान साधु को करवाता है, तो क्या वह साधु उस पंडित को नमस्कार करेगा अथवा अपने से ऊपर बिठायेगा ? क्यों नहीं बिठायगा ? जब कि ज्ञान बड़ा है ? इसलिए नहीं बिठायगा कि वह चरित्र संपन्न नहीं है । आचरण से बड़ा-छोटा होता है. आचरण में भी विवेक हो लेकिन आचरण ऊंचा और ज्ञान नीचा होने पर भी जिसका पद ऊंचा होता है उस दृष्टि से उस व्यक्ति को महत्व दिया जाता है,

आप कल्पना करिये कि एक पुरुष भतीजे के पद पर है और एक पुरुष चाचा के पद पर है. चाचा के पद पर रहनेवाला 10 वर्ष का है—उसमें विवेक नहीं, ज्ञान नहीं, भतीजा 25 वर्ष का है सामायिक, प्रतिक्रमण जानता है, आचरण की दृष्टि से भी भतीजा बड़ा है लेकिन नमस्कार कौन करेगा ? भतीजा करेगा. क्यों दूसरा काका के पद पर है ! पद की दृष्टि से नमस्कार होता है और उसी दृष्टि से ऊपर नीचे बैठने का प्रसंग आता है,

दूसरा उदाहरण लें—एक बहू करीब 50 वर्ष की है और 35 वर्ष की अवस्था में उसने शील व्रत ले लिया है, पति पत्नी भाई बहन की तरह रहते हैं. वह खूब तपस्या करती है. उसकी सासू जी 60 या 62 वर्ष की है. सासु जी काल कर गई. ससुरजी से रहा नहीं गया, इसलिए 16 वर्ष की लड़की के साथ शादी कर ली. वह 16 वर्ष की

बहिन कुछ नहीं जानती है. मूर्ख है, क्योंकि ऐसे बुड्ढे को तो वैसी ही स्त्री मिलेगी. शादी करके ससुरजी उसको घर में ले आये. अब कौन पगे लगेगी या नमस्कार करेगी ? वह तो इतनी ज्ञानवान और चारित्र संपन्न है तथा उम्र में भी बड़ी है किंतु फिर भी उम्र में छोटी सास के पगे लगेगी, क्योंकि सास का पद बड़ा है.

एक पिता के पहले पुत्र का जन्म हुआ फिर पुत्री का फिर पुत्र का और फिर पुत्री का तो बड़ा कौन हुआ ?

कल्पना करिये भगवान महावीर हम सबके पिता हैं, उन्होंने चार तीर्थों की स्थापना की. सबसे पहले उन्होंने साधु पुत्र को जन्म दिया और बाद में साध्वी को, फिर श्रावक को और उसके बाद श्राविका को. इस दृष्टि से साधु बड़ा हुआ इसलिए साध्वियां चाहे ज्ञान में बड़ी हैं, चारित्र में बड़ी हैं, लेकिन भगवान ने पहले साधु को जन्म दिया. इसलिए साधु ऊपर बैठते हैं. पद संबंधी विवेचन में एक और उदाहरण लीजिये । पांच सौ या हजार साधु हैं, जो एक आचार्य के नेतृत्व में हैं–सभी उनकी आज्ञा में चलते हैं, वे आचार्य उन सभी संतों पर दृष्टि डालते हैं; कि कौन उनका उत्तराधिकारी आचार्य बनने योग्य है. कई पुराने साधु हैं जो 50-60 वर्षों से संयम पालन कर रहे हैं, फिर भी उनमें से एक भी साधु उनका उत्तराधिकारी बनने योग्य आचार्य की दृष्टि में नहीं आया. एक साधु एक दिन का दीक्षित है—आचार्य ने देखा कि यह योग्य है. हालांकि ज्ञान में औरों से कम है. लेकिन ज्ञान तो सीख लेगा. आचार्य पद की क्षमता इसमें है, इसलिए उसको अपना उत्तराधिकारी बना लिया. अब आप ही बताइये हजार साधुओं में बड़ा कौन हो गया ? यहां योग्यता के साथ पद का महत्त्व होता है ।

अमेरिका की एक बहुत बड़ी महिला जिसकी ख्याति दुनियां में है. उसने कहा है कि बहिनों को पुरुषों के समान अधिकार की बात नहीं सोचनी चाहिए. पुरुष का हमसे ज्यादा असर है. चाहे वह अर्थ की दृष्टि से समान हो सकती है. लेकिन शरीर की संरचना की दृष्टि

से नारी का स्थान पुरुष से दूसरा है. यह आज की पढी लिखी महिला का कथन है.

पशु जगत में भी बंदरों का टोला होता है, वह एक नर बंदर, जो उनका लीडर होता है, उसके अंदर में रहता है और उसका अनुशासन मानता है. यह कुदरत की संरचना है. इसी प्रकार शारीरिक दृष्टि से भी स्त्री को द्वितीय स्थान ही प्राप्त होता है. नारी पर बलात्कार हो सकता है. पुरुष पर नहीं. क्योंकि उनकी शरीर रचना ही दूसरी प्रकार की है. ऐसे अनेक दृष्टियों से यह सिद्ध होता है कि नारी को द्वितीय स्थान ही प्राप्त होता है.

प्र. 7 : जिज्ञासु प्रीति घाडीवाल :

प्रतिक्रमण का सार इच्छामि ठामि है, ऐसा क्यों ?

उत्तर : देखिये यह प्रश्न कॉमन नहीं है, सबकी समझ में आये जैसा नहीं है, लेकिन धाड़ीवाल ने पूछ लिया इसलिए मैं संक्षिप्त उत्तर दे रहा हूं. प्रत्येक क्षेत्र में विस्तार का संक्षिप्तिकरण होता है. दस नींबू का रस कितना होता है और सत्व कितना होता है ? तो जो विशाल होता है उसका संक्षिप्त रूप अवश्य होना चाहिए. प्रतिक्रमण का संक्षिप्त रूप ईच्छामि ठामि में हैं. क्योंकि इस एक छोटी सी पाटी में वह पूरा सार भर दिया है, जो पूरे विस्तृत प्रतिक्रमण में आता है.

प्रश्न 8. जिज्ञासु श्री सूरजमलीजी :

श्रावक के लिए भोजन का सिद्धांत क्या महत्व रखता है. श्रावक का भोजन कैसा होना चाहिए 2

उत्तर : श्रावक के लिए सात्विक भोजन होना चाहिए. सात्विक भोजन का तात्पर्य यह है कि महापाप का भोजन नहीं होना चाहिए. पंचेंद्रिय की घातवाला भोजन–मांस, माछली, अंडा आदि महापाप का भोजन है. यह श्रावक के लिए कतई अभिष्ट नहीं है, लेकिन जो अल्प पाप की स्थिति का प्रसंग है, श्रावक के लिए विशेषण है....वह अल्पा-

रंभी, अल्प परिग्रही होता है–खेती करनेवाला श्रावक अल्पारंभी होता है. श्रावक अपने जीवन निर्वाह के लिए कभी खेती भी करता है. आगम में उल्लेख है कि आनंदजी के पास 500 हलवा जमीन थी. एक हलवा में ढाई बीघा जमीन होती है, अतः वे 1250 बीघा जमीन में खेती करते या करवाते थे. खेती या वनस्पति से संबंधित आहार श्रावक के लिए निषिद्ध नहीं है. श्रावक मांस, मछली, अंडा आदि हिंसक एवं तामासिकता से रहित सात्विक आहार ग्रहण कर सकता है. इसमें यह विवेक भी आवश्यक है कि श्रावक का भोजन यथा शक्ति नैतिकता से उपार्जित हो.

प्रश्न. 9 : जिज्ञासु श्री धीरज कोठारी :

आज की दुनियाचांद या चंद्रमा से भी आगे जा रही है, तो आपने माइक पर बोलना क्यों वर्जित किया–आप माइक का प्रयोग क्यों नहीं करते ?

उत्तर : माइक के बारे में मैंने व्याख्यान में समझा दिया था. भाई कोठारी ने पुनः वही प्रश्न उठाया है–मैं बहुत खुश हूं, इसलिए कि युवकों में चेतना आई है.

भगवान ने दो तरह के मार्ग बताये–एक साधु मार्ग और दूसरा गृहस्थ मार्ग. गृहस्थ में रहनेवालों को पूर्ण हिंसा का त्याग नहीं है. उनके लिए निरपराध निरपेक्ष चलते हुए जीवों को संकल्प पूर्वक नहीं मारना, नहीं मरवाना, हिंसा का इतना ही त्याग.

लेकिन हमारे साधु जीवन के लिए भगवान ने निर्देश दिया है कि तुमको छोटे से छोटे और बड़े से बड़े जीव की हिंसा करनी नहीं, करानी नहीं और हिंसा करनेवालों को अच्छा समझना नहीं, मन से, वचन से और काया से । हमारे लिये कोई हिंसा खुली नहीं है । छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा जीव हमारे प्राण तुल्य है, आपेक्षिक दृष्टि से वह हमारे परिवार का सदस्य है चाहे वह पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल या वनस्पति का जीव हो. परिवार का सदस्य छोटा हो या बड़ा उनमें भेद की बात नहीं होती.

माइक बिजली से चलता है और बिजली में अग्निकायिक जीव होते हैं, उनका हनन हमारे लिये वर्जित है. केवल उपदेश सुनाना ही साधु जीवन का लक्ष्य नहीं हैं. उपदेश सुनानेवाले बहुत से लोग मिलेंगे. आपमें जो विद्वान हैं, वे भी अच्छा भाषण दे सकते हैं. लेकिन समस्त प्राणियों को बचा कर चलने की साधना आपकी नहीं हो सकती. बिना माइक के साधु थोडे ही लोगों को उपदेश सुनायेगा, लेकिन जितनों को सुनायेगा वह महत्त्वपूर्ण होगा.

मेरा रायपुर में चातुर्मास था. उस समय तोलारामजी भूरा, जो दीपचंदजी भूरा के बडे भाई थे-दर्शनार्थ रेलगाड़ी में बैठकर आ रहे थे. रास्ते में एकविदेशी—रसियन सज्जन ने उनसे पूछा कि कहां जा रहे हो? तो उन्होंने कहा कि महात्माजी के दर्शनार्थ रायपुर जा रहे हैं. उसने फिर पूछा कि आपके साधु कैसे होते हैं? उन्होंने साधुओं के बारे में विस्तार से बताया उस विदेशी भाई ने कहा कि क्या कोई मनुष्य इस तरह का जीवन बिताता हुआ जिंदा रह सकता है? तोलारामजी भूरा ने कहा कि जिंदा है, तभी तो हम उनके दर्शन करने जा रहे हैं.

यदि ऐसा कोई भी व्यक्ति 24 घंटे ऐसे साधुओं के पास आ कर रह जाय, साधु चाहे मौन रहे, लेकिन साधु के पास रहने से उस पर जो प्रभाव पड़ेगा, वह उपदेश से नहीं.

मान लीजिए आपने उपवास पचक्क लिया है और साधर्मी वात्सल्य का भोजन है, जिसमें करीब दस हजार लोग जीमने के लिए आये है। किसी कारणवश उनको शंका हो गई कि इस भोजन सामग्री में पॉइजन–जहर है, इसलिए लोग कहने लगे कि हम नहीं जीमेंगे, जीमानेवाला कहता है कि आप जीमिये. अंत में वे सहमत हो जाते हैं; किंतु उनकी एक शर्त है, वह यह कि धीरज भाई कोठारी भोजन करें तो हम भी भोजन कर लेंगे. वह नहीं जीमते हैं तो हम सब भूखे जायेंगे. तो क्या आप जीम लेंगे और दस हजार लोगों को जीमा देंगे ?

श्री धीरजभाई : हां, जीम लूंगा.

आचार्य श्री : उस समय कोई आपसे पूछे कि आपके तो उपवास है—फिर आप भोजन कैसे कर रहे है? तो आप नैतिकता के नाते कहेंगे कि उपवास तो था लेकिन उपकार के लिए तोड़ दिया. गृहस्थ का उपवास वृक्ष के पत्ते के तुल्य उत्तरगुण है लेकिन महाव्रत मूल के तुल्य है. आपने पत्ते को तोड़ दिया. वह फिर आ सकता है. किंतु किसी ने मूल महाव्रत को तोड़ दिया और यदि कोई उससे पूछे कि आप महाव्रत धारी महात्मा है? तो वह क्या उत्तर देगा? उसकी नैतिकता का तकाजा क्या है? क्या वह अपने आपको पंच महाव्रत धारी कह सकेगा? यदि वह कहता है कि मैं पंच महाव्रत धारी हूं तो नैतिकता का अनुपालन आपने अधिक किया या उसने? इस विषय में आप स्वयं निर्णय दें। यदि माइक आदि साधनों के प्रयोग से हमने अपने मूल महाव्रतों को खंडित कर दिया, तो हम साधु कहलायेंगे? या प्रचारक? यदि हमें साधु कहलाना है तो ईमानदारी से महाव्रतों का पालन करना होगा. अब आप ही निर्णय दीजिए कि हमे प्रचार हेतु विद्युत के साधनों का उपयोग करना चाहिए या नहीं? धीरज—"नहीं, अब मैं अच्छी तरह समझ गया हूं."

प्रश्न. 9 : व. जिज्ञासु एक अन्य व्यक्ति :

आप प्रायश्चित्त ले सकते है.

धीरज—बीच में ही—यह कैसा प्रायश्चित्त?

आचार्य श्री : इन भाई का प्रश्न है कि माइक पर बोल कर प्रायश्चित्त ले लें. यदि हम अपने मूल को तोड़ कर प्रायश्चित लेंगे, तो उसका प्रायश्चित्त होगा, फिर से साधु बनें. जैसे वृक्ष के मूल से उखड़ जाने पर पुनः नया वृक्ष लगाना पड़ता है.

ये बंधु कह रहे हैं कि परोपकार के लिए व्रत तोड़ देना चाहिए, प्रायश्चित्त ले लेना चाहिए, किंतु यह स्मरण रहे कि परोपकार के लिए व्रत नहीं तोड़ा जाता है. कदाचित परोपकार के लिए व्रत तोड़ दिया

गया तो हमें यही तो कहना पड़ेगा कि अब हमारे अहिंसा व्रत नहीं है. जैसे किसी के पास एक लाख रु. थे, उसने उनका परोपकार में दान कर दिया. अब वह अपने को लखपति नहीं कहेगा. कल मैंने सरकारी मूल्य सूची तोड़ने का उदाहरण दिया था. इस तरह से मूल्य सूचि तोड़ने पर सरकार भी माफ नहीं करती तो मूल व्रत तोड़ने पर क्या भगवान हमको माफ कर देंगे ? क्योंकि महाव्रत की साधना भगवान महावीर के द्वारा निर्दिष्ट साधना पद्धति की मूल्य सूचि के रूप में है. उसका अवमूल्यन करने का हमें कोई अधिकार नहीं हैं. कोई व्यक्ति मूल्य सूचि को तोड़ कर उसकी आय को परोपकार में भी क्यों न लगाता हो, सरकार उसे क्षमा नहीं करेगी, ठीक यही स्थिति हमारी साधना की है. परोपकार की दृष्टि में मर्यादाओं के भंग की अनुमति हमारी साधना पद्धति नहीं देती है. यदि मुनि जीवन का उद्देश्य प्रचार प्रसार का ही होता तो प्रभु महावीर के सैंकड़ो शिष्य वैक्रियलब्धि के धारक थे. प्रभु उनसे कह कर चमत्कार दिखाकर प्रचार करवा सकते थे. किंतु प्रभु ने ऐसा नहीं किया क्योंकि वैक्रियलब्धि का प्रयोग विद्युत जैसा हिंसक नहीं होते हुए भी मुनि के लिए निषिद्ध माना गया है । जब तक आप लोगों को मुनि मर्यादाओं का ज्ञान नहीं है. तब तक तो आप कह सकते हैं किसी भी साधनों का उपयोग करके प्रचार–प्रसार करना चाहिए, किंतु ज्यों ही आपको साधु चर्या के नियमों का ज्ञान होगा, आप खुद ही कहेंगे—"महाराज अपने महाव्रतों में ब्लेक करके उपदेश दे रहे हैं." ऐसी स्थिति में हमारे कथन का आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा.

इसी संदर्भ में एक बात और समझ लें–साधक के व्यक्तित्व का जो प्रभाव होता है, वह उसके वक्तृत्व का नहीं. यदि हमारी मर्यादाएं स्थिर हैं, तो उनका प्रभाव बिना ही प्रवचन के होगा, किंतु मर्यादाओं को भंग कर उपदेश देने पर वह उपदेश स्थाई प्रभाव नहीं डाल सकेगा.

प्रश्न 10 : रतलाम में इतने लोग इकट्ठे हुए थे, यदि किसी

का बच्चा गुम जाता और माइक पर सूचना नहीं देते, तो क्या हाल होता ?

उत्तर : शायद आपको मालूम होगा कि वहां पर इतने लोग इकट्ठे हुए थे, उनमें से किसी का बच्चा गुम हुआ था क्या? कदाचित् ऐसा हो जाए तो आप गृहस्थ हैं, खुले हैं सड़क पर कुछ भी करें, हमें क्या आपत्ति है. जिस पांडाल में कार्यक्रम हो, वहां कुछ नहीं होना चाहिए.

प्रश्न 11 : मानव समाज में रहन, सहन, आदि में जैसा परिवर्तन होता है, उसी के अनुरूप धार्मिक नियमों में परिवर्तन करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर : आपने इतिहास पढा होगा—कितने वर्ष पुराना इतिहास मिलता है? हजारों वर्ष पुराना इतिहास मिलता है. उस समय मनुष्य की स्थिति क्या थी? आंखें कहां थी? हृदय कहां था? जैसे जो शरीर के मूल अंग हैं उनमें परिवर्तन कभी नहीं होता. उसी तरह, जैसा कि मैं अभी समझा चुका हूं, सत्य तीन काल में भी सत्य ही रहेगा. उसमें परिवर्तन नहीं होगा. अहिंसा अहिंसा ही रहेगी, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता. मूल महाव्रतों में परिवर्तन करने पर साधु–साधु न रह कर प्रचारक बन जाएगा। हमारे लिए जो नियम बने हुए हैं उन्हें हमने नहीं बनाया, वे तीर्थंकरों के बनाये हुए हैं. उन मूल नियमों में इतने काल में भी परिवर्तन नहीं आया. यदि हम परिवर्तन करते हैं तो तीर्थंकरों के अपराधी बनते हैं.

प्रश्न 12 : जिज्ञासु (सिलोर की बहिन)
भवी और अभवी को ज्ञान और समकित आती है क्या?

उत्तर : अभवी अज्ञानी और मिथ्यात्वी है उसे तीन काल में भी सम्यक्त्व नहीं आ सकती है. निकट भवी को ज्ञान और समकित आता है.

प्रश्न 13 : जिज्ञासु अशोक बाफना :

चातुर्मास काल में जो लोग दर्शनार्थ इधर उधर जाते है, तो क्या वे ज्ञान प्राप्त करने जाते हैं ? वहां जाने वालों के द्वारा होने-वाली हिंसा का पाप किसको लगेगा ? क्या संतों को उस हिंसा का पाप लगेगा ?

उत्तर : प्रश्न कुछ मौलिक एवं सामयिक है, अतः कुछ विस्तृत उत्तर दे रहा हूं. जसलोक अस्पताल, बंबई में बहुत बड़ा अस्पताल माना जाता है. वहां पर इलाज कराने के लिए हिंदुस्तान के कोने कोने से रेल द्वारा या यातायात के अन्य साधनों द्वारा लोग आते रहते हैं. उनके आने जाने में जो जीव हिंसा लगती है, क्या वह हिंसा वहाँ के डाक्टरों को लगती है ? नहीं, उन्हें ही जो रोग निवृत्ति के लिए आते हैं. वैसे सभी सांसारिक प्राणियों को आरंभजा हिंसा तब तक लगती रहती है, जब तक वे उसका संकल्प पूर्वक प्रत्याख्यान नहीं कर लेते. अतः आगमिक दृष्टि से हिंसा का दोष तो लग ही रहा था.

आपकी हिंसा जन्म से ही चालू है, चाहे दर्शन करने जावें या न जावें. यदि साधु के दर्शन के लिए जाते हैं, तो दर्शन करने से लाभ ही होता है. जैसा कि भगवती सूत्र में कहा है—

तं महाफलं खलु देवाणुप्पिया. तहारूवाणं थेराणं भगवंताणं नाम-गोयस्स विसंवणयाए, किमंग पुणं अभिगमणं—वंदणं—नमंसणं—पडिपुच्छण—पज्जुवासणयाए जावगहणयाए ?

भावार्थ—हे देवानुप्रियो ! तथारूप के स्थविर भगवंतों के नाम गोत्र के श्रवण से भी महाफल होता है, तो उनके सामने जाना, वंदना करना, नमस्कार करना, कुशल समाचार पूछना और उनकी सेवा करना यावत् उनसे प्रश्न पूछ कर अर्थों को ग्रहण करना इत्यादि बातों के फल का तो कहना ही क्या ? इस प्रकार के महाफल के प्रसंग को ध्यान में रखकर अनेकों भव्य प्राणी पंचमहाव्रत धारी संत—महा-त्माओं के नाम—गोत्र सुनकर प्रमुदित होते हैं एवं यथावसर उनके

दर्शन आदि का लाभ प्राप्त कर उनके मंगल वचन श्रवण करते हैं.

वर्तमान के तर्क प्रधान युग में कुछ व्यक्ति यह भी तर्क उपस्थित करते हैं कि संतों के दर्शन को एवं उनकी मंगलमय वाणी को श्रवण करने के निमित्त नहीं जाना चाहिए, क्योंकि आने-जाने की क्रिया में आश्रव होना स्वाभाविक है. अतः संतों के दर्शन आदि के निमित्त से संत सेवा में जाने से महाफल की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उक्त तर्क जिज्ञासा की दृष्टि से योग्य है, पर इस प्रकार की धारणा बना लेना भयंकर भूल है तथा ऐसी प्ररूपणा करना तो उत्सूत्र प्ररूपणा करना है. क्योंकि ऊपर जो भगवती सूत्र का पाठ दिया गया है उसमें स्पष्ट निर्देश है कि-"अभिगमण-वंदणं...." अर्थात उन संत-महापुरुषों के सम्मुख चलें, वंदन नमस्कार करें आदि. श्रावक का कर्तव्य बतलाया गया है इस प्रकार आगमों में स्थान-स्थान पर श्रमण भगवंतों के अभिगमन-दर्शनार्थ जाने के उदाहरण चरितानुयोग में विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं.

भगवान महावीर अथवा उनके पट्टधर प्रथम आचार्य श्री सुधर्मा स्वामी आदि का जब पदार्पण होता, तब नागरिक जन सामूहिक रूप से उनके दर्शनार्थ उपस्थित होते थे. जहां सम्राटों का संत सेवा में पहुंचने का उल्लेख है वहां बतलाया गया है कि वे चतुरंगिणी सेना सहित दर्शनार्थ पहुंचते थे, चतुरंगिणी सेना (हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल) जब चलती थी तब उससे हिंसा होना स्वाभाविक था.

ज्ञाता-धर्म कथांग सूत्र में भगवान ने स्वयं कहा कि....सेणिए राया भिंभिसारे ण्हाए सव्वालंकार विभूसिए हत्थि खंध वरगए सकोरंट मल्ल दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवर चामरे हय गय महया भड चडगर कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे, मम पाय वंदए हव्वमागच्छइ. तएणं से दद्दुरे सेणियस्स रण्णो एगेणं आस किसोरेणं वामपाएणं अक्कंते समाणे अंत निग्घाइए कएयावि होत्था.... तएणं से दद्दुरे काल मासे कालं किच्चा जाव सोहम्मे कप्पे..."

अर्थात् भंभसार इस अपर नाम वाला श्रेणिक राजा स्नान आदि से निवृत्त हो कर सभी अलंकारों (आभूषणों) से विभूषित हो श्रेष्ठ हस्ती पर बैठ कर कोरंट नामक पुष्पों की माला से शोभित, छत्र को धारण कर भृत्यों द्वारा श्रेष्ठ श्वेत चामर ढोलाये जाता हुआ, हाथी, घोड़े, रथ, पैदल रूप चतुरंगिणी सेना से घिरा हुआ मेरी चरणवंदना के लिए शीघ्र आ रहा था. इधर मेंढ़क अपनी तीव्र गति से चल कर आ रहा था, वह श्रेणिक राजा के एक किशोर अश्व के वाम पैर से आक्रांत हो गया जिससे उसकी आंते टूट गयी....यावत् वह मेंढ़क काल करके सौधर्म कल्प विमान में..."

इस प्रकार भगवान स्वयं जानते थे कि गमनागमन से हिंसा होती है और उसका उल्लेख भी किया. किंतु दर्शनार्थ उपस्थित होने वाले को यह नहीं कहा कि संत-दर्शन के निमित्त गमनागमन की क्रिया नहीं करनी चाहिए. तथा संतों :के दर्शन करने जाने से आने जाने की क्रिया से हिंसा होगी, ऐसा जानते हुए भी राजा-महाराजा चतुरंगिणी सेना के साथ तथा अन्य गणमान्य सज्जन स्वअनुरूप साजसज्जा के साथ संत दर्शन के निमित्त चल कर पहुंचते थे.

इसी प्रकार चक्रवर्ती भरत, वासुदेव' श्रीकृष्ण एवं दशार्णभद्र, कोणिक, जितशत्रु, शतानीक, उदायन आदि बड़े-बड़े सम्राटों का चतुरंगिणी सेना सहित तीर्थंकरों की सेवा में पहुंचने का उल्लेख मिलता है. उपासक-दशांग सूत्र में भी आनंद आदि श्रावकों का तथा भगवती सूत्र में शंख जी आदि श्रावकों का स्वअनुरूप साज सज्जा के साथ प्रभु महावीर के दर्शन करने एवं पर्युपासना करने का वर्णन मिलता है.

इतना ही नहीं, देवगण असंख्य योजनों से उत्तर वैक्रिय करके भगवान की सेवा में पहुंचते थे. उनके गमना-गमन से हिंसा तो होती ही थी तथा वे भगवान के दर्शन एवं पर्युपासना करने के निमित्त से ही उपस्थित होते थे. ऐसा आगम में केवल एक दो जगह ही नहीं, अनेकों स्थलों पर उल्लेख मिलता है. अतः संतों के दर्शन आदि के

निमित्त संतों की सेवा में नहीं पहुंचना, ऐसा मानना आगम से सर्वथा विरुद्ध है.

इसके अतिरिक्त संत किसी से नहीं कहते हैं कि आप हमारे दर्शन हेतु आओ. आप अपनी खुशी से आते हैं. आपके आने से संतों को पाप क्यों लगेगा. जैसे कि जसलोक अस्पताल में आनेवालों का पाप डोक्टरों को नहीं लगता जैसे शारीरिक रोगी अस्पताल पहुंचते हैं वैसे ही मानसिक रोगी और आत्मिक रोगी जानते हैं कि अमुक स्थान पर जायेंगे तो हमको शांति मिलेगी. वे अपनी इच्छा से आत्मिक रोग मिटाने के लिए आते हैं. अतः साधु को पाप नहीं लगेगा. इसी प्रकार दर्शनार्थ आने वालों को भी आरंभजा हिंसा के अलावा धर्म लाभ ही होगा.

प्रश्न 14 : समकित लेने पर एक ही गुरु को आराध्य मानते हैं तो क्या दूसरे संप्रदाय के गुरुओं को नहीं मानना चाहिए ?

उत्तर : प्रश्न अध्यात्म से संबंधित है, इसे सैद्धान्तिक दृष्टि से समझना होगा. भगवान महावीर ने हमारे समक्ष प्रत्येक तत्व की परिभाषा रख दी है. हम हर तत्व को उस कसौटी पर कस कर देख सकते हैं. समकित का लक्षण बताते हुए कहा है. अरिहन्तो महदेवो जावज्जिवाए सुसाहुणो गुरुणो। जिण पण्णत्तं तत्तं इअ सम्मत्तं मए गहियं. अर्थात् मेरे देव अरिहंत हैं. सुसाधु निर्ग्रंथ मेरे गुरु हैं. भगवान ने यह परिभाषा दे रखी है. इसको कसौटी बना लीजिए. साधु होना ही पर्याप्त नहीं है. कोई साधु एकाकी रहता है तो क्या करता है. क्या नहीं करता है ? कुछ ज्ञात नहीं होता है. जो साधु भी हैं और आचार्य के अनुशासन में नहीं हैं तो पता नहीं वे क्या करेंगे ?

सुनने में आया कि मद्रास की तरफ दो साधु आये—उनके जीवन के बारे में किसी को पता नहीं था. यह भी पता नहीं था कि वे किसके शिष्य हैं. वे धीरे धीरे पैसा बटोरने लगे. जब श्रावकों को यह शंका हुई कि ये साधु क्या कर रहे हैं. लोगों ने उन पर नजर

रखना आरंभ किया. जब उन्होंने देखा कि पोल खुल जायेगी तो पैसा ले कर दोनों वहां से निकल गये और रेल में बैठकर कलकत्ता पहुंच गये. अतः आचार्य का नेतृत्व आवश्यक माना गया है.

साधु संयम की अच्छी पालना करें लेकिन अच्छे आचार्य के नेतृत्व में विधि सहित नियमों का पालन करें, वही वंदनीय, पूजनीय है. आप अपने पास कसौटी रखिए, जो कि शास्त्रीय है. इस कसौटी पर जो भी खरा उतरे उसे वंदन करने से समकित में दोष नहीं लग सकता है.

प्रश्न 15 : यह नियम क्यों नहीं बना लिया जाय कि धर्मस्थान में सभी मुंहपत्ति बांधकर आवें ?

उत्तर : यदि यह चिंतन वैज्ञानिक तरीके से समझ लें तो जैन धर्म की साधना पद्धति के चार चांद लग जायें. मैं कल सामायिक की व्याख्या करते समय बोल गया था कि भगवान के समवसरण में लोग उत्तरासन लगा कर जाते थे, वहां जीवयुक्त पदार्थ नहीं ला सकते थे, फूलों की माला और इलायची बाहर रखी जाती थी. धर्म स्थान में आने से पहले विवेक रखना आवश्यक है. इस रूप में नियम तो उत्तरासन का बना ही हुआ है. आप लोग पालन नहीं करें तो यह दोष आपका है.

प्रश्न 16 : जिज्ञासु (श्री गौतम) :

आज के जमाने में जैन धर्म लोप क्यों हो रहा है और जैन धर्म की जानकारी लोगों को क्यों नहीं है ? कई लोग अपने आपको जैन कहलाने में भी संकोच करते हैं. ऐसा क्यों है ?

उत्तर : इसके कारण की खोज में जाने के लिए थोड़ा गहराई में पहुंचना पड़ेगा. क्या जन्मसे ही बच्चा धर्म, परिवार और समाज को जानता है ? वह नहीं समझता है–उसको समझानेवाले उसके माता–पिता हैं. बचपन में उसे जैसे संस्कार मिलते हैं वे अमिट हो जाते हैं. तो सबसे पहली कमजोरी है माता–पिता की। माता–पिता ही

चरित्र का निर्माण करते हैं. अतः उनका कर्तव्य है कि वे सुंदर जीवन निर्माण हो ऐसी शिक्षा दें. जब बच्चा बड़ा होता है तो उसको नयी चीज समझने कि जिज्ञासा होती है. धर्म स्थान पर पिता के साथ जाता है तो संतों को देख कर पूछता है कि ये कौन हैं ? यदि माता उसकी जिज्ञासा का युक्तियुक्त समाधान देती है तो उसका उत्साह बढ़ता है. यदि उसको झिड़कते हैं तो उत्साह नहीं बढ़ेगा. कभी माता–पिता उसे नास्तिक कह देते हैं तो वह धर्म स्थान पर नहीं जाता. यदि धर्म स्थान पर ले जाते हैं और वह कुछ पूछता है तो उससे कहें कि मुझे जितना ज्ञान था, उतना बता दिया आगे की समाधान संत करेंगे. वहां समाधान नहीं होता है तो दूसरे स्थान पर ले जावें, इस प्रकार धार्मिक संस्कारों का क्रम चालू रहे. आज के युवक बारीक बातें समझते हैं इसलिए जैन धर्म की बारीक बातें समझाने का सुंदर अवसर है. युवक जितना समझेंगे उतना पकड़ेंगे.

कुछ लोग धर्म को परलोक की चीज बता देते हैं और युवक कहते हैं कि हम तो वर्तमान की बात चाहते हैं.

ईसाई लोग रविवार को सभी बच्चों को गिरजाघरों में ले जाते हैं. मुसलमान लोग छोटे बच्चों को कुरानशरीफ से धार्मिक संस्कार देते हैं. हिंदु समाज और हमारी समाज प्रायः बच्चों को पैसों की मशीन बना देना चाहते हैं. वे रोजी रोटी की जितनी आवश्यकता समझते हैं उतनी धर्म की नहीं समझते. यही प्रमुख कारण है कि जैसे धर्म जितनी चाहिए उतनी प्रगति नहीं कर पा रहा है. इनके अतिरिक्त आज आपकी समाज में स्वाध्याय की बहुत कमी है और इसी कारण जैन तत्वज्ञान में आपका प्रवेश नहीं हो पाता. इस ज्ञान के अभाव में आपके आचरण गलत हो जाते हैं तो आपको अपने को जैन कहलाने में शर्म आयेगी ही.

प्रश्न 17 : जैन धर्मावलंबी इतने डरपोक क्यों हैं–जैन कहलाना ठीक क्यों नहीं समझते ?

उत्तर : इसका भी मुख्य कारण जैनतत्वज्ञान का अभाव ही है. ज्ञान हो जायगा तो डरपोकपना भाग जायेगा. जैन धर्म कायरों का नहीं वीरों का धर्म है. यह वीरता ही नहीं, महावीरता सिखता हैं.

प्रश्न 18. : जिज्ञासु श्री हुकमीचंदजी खिंवेसरा :

आज कल के युवक तिरूपति बालाजी के वहां जाते हैं, जहां पांच घंटों पहले दर्शन नहीं होते, पांच घंटे लगाने पर भी दर्शन होंगे तो करेंगे, सांईबाबा के यहां जायेंगे तो वहां उनकी मनोकामना पूरी होती है, वे कहते हैं कि तिरूपति और सांईबाबा के वहां जा कर आया–वहां मनोकामना पूरी हुई, लोग कैसे मानते हैं कि मनोकामना पूरी हुई ?

उत्तर : वास्तविक तिरूपति बालाजी क्या हैं, यह सामान्य जनमानस नहीं समझता है, तिरूपति का मूल स्वरूप आज की मान्यता से सर्वथा भिन्न है, वे ऐसी किन्हीं मनौतियों को पूरी नहीं करते, आज के मनुष्यों की मनोकामना यह है कि धनवान बन जाऊं, यदि तिरूपति बाला जी के वहां और सांईबाबा के वहां जाने से मनोकामना पूरी होती, तो सबके सब धनवान हो जाते, लेकिन एक माहौल हो जाता है और मनुष्य की ऐसी कल्पना बन जाती है.

आचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज साहब फरमाते थे कि एक किसान को बुखार हो गया, वह भैरूंजी हनुमानजी के वहां गया मनोतियों मनाई लेकिन उसका बुखार नहीं उतरा 26 दिन बीत गये, फिर उसका ध्यान गया कि मेरा बैल सयाना है, उसके पैर के नीचे से निकलूं तो बुखार चला जायगा, बैल के पैर के नीचे से नीकला उसका बुखार उतर गया, वैसे उसे 27 दिन का टाइफाइड था औषधि चल रही थी, वह एक दिन बाद वैसे ही ठीक होनेवाला था, किंतु उस भोले बंधु ने यह प्रचार कर दिया कि मेरे बैल के नीचे से निकलने से बुखार उतर जाता है, और हजारों व्यक्ति बैल के नीचे से निकलने लगे, यह अंधविश्वास यहीं तक सीमित नहीं रहा, बैल

जब दिन भर परेशान होने लगा तो उसे एक पिंजरे में बंद कर दिया और लोग आ आ कर उस पिंजरे के चक्कर लगा जाते और बैल को नमस्कार कर जाते.

इसी तरह रायपुर के पास गुडियारी गांव में मुझे एक भाई ने बताया कि उड़िसा में एक अंगुली बाबा था. उसके पास जाने पर भी कुछ लोग रोग मुक्त हो गये, हजारों की भीड़ लगने लगी, व्यवस्था के अभाव में लोग और अधिक बीमार हो हो कर आने लगे, अंत में इस पर सरकार को प्रतिबंध लगाना पड़ा और उस बाबा को बंदी बना लिया गया.

दरअसल में ज्ञान की कमी के कारण ही लोग इधर उधर की बातें सोचते हैं, ज्ञान की मात्रा आ जाय तो घर बैठे गंगा है, यदि सही ज्ञान नहीं हैं तो मनोकामना पूरी नहीं होती.

❋

दिनांक 22-7-84.

प्रश्न 19 : जिज्ञासु श्री मनसुखलाल कटारिया :

जैन धर्म की एकता हेतु, सभी संप्रदाय एक झंडे के तले आकर संगठन हेतु बहुत जोर लगाये जा रहे हैं, भाषणबाजी हो रही है, लेकिन सफलता नहीं मिल पा रही है, क्यों ?

उत्तर : प्रश्न सामयिक एवं मौलिक है, प्रत्येक व्यक्ति की यह सहज भावना रहती है कि हमारी समाज सुसंगठित हो कर चले, और यह सोचना उचित भी है, किंतु सुसंगठम की आधार भूमि क्या है, यह एक विचारणीय विषय है, आज संगठन में जो सफलताएं नहीं मिल रही हैं, इसका मूल कारण भी आधार भूमि का असंतुलन है, बिना किसी ठोस भूमिका के, ऊपर-ऊपर के प्रयास सफल नहीं हो सकते हैं, असफलता का दूसरा कारण है संगठनें की कथनी-करनी में अंतर, यदि समाज में, धर्म और संप्रदाय में भावात्मक एकता लानी है तो सभी लोग मन से, वचन से और काया से एक रूप हो जाये तो सफलता मिलने में देर नहीं लगती.

प्रश्न 20 : जिज्ञासु धर्मेन्द्र के. जैन :

जैन साधु भी श्वेत वस्त्र पहनते हैं और क्रिश्चियन पादरी जिनको "फादर" कहते हैं, वे भी श्वेत वस्त्र पहनते हैं, तो हम सब को मिल कर क्यों नहीं चर्च में जाना चाहिए. ?

उत्तर : इस छोटे से बच्चे ने प्रश्न करने का साहस किया यह, प्रशंसनीय हैं, मैं उस बच्चे से कहना चाहूंगा कि यदि श्वेत वस्त्रों से ही धर्म स्थान का संबंध हो तो हम वहां जायं इसके वजाय यह भी तो हो सकता है कि सभी पादरी यहीं क्यों नहीं आ जायें ? वास्तव में धर्म सिद्धांतों में हैं पोषाकों में नहीं, कल्पना करें दो विद्यालयों का यूनिफार्म समान हो तो क्या एक दूसरे के विद्यार्थियों को एक दूसरे विद्यालय में चले जाना चाहिए ? वास्तव में जहां पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्य, पूर्ण अचोर्य, पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण अपरिग्रह संपन्न जीवन का स्वरूप है, वहीं जीवन की पोषाक है, आत्मा की पोषाक है, वह पोषाक जो सजा लेता है और वह जिस स्थान पर मिलती है वह स्थान सबके लिए उपादेय होता है.

प्रश्न 21 : जिज्ञासु श्री उत्तमचंदजी (सिंधी समाज के प्रमुख सदस्यः)

हमारे चहेते अगर हमसे दुर्बुद्धि से चलें तो हमें क्या करना चाहिए ?

उत्तर : प्रश्न आप सभी के ध्यान में आ गया होगा ? मैं कुछ स्पष्ट कर दूं. आपका प्रश्न है कि हमको चाहते रहे हैं, फिर भी उनमें दुर्बुद्धि चलती है, तो क्या करना चाहिए ? ऐसे व्यक्तियों की चाह ऊपरी चाह होती है । वे आपको उपर से चाहते हैं, अंदर से नहीं, इसीलिए दुर्बुद्धि से चल रहे हैं, सच्चे मन से चाहेंगे तो आपके साथ दुर्बुद्धि का व्यवहार नहीं करेंगे. तथापि आप उनके साथ समभाव से व्यवहार करेंगे तथा दुर्बुद्धि का प्रतिकार शांति के सहारे सभ्य तरीके से करेंगे तो—एक न एक दिन अच्छा रिजल्ट आयगा. उनकी दुर्बुद्धि सद्बुद्धि में परिवर्तित हो जायगी. आपकी

सद्भावना का प्रभाव सामने वाले व्यक्ति पर अवश्य होगा. उसे एक-न एक दिन अवश्य बदलना पड़ेगा.

प्रश्न 22. जिज्ञासु प्रीति घांड़ीवाल :

पंडाल में बैठे व्यक्तियों की सामायिक है, अचानक आंधी, तूफान व बारिस आ जाय, सभी लोग भीग रहे हों व रहने के लिए कोई आसपास स्थान न हो तो उन व्यक्तियों द्वारा क्या किया जायगा ?

उत्तर : प्रथम तो ऐसे स्थान पर कोई सामायिक नहीं करेगा जहां इस प्रकार की अव्यवस्था की संभावना है, तथा ऐसा प्रायः नहीं होता है कि आसपास में कोई स्थान न मिले, सामायिक करनेवाला पहले ही विवेक रखेगा, पहले व्यवस्था देख कर चलेगा, कदाचित् ऐसी स्थिति उपस्थित हो जाये तो सामायिक की समाप्ति के पश्चात् आलोचन करके प्रायश्चित लेना चाहिए.

प्रश्न 23. जिज्ञासु श्री सुभाष नागोरी :

किन्हीं दो राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों की गलत नीति के कारण उनके बीच युद्ध होता है लेकिन युद्ध की हानि उन राष्ट्रों के नागरिकों को भी, जिनका की कोई दोष नहीं है, उठानी पड़ती है, इसे हम किसके कर्मों का उदय समझें ? क्या सभी नागरिकों ने, जिन्हें हानि पहुंचती है, पूर्व जन्म में एक साथ एक ही समान कर्म बांधे थे ?

उत्तर : प्रश्न युगीन संदर्भों से अनुबंधित होते हुए भी अतीव मौलिक है, साथ ही यह कर्म सिद्धांत की व्यवस्था को भी अपने में समेटे हुए है, राष्ट्राध्यक्ष कोई अपने मन से नहीं बनते, आज की जनतांत्रिक पद्धति में आम व्यक्ति को राष्ट्राध्यक्ष चुनने का अधिकार है, ऐसी स्थिति में राष्ट्राध्यक्ष पूरे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, अतः उनके निर्णयों का प्रभाव आम प्रजा पर होना स्वाभाविक है, कर्म सिद्धांत ने इस व्यवस्था को सामुदायिक कर्म की संज्ञा दी है. जैसे पांच हजार व्यक्ति एक साथ कोई चलचित्र देख रहे हैं, उनके दृश्यों के अनुसार प्रायः सभी में एक समान भावनाएं उत्पन्न होती

है और समान कर्मों का बंध हो जाता है, जिसका एक साथ उदय हो सकता है, मूलतः राष्ट्राध्यक्ष कोई स्वतंत्र इकाई नहीं है वह सामान्य जनता के प्रतिनिधित्व अधिकार से अनुबंधित है.

प्रश्न 24. : जिज्ञासु अशोक दिनेश ओस्तवाल :

मानवीय जीवन क्या है और कैसे मिलता है ?

उत्तर : प्रश्न अत्यंत मौलिक है, इस प्रश्न को कुछ गहराई से समझने की आवश्यकता है, मानव जीवन की परिभाषा एवं उसके मूल्य को नहीं समझने के कारण ही आज आम व्यक्ति इस बहुमूल्य उपलब्धि के लाभ से वंचित-सा जी रहा है, मैंने जीवन की संक्षिप्त परिभाषा दी है– "सम्यग् निर्णायकं समतामयं, च यत्तज्जीवनम्" अर्थात् जीवन वह है जो अपने हिताहित का विवेक रख सकता हो और समतामय हो, इस परिभाषा के अनुसार मानव जीवन हमारे आत्म कल्याण के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, जिसे संसार की सर्व-श्रेष्ठ उपलब्धि कही जा सकती है, महर्षि व्यास ने कहा है–"नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित् प्रश्न का दूसरा पहलू है पूर्वजन्म के किन अनुष्ठानों से मानवीय जीवन मिलता है ? मानवीय जीवन की प्राप्ति के लिए शुभ कर्म अपेक्षित है, यहां शुभ कर्मों का तात्पर्य यह है कि स्वभाव से-प्रकृति से भद्रिक हो, छली-पाखंडी न हो, स्वभाव से-प्रकृति से विनम्र हो, बडे बुजुर्गों का विनय या आदर करे, छोटों के साथ मधुर और आत्मीय भावना से चले, क्रोध, मान, माया, लोभ की स्थिति से दूर रहे, अति सरल जीवन हो, इस प्रकार के दिव्य गुण अपनावे तो उसे पुनः मानव जीवन मिल सकता है.

मानवीय जीवन का सही मूल्य भी यही है कि वह इस जीवन में रहता हुआ एक दूसरे को आत्मीय भावना से देखे. जहां ऐसी वृत्ति आ जाती है, वह मानवीय जीवन है.

प्रश्न 25 : कोई आदमी बन कर संसार में आया उसके बाद कर्म मानव योनि के अनुकूल नहीं किये तो क्या होगा ?

उत्तर : पशु योनी में चला जायगा और भी नीचे चला जायगा. किसी के साथ कपट किया, धोखा किया तो नीची योनि में जायगा.

प्रश्न 26 : क्या मानव जीवन से फिर मानव जीवन मील सकता है ?

उत्तर : मानव बनने के लायक कर्म करे तो पुनः मानव योनि मिल सकती है.

प्रश्न 27 : मानव जीवन से तो मोक्ष प्राप्त होता है, क्या अन्य किसी योनि से भी मोक्ष मिलता है ?

उत्तर : ऐसा दूसरा कोई जीवन नहीं है जिसमें परिपूर्ण साधना की जा सके, जब तक दुर्जन बना रहेगा, हिंसा करता रहेगा तब तक सम भावी नहीं बनेगा और उसके अभाव से मोक्ष भी नहीं मिलेगा.

प्रश्न 28 : मानव जीवन मिल गया, लेकिन साधु बने बिना मोक्ष मिलता है या नहीं ?

उत्तर : मानव यदि सब के साथ समता भाव ले आता है, समता का व्यवहार करता है और समता के अनुवाद ही बोलता है तो समझिये वह साधु जीवन में प्रवेश कर गया. अब रहा सवाल परिवेश–पोषाक का, तो भी स्वतः बदल जायेगी किंतु भावात्मक साधुता आये बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है । कोई भी व्यक्ति पांचवी कक्षा से सीधी एम.ए. की डिग्री नहीं ले सकता. उसको क्रमिक रूप से अध्ययन करना पडेगा इसी तरह से साधना में भी क्रमिक रूप से आगे बढना पडेगा, तभी अंत में जा कर मोक्ष का अधिकारी बन सकता है. 5वीं कक्षा का छात्र चाहे कि एम. ए. की डिग्री सीधी मिल जाय तो मिलेगी क्या ? गृहस्थाश्रम पांचवी कक्षा जितना ही है. अतः उससे मुक्ति नहीं मिल सकती है.

प्रश्न 28 : मोक्ष के लिए क्या साधु बनना जरूरी है ?

उत्तर : हां, बिना साधु बने मुक्ति नहीं हो सकती है. भाव से साधुता आयेगी तभी मुक्ति होगी. भरत महाराज का उदाहरण भी यही बताता है कि उन्हें भाव साधुता आ गई थी. तभी केवल ज्ञान हुआ. इसीलिए उन्होंने तुरंत मुनि वेश धारण कर लिया था.

प्रश्न 29 : जिज्ञासु सुश्री वर्षा श्री श्रीमाल :

क्या कारण है कि महिलाएं खड़े हो कर ध्यान नहीं कर सकतीं हैं जब कि पुरुष वर्ग कर सकता है ?

उत्तर : वैसे तो यह प्रश्न व्यक्तिगत हो जाता है फिर भी उत्तर दे दूं. महिला वर्ग इसलिए खडे हो कर ध्यान नहीं कर सकती कि उनके शरीर की संरचना ऐसी है कि कोई व्यक्ति विपरीत या उद्दंडक प्रकृति का हो तो खतरा आ सकता इसलिए उनके लिए बैठे बैठे ही ध्यान करने का विधान है.

प्रश्न 30 : जिज्ञासु श्री रमेशचंद्र ब्यावर :

व्यापार में स्वयं के नहीं चाहने पर भी चोरी बेईमानी करनी पड़ती है, उससे छुटकार कैसे पाया जाय ?

उत्तर : छुटकारा पाने का रास्ता यह है कि अपने जीवन को सादा बनाया जाय. ईमानदारी और सत्यनिष्ठा से कार्य करनेवाले को जितनी और जैसी उपलब्धि हो उसी के अनुरूप जीवन ढालने की कोशिस की जाय. कुरीति रिवाजों को न पनपने दें. सादगी पूर्वक जीवन बितावें. जैसे पशु पक्षी उन्हें बेईमानी नहीं करनी पड़ती हैं लेकिन इंसान ऐसा नहीं करता. इसलिए उसको बेईमानी और चोरी करनी पड़ती है. वह ऐसा आराम नहीं छोड़ना चाहता, फेसिलिटी का त्याग नहीं करना चाहता इसलिए दुविधा में रहता है. यदि जीवन की आवश्यकताओं को सीमित किया जाये तो बिना बेईमानी के भी जीवन का गुजारा तो हो ही सकता है. अधिक सुविधा वाद ने ही अनैतिकता में वृध्धि की है.

प्रश्न 31 : जिज्ञासु श्री हुकमीचंद खींवसरा :

एक तरफ तो ऐसा सुना जाता है कि साधर्मी भाई की सेवा के लिए भोजन व्यवस्था पर टिकट लगाने के पूर्वाचार्य विरुध्द थे. जब कि संघ को पूरा खर्च उठाते हुए अनूठी और स्थायी साधर्मी भाई की सेवा का और मौका मिल जाता है. दूसरी तरफ ऐसा भी सुना जाता है पूर्व में इस तरह की सुंदर व्यवस्था कभी संघ के सन्मुख आई ही नहीं थी. सही बात क्या है व इस विषय में आपका मार्ग दर्शन क्या है, खुलासा करने की कृपा करें?

उत्तर : यह विषय मुख्य तौर पर आपसे गृहस्थों से संबंधित है. संत और सती वर्ग आरंभ समारंभ में नहीं पड़ते हैं. पूर्वाचार्यों का जहां तक संबंध है, और जहां तक मेरी स्मृति में है पूर्वाचार्यों ने न हां कहा और न ना कहा. संघ की सुव्यवस्था की दृष्टि से टिकट भी लगे तो पूर्वाचार्य हां ना में नहीं रहे. आचार्य श्री गणेशीलाल जी म.सा. का चातुर्मास जयपुर हुआ था तब प्रश्न उठा था कि टिकिट लगे । लेकिन आचार्य श्री न हां मे थे, न ना में । साधर्मी की स्थिति के बारे में संतों के नाम से चर्चा न करें. आपको जैसी सुविधा हो वैसा सोचें. साधर्मी वात्सल्य यह आपके चिंतन का विषय है. संतों को हां ना इसलिए नहीं कहनी है कि यदि वे हां कहते हैं तो समारंभ मारंभ का दोष लगता है और ना कहते हैं तो अंतराय लगती है. आप अपना ध्यान रख कर जैसा उपयुक्त हो, सोच सकते हैं. यहां की क्या स्थिति है, यह आपके सोचने समझने की बात है. हमको कुछ नही करें और न हमें कुछ कहना है. इसलिए संत सती वर्ग को और पूर्वाचार्यों को हां या ना में लिप्त न करें.

प्रश्न 32 : जिज्ञासु श्री नाथा भाई :

जैन बालक हिंसा की ओर जा रहे हैं इसके लिए जैन साधु मिल कर क्यों नहीं प्रयास करते ?

उत्तर : आपका प्रश्न मौलिक है, अच्छा है. यह प्रश्न साधु

संतों पर कितना निर्भर करता है, यह विचारणीय है. आप साधु संतों पर उत्तरदायित्व डालते हैं उससे अधिक उत्तरदायित्व आपको लेना चाहिए. जो बाल बच्चे आपके घर में जन्म लेते हैं. शरीर से जन्म देना और बात है और संस्कारों से जन्म देना दूसरी बात है. शरीर से जन्म पशु पक्षी भी देते हैं लेकिन वे संस्कार नहीं दे सकते. चिडियां, कबूतर, आदि मांस का खाना नहीं खाते हैं. मांस खानेवाले प्राणियों के कुछ और चिह्न होते हैं । और नहीं खानेवालों के और चिन्ह होते हैं. पशुओं और पक्षिओं में भी अंतर है. सिंह भालू, कुत्ता मांस खानेवाले हैं. ये जबान से पानी पीते हैं और इनके दांत लंबे होते हैं. गाय, भैंस मांसाहारी नहीं है. होंठ से पानी पीते हैं. इनके दांत चपटे होते हैं. यह कुदरती–प्राकृतिक अंतर है. मनुष्य, गाय, बैल, भेंस की तरह पानी पीता है. तो मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी नही है. यह मांसाहार परिस्थिति वश या गलत संपर्क से आ गया. माता पिता का कर्तव्य है कि बच्चों को अच्छे संस्कार दिये जायं. फिर वे खोटा खाना नही खायेंगे. माता पिता से अच्छे संस्कार मिल जाते हैं तो बच्चा विपरीत आचरण में नहीं आता. एक उदाहरण भोपाल का देता हूं. भोपाल मध्य प्रदेश की राजधानी है. एक वकील साहब का लड़का भीमसिंह एम. ए. में पढ़ रहा था. उसके बचपन के संस्कार मांस, मदिरा के नहीं थे. माता पिता ने भी उसे उन्नत संस्कार दिये.

एक दिन भीमसिंह के कक्षा के विद्यार्थियों ने, जो प्राय: सभी उत्तम कुल जैसे ब्राह्मण, माहेश्वरी, ओस्वाल आदि थे, सोचा कि कल रविवार है पिकनिक मनायी जाय और सभी अपने घर से टिफन ले कर आवें. पिकनिक में सभी विद्यार्थियों ने टिफन खोले तो कुछ में अंडे निकले । भीमसिंह को यह बात अच्छी नहीं लगी. भीमसिंह ने कहा कि यह मनुष्य का खाना नहीं है, वे इंकार करने लगे तब जबर्दस्ती से विद्यार्थी उनको खिलाना चाहते थे. उन्होने अध्यापक को पुकारा.

अध्यापक ने कहा कि अंडा खा लोगे तो क्या हो जायगा ? भीमसिंह ने सोचा कि यहां तो कुए में भांग पड़ी हुई है. वे वहां से भाग कर अपने घर चले गये और अपने पिताजी को सारी घटना सुनाई– पिता ने कानूनी कार्यवाही की और विद्यार्थी एवं स्टाफ को डांट पिलाई. जहां माता पिता से मधुर धार्मिक संस्कार मिल जाता है वहां विद्यार्थी संस्कारों के विपरीत नहीं जाता. जहां माता पिता खाली शरीर पिंड का पोषण करते हैं. पवित्र विचारों का पोषण नहीं करते वहां चरित्र गिरता है. आगे चल कर जब बच्चा स्कूल कालेजों में जाता है, वह भी अंग्रेजी माध्यम की स्कूलों में. तो वहां अध्यापक अपनी संस्कृति के अनुरूप शिक्षा देते हैं. आज उत्तम कुल की कहलाने वाली आपकी समाज है, उसको किसी बात की कमी नहीं है, लेकिन भावात्मक एकता की कमी है. उच्च कुल की तरह पवित्र संस्कार देनेवाली स्कूलें और कालेजों का निर्माण आप नहीं कर सकते क्या ? आपमें क्षमता है लेकिन रुचि नहीं है. आपने बच्चों के संस्कार निर्माण की तरफ ध्यान नहीं दिया तो क्या स्थिति होगी ? इस ओर ध्यान दें. यदि आप यह नहीं कर सकते तो संतों से धार्मिक शिक्षण दिलायें. खुले दिल से बच्चे संतों के पास पहुंचे प्रश्न करें, समाधान लें. संत घरों में जा कर संस्कार देने की स्थिति में नहीं है. इस दृष्टिकोण से जो संतान गलत रास्ते पर जा रहे हैं उनके माता पिता को पहले ध्यान रखना है. तथा संतों को भी अपने कर्तव्य दृष्टि से ध्यान रखना है. मूलरूप में उच्च वर्ग में मांसाहार के अधिक प्रचार का कारण संस्कारों का अभाव है.

प्रश्न 33 : जिज्ञासु श्री रतनचंद सुराणा :

जैन धर्म के सब संप्रदायों द्वारा इतना आध्यात्मिक व रचनात्मक कार्य का प्रचार होने हुए भी आज की नव युवक पीढ़ी का धर्म के प्रति लगाव इतना कम क्यों है ? क्या इसमें और कोई सुधार आवश्यक है ?

उत्तर : सुधार की बहुत आवश्यकता है. कई छोटे बच्चों को धर्म के प्रति जिज्ञासा होती है, वे समझने के लिए प्रश्न उपस्थित करते हैं यदि माता पिता प्रश्नों का समाधान ठीक तरह से दे दें तो विद्यार्थी धर्म की ओर अग्रसर होते हैं. लेकिन माता पिता समाधान ठीक तरह से नहीं दे सकें और अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए कहते हैं कि तुम तो नास्तिक हो गये हो. तो विद्यार्थी धर्म के विरुद्ध हो जाते हैं और धर्म के सन्मुख आने से डर जाते हैं. यदि माता पिता उनको खुली छूट दे दें कि प्रश्न का समाधान संतों के पास जा कर लो और संत उनको योग्य समाधान दे देते हैं तो वे धर्म से विमुख नहीं होंगे. यदि संतों से उत्तर नहीं बन पड़े और वे भी कहने लग जायं कि तुम नास्तिक हो गये हो, जो ऐसे प्रश्न करते हो, तो भी विद्यार्थी धर्म से किनारा करने लग जाते हैं और 4 विद्यार्थी 10 को और अपने साथ ले जाते हैं. स्कूल कालेजों के अध्यापक भी इस ओर ध्यान नहीं देते, इसलिए उनके संस्कार धर्म के विरूद्ध हो जाते हैं. यदि संतजन उन्हें स्नेह से समझायें मार्गदर्शन दें और अपनी अक्षमता पर सरलतापूर्वक स्पष्ट कह दें कि आप और किन्हीं विद्वान मुनियों से समाधान लें, हमारी शक्ति के अनुसार हमने बता दिया है तो युवक सहज ही उनकी नम्रता एवं सरलता से प्रभावित होंगे और धर्म के प्रति श्रद्धान्वित भी. इसके साथ ही माता –पिता बच्चों को धर्म स्थानों पर ले जाने में संकोच करते हैं. सिनेमा में पहले ले जाते हैं तो उन पर सिनेमा का बुरा असर पड़ता है. सिनेमा एवं अश्लील उपन्यास आदि के संस्कारों से आवारापन, डकैती आदि कुसंस्कार पड़ते हैं, जिन्हें आप आये दिन समाचार पत्रों में देखते हैं. ये ही मूल कारण हैं उनके धर्म के विमुख होने के. जिन विद्यार्थियों के प्रश्नों का समाधान हो जाता है वे धर्म के विपरीत नहीं जाता.

प्रश्न 34 : जिज्ञासु श्री बाबुलाल बंबकी :
जैन धर्म का विज्ञान से क्या संबंध हैं ?

उत्तर : चुंकि जैन धर्म स्वयं वैज्ञानिक धर्म है, अतः इसका विज्ञान से संबंध अपरिहार्य है. किंतु आधुनिक विज्ञान का जो केवल भौतिक प्रगति में ही गतिशील है, जैन धर्म से उतना ही संबंध है जितना कि वह मानव कल्याण में उपयुक्त होता है अर्थात् यदि विज्ञान मानव हित में काम करे तो जैनधर्म विज्ञान के विरुद्ध नहीं है. यदि विज्ञान संहार का काम करता है हिंसाकारी अस्त्र-शस्त्र बनाता है तो जैन धर्म उसके विरुद्ध है. यदि विज्ञान आत्म स्वरूप को नहीं समझता तो धर्म उसके विरुद्ध है. यदि विज्ञान अपनी शक्ति पाप में न लगाकर धर्म में विश्व कल्याण में लगावे तो विज्ञान धर्म के विरुद्ध नहीं है.

प्रश्न 35 : जिज्ञासु श्री नीति जैन :

पाप, पुण्य और धर्म में क्या अंतर है ? मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर : पाप अशुभ कर्म है और पुण्य शुभ कर्म है. पाप पुण्य की स्थिति में रात दिन का अंतर है. पाप पत्थर की नाव है और पुण्य लकड़ी की नाव है. समुद्र पार करने के लिए पत्थर की नाव सबसे पहले छोड़ी जाती है और लकड़ी की नाव का सहारा लिया जाता है वैसे ही पाप को सबसे पहले छोड़ा जाता है और पुण्य को बाद में । क्योंकि पुण्य के परिणाम स्वरूप मनुष्य शरीर मिलता है और उसके सहारे आत्मा मोक्ष की ओर गति करती है. श्रुत धर्म, चारित्र धर्म पुण्य से प्राप्त शरीर के माध्यम से जीवन में उतर जाय तो उससे मोक्ष मिलता है, पुण्य और पाप दोनों छूटते हैं. जब तक मोक्ष की स्थिति न हो तब तक पुण्य का सहारा लिया जाता है. इसलिए पुण्य धर्म के साथ सहयोगी है. पुण्य अंत में छूटता है और पाप सबसे पहले छूटता है । यह पुण्य और पाप में अंतर है. किंतु धर्म पुण्य से भिन्न है. धर्म आत्म विशुद्धिपूर्वक मुक्ति की ओर गति प्रदान करने वाली एक प्रक्रिया है.

प्रश्न 36 : जिज्ञासु श्री बंशीधर मेहता :

आप अद्वैतवाद में विश्वास करते हैं. या भगवान के भिन्न भिन्न रूप मानते है ?

उत्तर : भाई बंशीधर जी ने प्रश्न ज्ञान के अनुरूप रखा. आत्म का स्वरूप एक है इस दृष्टि से सब आत्माएं एक हैं. जैसे मनुष्य जाति एक है, इस दृष्टि से अद्वैत को माना जा सकता है किंतु प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र है. वैसे ही प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है, परमात्मा के तुल्य शक्ति रखती है. वह विकास करती है तो एक रोज परमात्मा बन जाती है तो विभेद की स्थिति नहीं रहती. इस प्रकार प्रत्येक आत्मा परमात्मा का रूप लिये हुए है अत : जैन दर्शन अपेक्षा दृष्टि से एक हैं. द्वैत एवं अद्वैत दोनों में विश्वास रखता है. अद्वैत की दृष्टि से सभी आत्माएं आत्मत्व की दृष्टि से एक हैं. और द्वैत की दृष्टि से सभी का अस्तित्व भिन्न भिन्न है.

प्रश्न 37 : नवकार मंत्र में पांच पद हैं. सिर्फ पांचवें पद में ही णमो लोए सव्व साहुणं क्यों कहा, बाकी चार में सव्व शब्द क्यों नहीं कहा. क्रिया पालने में ढीले होने पर वंदना करने का मना किया जाता है. मार्ग में कोई भी साधु मिले, वंदना करना या नहीं ?

उत्तर : इस प्रश्न को कुछ विस्तार से समझने का प्रयास करें– व्याकरण शास्त्र में समास प्रकरण में यह नियम है कि–"द्वंद्वादौ द्वंद्वान्तेव श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभि संबंध्यते" अर्थात् द्वंद्व समास में पद के आदि में और अंत में रहा हुआ पद सर्वत्र संयुक्त होता है.

जैसे राम, श्याम, दिनेश और महेश को कहो. यहां और शब्द एक जगह आया है किंतु इसका संबंध सभी जगह है, जैसे राम और श्याम और दिनेश आदि....। ठीक इसी प्रकार पंचम पद से आगत सव्व शब्द उपर के पदों में भी संयुक्त होता है दूसरी बात प्रश्नकर्ता को यह ज्ञात होगा ही कि स्कूल में जहां 50 अध्यापक बैठे हों उन में प्रिंसिपल प्रोफेसर. आदि अलग अलग कोटि के

अध्यापक बैठे हैं. कोई व्यक्ति उनमें से दो चार का नाम ले कर नमस्कार करेगा. उनके बाद सब का नाम लेने में देर लगेगी इसलिए कहेगा कि सब गुरुजनों को नमस्कार है. अध्यापक की योग्यता रखनेवालों को नमस्कार है. जो योग्यता नहीं रखते हैं उनको नमस्कार नहीं है. वैसे ही जहां साधु का रूप है वह शरीर से नहीं, पोशाक से नहीं, पोशाक तो पहचान के लिए है. लेकिन परिपूर्ण अहिंसा, परिपूर्ण सत्य, परिपूर्ण अचौर्य परिपूर्ण ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करनेवाले हैं अर्थात् छोटे प्राणी की जीव हिंसा नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, बिना आज्ञा के वस्तु नहीं लेना, जगत की स्त्री जाति को माता और बहिन के समान समझना. अपरिग्रह में रुपये पैसे टिकिट आदि अपने पास नहीं रखना. धातु मात्र की कोई चीज नहीं रखना. चश्मे में भी धातु या लोहे की कील न हो. अपरिग्रह का पूर्ण आदर्श जिनमें है वह साधु है, भगवान ने उसे साधु बताया है. उनसे विशेष योग्यता वाले साधु उपाध्याय होते हैं. उनसे अधिक योग्यतावाले आचार्य. आचार्य से ऊपर बढ़ते हैं तो अरिहंत होते हैं और उसके बाद सिद्ध बन जाते हैं ये पांच पद हैं. जैसे सब मास्टरों को नमस्कार है वैसे ही सव्व साहूणं में सब साधुओं को नमस्कार है. चार पदों में अलग अलग नमस्कार कर दिया. नमो लोए सव्व साहूणं पांच महाव्रतों के धारक जो साधु पद के योग्य हैं उन सब को नमस्कार है और जो साधु पद के योग्य नहीं है उनको नमस्कार नहीं किया. साधना की पहचान के आधार पर नमस्कार है.

प्रश्न ३४ : जिज्ञासु श्री अशोक बाफणा :

कहते हैं कि पर्युषण पर्व व संवत्सरी शास्त्रों पर आधारित है. क्या शास्त्र हमें भिन्न भिन्न पर्युषण मनाने का निर्देश देते हैं या हम ही शास्त्रों को सही ढंग से नहीं समझ पाये हैं?

उत्तर : प्रश्न मौलिक है. संवत्सरी का दिन आत्मशुद्धि का है. यह वर्ष में एक बार आता है. शास्त्रों में इतना उल्लेख है कि जिस दिन से चातुर्मास प्रारंभ हो उस दिन से एक महिना बीस रात्र

व्यतीत होने पर संवत्सरी मनावें. घड़ियों के अनुसार 49 वां या 50 वां दिन आता है; यह शास्त्रीय उल्लेख है. शास्त्रीय गणित जितना चाहिए उतना उपलब्ध नहीं हुआ. अतः अजमेर बृहत सम्मेलन में हिंदुस्तान के प्रमुख संतों ने निर्णय किया कि चातुर्मास बैठने के पश्चात् चाहे दो श्रावण हो या दो भादवा हो संवत्सरी पर्व 50 वें दिन मनाना चाहिए जो कि दो श्रावण एवं दो भाद्र पद होने पर प्रथम भाद्र पद में आयेगा. जिससे एक नियम हो जाय. समाज एक रूप बना रहे.

भगवान महावीर की निर्वाण शताब्दी के प्रसंग से जब यह प्रसंग से जब यह प्रश्न चला जब मैं सरदार शहर में था उस समय संपतमलजी गदिया मेरे पास आये और उन्होंने पूछा कि निर्वाण शताब्दि के संबंध में आपका क्या कार्यक्रम है. मैंने कहा कि हमने तो पूरा जीवन ही समर्पित कर दिया है और उस पर चल रहे हैं. फिर भी मेरा एक सुझाव है कि सारा जैन समाज-स्थानकवासी, तेरापंथी, मूर्तिपूजक एवं दिगंबर सब एकरोज संवत्सरी मनाना निश्चित कर लें तो अच्छा रहेगा. इसमें जो तिथि का भेद आता है उसको सब मिलकर एक ही रोज के लिए निर्णय कर लें. तो 25 वीं निर्वाण शताब्दी को यह बहुत बड़ी उपलब्धि हो सकती है. इस पर उन्होंने पूछा कि इसमें आप क्या योगदान देना चाहते हैं ?

मैंने कहा कि मेरा पूरा योगदान मिलेगा. सारी समाज मिल कर जिसे रोज भी एक संवत्सरी निश्चित कर देगी, मैं बिना किसी शर्त के उस रोज सम्वत्सरी मनाने तत्पर हूं. मुझे पूछने की भी आवश्यकता नहीं है.

उनको ऐसा लगा कि जैसे दूसरे क्षेत्र के व्यक्ति बोलते कुछ हैं और करते कुछ हैं ऐसा ही यहां होगा. इस उन्होंने पूछा कि क्या यह बात शासकीय स्तर की मीटिंग जयपुर में होनेवाली है, उसमें रख दी जाय ?

मैंने कहा कि जरूर रख दीजिए, मेरी तरफ से एकरूपता है. वे

जयपुर गये और वहां पर एक कमेटी राज्य सरकार की ओर से बनी हुई थी उस कमेटी के सभ्यों के सामने यह बात रखी. सब खुश हुए.

उन्होंने प्रयत्न किया होगा. लेकिन जब वे मेरे पास वापस आये तो मैंने पूछा कि संवत्सरी के बारे में क्या हुआ? उन्होंने कहा कि जैसा आपने आश्वासन दिया वैसी उदारता सभी दिखाते तो एक दिन निश्चित होने में देर नहीं लगती, लेकिन कई लोग तर्क करते हैं, ऊंचे नीचे होते हैं. इसलिए एकदिन निश्चित नहीं हो सका. मैंने कहा कि आप प्रयत्न करते रहिए मेरी तरफ से छूट है.

सारा जैन समाज एकदिन संवत्सरी मनाने में एक मत हो जाता है. तो यह सभी दृष्टियों से एक बड़ी उपलब्धि होगी. मैं सदा-सदा इसके लिए तत्पर रहा हूं और रहूंगा.

सरदार शहर की इस घटना से लगभग चार वर्ष पश्चात् जोधपुर वर्षावास में भारत जैन महामंडल का शिष्टमंडल एवं कलकत्ता से प्रकाशित दैनिक विश्व मित्र के संपादक आदि उपस्थित हुए, उस समय जब उन्होंने पुन: संवत्सरी एकता विषयक राय पूछी तो मैंने कहा कि मैं सरदार शहर में अपने मुक्त विचार व्यक्त कर चुका हूं. इसके अतिरिक्त यदि पूरा जैन समाज द्वारा विक्रम संवत् के स्थान पर शक संवत् जो कि राष्ट्रीय संवत है. को मान्यता दे दी जाय तो भी इस समस्या का समाधान हो सकता है. क्योंकि शक संवत ईस्वी सन् के समान तारीखों के आधार पर चलता है. जैसे वीर निर्वाण की कुछ शताब्दियों पश्चात् ही विक्रम संवत को अपनाया गया. इसी प्रकार शक संवत को भी अपनाया जा सकता है. प्रारंभ में कुछ दिन कठिनाईयां अटपटा पन लग सकता है किंतु शनै: शनै: यह विक्रम संवत के समान ही व्यवस्थित बन सकता है.

इस पर आगंतुक सदस्य कहने लगे कि यह तो एक नया ही मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ है. इस रूप में मैं मेरी स्थिति से पूरा स्पष्ट कर रहा हूं.

卐

दिनांक 29-7-84

प्रश्न : 39 : जिज्ञासु श्री अशोककुमार खाविया :

जैन धर्म में मनोविज्ञान का क्या स्थान है ?

उत्तर : भाई खाविया एक चिंतनशील वुद्धि जीवी युवक हैं. अपने चिंतन के अनुरुप ही इन्होंने एक गंभीर प्रश्न प्रस्तुत किया है. स्पष्ट शब्दों में कहूं तो जैन दर्शन में जो मनोविज्ञान का स्थान है, वह इतर दर्शनों में नहीं है. मनोविज्ञान का अर्थ है मन की समस्त वृत्तियों का विज्ञान, जिन्हें हम सामान्य मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान एवं परा मनोविज्ञान कहते हैं उन सव का विश्लेषनात्मकज्ञान मनोविज्ञान है. जैन दर्शन में मतिज्ञान के जो मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता और अभिनिवोध आदि पर्याय वताये गये हैं, उनमें उपर्युक्त तीनों प्रकार के मनोविज्ञानों का अंतर्भाव हो जाता है.

मनोविज्ञान शब्द भले ही हमें आधुनिक लगता है. लेकिन जैन तत्वदर्शन में मन के विज्ञान का विश्लेषण वहुत गहराई तक पहुंचा है. जैन तत्व दर्शन में वाल संस्कार से लेकर युवा चेतना एवं वृद्ध व्यवस्था तक की समस्त समस्याओं को मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में समाहित किया गया है. अतः यह निर्विवाद रुप से कहा जा सकता है कि जैन दर्शन मनोवैज्ञानिक एवं उससे ऊपर उठकर आत्म विज्ञानी दर्शन है.

प्रश्न 40 : जिज्ञासु : मनोहर जैन :

क्या अपना स्थानकवासी समाज अखिल भारतीय स्तर पर एक हो सकता है ? इसमें आपका क्या योगदान हो सकता है और इसके लिए आप वर्तमान में क्या-क्या प्रयत्न कर रहे हैं ?

उत्तर : प्रश्न सामयिक है, उत्तर के पूर्व जरा स्थानकवासी शब्द के अभिप्राय को समझ लें. यह स्थानकवासी संज्ञा तो वाद में वन गई है. वस्तुतः स्थानकवासी समाज का मूल नाम साधुमार्गी है. इससे समग्र जैन समाज का ग्रहण हो जाता है. साधु मार्ग

अर्थात सुंदर मार्ग जो साधक साधु जीवन की भूमिका के आचार-विचार को मन, वाणी और कर्म से एक होकर अनुसरण करता है. दुनिया से स्वल्प ले कर और अधिक से अधिक जन-कल्याण हेतु समता का प्रचार प्रसार करता है. अपनी मर्यादा के अनुसार सीमा में रहता हुआ जितना योगदान कर सके करता है, वह साधक साधुमार्ग का अनुसर्ता कहलाता है. इसी का उपनाम स्थानकवासी है. इस प्रश्न के मूल पहलू पर आवें-स्थानकवासी समाज की एकता की दृष्टि से भी बहुत प्रयत्न हुए हैं और वर्तमान में भी चल रहे हैं.

संवत 2009 में सादड़ी सम्मेलन में स्थानकवासी समाज के अधिसंख्य प्रतिनिधि एकत्रित हुए थे। उन्होंने अपनी मर्यादा के अनुकूल जो आचार संहिता सर्वानुमति से बनाई उस पर सभी समाज के अग्रणी साधु आरूढ़ हो जायें तो आज भी एकीकरण संभव है. मैं इस उद्देश्य को ले कर चल रहा हूं और जहां भी जाता हूं प्रायः इसे दोहराता हूं. समता समाज रचना के सिद्धांत पर सब एक मत हो जायें तो एकता हो सकती है. इसके लिए प्रयास पहले भी चल रहे थे और आज भी चल रहे हैं. मैंने इसकी भूमिका के रूप में सांवत्सरिक एकता के लिए पहल की है, जिसका स्पष्टीकरण मैं कई बार कर चुका हूं.

प्रश्न 41 : जिज्ञासु श्री कोमल जैन :

एक आदमी अपनी धर्मपत्नी का देहांत होने के बाद दूसरा विवाह कर सकता है और करता है. जब कि जैन [illegible] एक लड़की उसकी शादी के बाद एक महीने में उसका पति मर जाता है, तो उसको सारी जिंदगी विधवा बन कर [illegible] पड़ती है, जैन धर्म इस विषय में क्या कहता है ?

उत्तर : प्रश्न सामाजिक होते हुए भी [illegible] है. आज की परिस्थितियों एवं प्रसंगों में यह [illegible] है. फिर इन भावनाओं से भिन्न विचार हो रहे हैं. इस स्थिति में विचार के

संबंध में प्रश्न उठना सहज है. किंतु यहां विचारणीय इतना ही है कि धर्म-दर्शन ईस विषय में क्या कहता है ?

इस बात को आप अच्छी तरह समझ लें कि धर्म का उद्देश्य है आत्म कल्याण की प्रेरणा देना एवं उसके विधि-विधानों को प्रस्तुत करना. विवाह संबंध एक सामाजिक रीति रिवाज है. अध्यात्मदर्शन संयम-ब्रह्मचर्य की प्रेरणा देता है. व्यक्ति को अधिक-से-अधिक संयमित रहना चाहिए.

इस दृष्टि से धर्म न तो विधुर विवाह की अनुमति देता है और न विधवा विवाह की. धर्म की दृष्टि से तो विधुर को भी पुनर्विवाह नहीं करके ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और विधवा को भी.

चूंकि प्रथम विवाह के समय ही विवाहकर्ता व्यक्ति (नारी-पुरुष) जगत् साक्षी से यह प्रतिज्ञा करता है कि संबंधित होने वाले एक व्यक्ति के अतिरिक्त संसार के समस्त पुरुष-नारियों को भाई बहिन की दृष्टि से देखूंगा. अब आप ही सोचिए कि दूसरा विवाह करनेवाला क्या भाई बहन से विवाह नहीं कर रहा है ?

प्रश्न. 42 : जज्ञासु मीना देसरड़ा :

यदि विश्वधर्म सम्मेलन का आयोजन विदेश यानि यूरोपीय देश में होता है और आपको जैन धर्म का प्रतिनिधित्व करने का आमंत्रण मिलता है तो आप जायेंगे या नहीं ? यदि नहीं जायेंगे तो क्यों ? क्या आप आपके किसी शिष्य को भेजेंगे ? या किसी नवयुवक को जो दीक्षा में नहीं है, तैयार करके भेजेंगे ?

उत्तर : प्रश्न मौलिक है. बहिन को चिंतन करना चाहिए कि जब हमने जगत साक्षी से परिपूर्ण अहिंसा का व्रत अंगीकार किया है परिपूर्ण अपरिग्रह की मर्यादा में चल रहे हैं, तो ऐसी स्थिति में भगवान् महावीर ने कहा कि तुम परिपूर्ण अहिंसक तभी रह सकोगे. जबकि छोटे से छोटे जीव का उपमर्दन स्वयं करो नहीं, करते को

अच्छा समझो नहीं. यह हमारी प्रतिज्ञा है. इसका पालन करने के लिए हिंसा करके हम धर्म प्रचार नहीं कर सकते. इसीलिए हमने कपड़ा मुंह पर बांध रखा है. इससे वायुकाय के जीवों की रक्षा कर सकते हैं. यदि हम जीवों को, जो कि अपेक्षा से हमारे स्वपरिवार के सदस्य हैं, काल हनन करते हुए उपदेश दें तो वह संयमी जीवन में दोष लगाना होगा. विदेश जाने के लिए निश्चित रूप से हिंसा का प्रसंग आयेगा, वाहन में जाना पड़ेगा. इस स्थिति में हिंसा करके उपदेश नहीं दे सकते. विदेश में जाने की बात तो बहुत बड़ी है, लेकिन जहां पर हम ठहरे हुए हैं, वहां से यहां पांडाल तक आना है और बरसात की छोटी छोटी बूंदें गिर रही हैं, तो हम आ नहीं सकते क्योंकि इससे पानी के जीवों की हिंसा होती है. विदेश जाने में तो बहुत बड़ी हिंसा का प्रसंग है. परिपूर्ण समता भाव की साधना करनेवाला साधक अपनी मर्यादा में रह कर ही प्रचार-प्रसार कर सकता है. जिन्होंने प्रण नहीं लिया है और जो विद्वान हैं, जीवादि तत्त्वों की अच्छी जानकारी रखते हैं, वे अपनी मर्यादा समझ कर विदेशों में प्रचार-प्रसार का कार्य कर सकते हैं. हम अपनी मर्यादा में रह कर ही प्रचार-प्रसार का कार्य कर सकते हैं.

प्रश्न 43 : जिज्ञासु : श्री रायचंद मगनलाल शाह :

भूतकालमां कदीपण न थई एटली भयंकर हिंसा वर्तमान कालमां भारतमां तथा विश्वमां थई रही छे. भारतनी मांसाहारी प्रजानी जरूरियात उपरांत परदेशियोना पोषण माटे भारतमांथी पशु हिंसा माटे निकास करवामां आवे छे. सरकार एने प्रोत्साहन आपे छे, एने कानूनथी रोकवा माटे कोई उपाय बतावशो कृपा करशो.

उत्तर : आपका प्रश्न अहिंसा से संबंधित एवं मौलिक है. आज विश्व में हिंसक भावनाओं का जिस प्रकार विस्तार हो रहा है, इस स्थिति में अहिंसा प्रेमियों के मानस में व्याकुलता उत्पन्न होना स्वाभाविक है. रहा सवाल इसे रोकने का, तो इसके लिए व्यापक

स्तर पर वातावरण बनाने की आवश्यकता है. जनता को पुण्य और पाप के अतिरिक्त मांसाहार से होनेवाली हानियाँ समझाई जाय, शाकाहार के लाभ और वह मानव प्रकृति के अनुकूल है. यह समझाया जाय. जनता जागृत हो जाती है तो सरकार, जो जनता की ही है. उसे अपने आप तैयार होना पड़ेगा. जिस देशमें अहिंसा की बदौलत स्वाधीनता मिली हो उसमें हिंसा बढ़े यह अत्यंत विचारणीय ही नहीं चिंताजनक भी है.

प्रश्न 44 जिज्ञासु : श्री संपत छल्लानी :

जैन धर्म सर्वोच्च धर्म होते हुए भी विश्व में नहीं फैल सका क्या इसके लिए हमारी आपसी फूट को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है.

उत्तर : वास्तव में जैन धर्म के सिद्धांत सर्वोत्तम हैं, किंतु इसका अधिक प्रचार नहीं हो पाना इसकी सर्वोत्तमता में संदेह उत्पन्न नहीं कर सकता है. यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि सर्वोत्तम अथवा श्रेष्ठ तत्त्वों की उपलब्धि कम ही हुआ करती है. विश्व में कंकड, पत्थर अधिक होंगे किंतु बहुमूल्य जवाहरात कितने होंगे ? डालडा के मुकाबले शुद्ध घी कितनी मात्रा में मिलेगा ?

इसके उपरांत भी जैन धर्म के यथोचित मात्रा में प्रचारित नहीं होने में आपसी मत भेदों को भी कारण ठहराया जा सकता है. किंतु एक कारण यह भी है कि यह आप व्यापारियों के हाथ में आ गया, जिनहें धनोपार्जन के अतिरिक्त धर्म के प्रचार प्रसार का अवकाश ही नहीं मिलता है.

प्रश्न. 45 : जिज्ञासु श्री अशोक ओस्तवाल :

ध्यान योग और केवल ज्ञान की अवस्था में क्या फर्क है ? ध्यान योग गृहस्थी को होता है या नहीं ? होता है तो किन परिस्थितियों में और यदि नहीं तो क्यों ?

उत्तर : ध्यान योग एवं केवल ज्ञान का संबंध साध्य साधन भाव का माना जा सकता है. ध्यान योग की साधना जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है तो केवल ज्ञान हो जाता है.

प्रश्न का दूसरा पहलू है—गृहस्थ जीवन में ध्यान योग होता है या नहीं शास्त्रकारों ने ध्यान के आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल चार भेद बताये हैं. इनमें दो अप्रशस्त एवं दो प्रशस्त हैं. प्रशस्त ध्यानों में से धर्म ध्यान श्रावक को हो सकता है. इस अर्थ में श्रावक को ध्यान योग हो सकता है. यह एक अलग बात है कि गृहस्थ अवस्था में रहता हुआ व्यक्ति कितनी मात्रा में ध्यान योग कर सकता है, कितना आगे बढ़ सकता है, कितनी मात्रा में सत्य और अहिंसा का पालन कर सकता है. यह विचारणीय है. जितनी मात्रा में अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह का पालन कर सकता है उतनी ही मात्रा में वह आगे बढ़ सकता है. गृहस्थावस्था में रहता हुआ व्यक्ति सर्वथा हिंसा का त्याग नहीं कर सकता. सर्वथा सत्य का पालन नहीं कर सकता. और इनका पालन किये बिना ध्यान योग की साधना आगे नहीं बढ़ सकती. गृहस्थाश्रम में रहता हुआ व्यक्ति ध्यान योग की साधना कर सकता है लेकिन केवल ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता. एम. ए. की डिग्री लेनी है तो उसके लिए उतना ही अध्ययन करना होगा. पांचवीं कक्षा पास करनी है तो पांचवीं कक्षा का अध्ययन करना होगा. और वह क्रमशः आगे बढ़ता हुआ एक दिन एम. ए. की डिग्री भी ले सकेगा. इसी प्रकार गुणस्थान की अपेक्षा से श्रावक की पांचवीं कक्षा से ऊपर उठकर साधुत्व की उच्च कक्षाओं में प्रवेश पर ही केवल ज्ञान हो सकता है.

प्रश्न : केवल ज्ञान परिपूर्ण अहिंसा के बिना नहीं हो सकता तो भरत चक्रवर्ती को कैसे हो गया ?

उत्तर : भरत चक्रवर्ती की ध्यान की धारा अंतर्मुहूर्त में अहिंसा के साथ आगे बढ़ती गई और वे 13 वे गुणस्थान में आ गये.

स्तर पर वातावरण बनाने की आवश्यकता है. जनता को पुण्य और पाप के अतिरिक्त मांसाहार से होनेवाली हानियाँ समझाई जाय, शाकाहार के लाभ और वह मानव प्रकृति के अनुकूल है. यह समझाया जाय. जनता जागृत हो जाती है तो सरकार, जो जनता की ही है. उसे अपने आप तैयार होना पड़ेगा. जिस देशमें अहिंसा की बदौलत स्वाधीनता मिली हो उसमें हिंसा बढ़े यह अत्यंत विचारणीय ही नहीं चिंताजनक भी है.

प्रश्न 44 जिज्ञासु : श्री संपत छल्लानी :

जैन धर्म सर्वोच्च धर्म होते हुए भी विश्व में नहीं फैल सका क्या इसके लिए हमारी आपसी फूट को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है.

उत्तर : वास्तव में जैन धर्म के सिद्धांत सर्वोत्तम हैं, किंतु इसका अधिक प्रचार नहीं हो पाना इसकी सर्वोत्तमता में संदेह उत्पन्न नहीं कर सकता है. यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि सर्वोत्तम अथवा श्रेष्ठ तत्त्वों की उपलब्धि कम ही हुआ करती है. विश्व में कंकड, पत्थर अधिक होंगे किंतु बहुमूल्य जवाहरात कितने होंगे ? डालडा के मुकाबले शुद्ध घी कितनी मात्रा में मिलेगा ?

इसके उपरांत भी जैन धर्म के यथोचित मात्रा में प्रचारित नहीं होने में आपसी मत भेदों को भी कारण ठहराया जा सकता है. किंतु एक कारण यह भी है कि यह आप व्यापारियों के हाथ में आ गया, जिनहें धनोपार्जन के अतिरिक्त धर्म के प्रचार प्रसार का अवकाश ही नहीं मिलता है.

प्रश्न. 45 : जिज्ञासु श्री अशोक ओस्तवाल :

ध्यान योग और केवल ज्ञान की अवस्था में क्या फर्क है ? ध्यान योग गृहस्थी को होता है या नहीं ? होता है तो किन परिस्थितियों में और यदि नहीं तो क्यों ?

उत्तर : ध्यान योग एवं केवल ज्ञान का संबंध साध्य साधन भाव का माना जा सकता है. ध्यान योग की साधना जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है तो केवल ज्ञान हो जाता है.

प्रश्न का दूसरा पहलू है—गृहस्थ जीवन में ध्यान योग होता है या नहीं शास्त्रोकारों ने ध्यान के आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल चार भेद बताये हैं. इनमें दो अप्रशस्त एवं दो प्रशस्त हैं. प्रशस्त ध्यानों में से धर्म ध्यान श्रावक को हो सकता है. इस अर्थ में श्रावक को ध्यान योग हो सकता है. यह एक अलग बात है कि गृहस्थ अवस्था में रहता हुआ व्यक्ति कितनी मात्रा में ध्यान योग कर सकता है, कितना आगे बढ़ सकता है, कितनी मात्रा में सत्य और अहिसा का पालन कर सकता है. यह विचारणीय है. जितनी मात्रा में अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह का पालन कर सकता है उतनी ही मात्रा में वह आगे बढ़ सकता है. गृहस्थावस्था में रहता हुआ व्यक्ति सर्वथा हिंसा का त्याग नहीं कर सकता. सर्वथा सत्य का पालन नहीं कर सकता. और इनका पालन किये बिना ध्यान योग की साधना आगे नहीं बढ़ सकती. गृहस्थाश्रम में रहता हुआ व्यक्ति ध्यान योग की साधना कर सकता है लेकिन केवल ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता. एम. ए. की डिग्री लेनी है तो उसके लिए उतना ही अध्ययन करना होगा. पांचवीं कक्षा पास करनी है तो पाचवीं कक्षा का अध्ययन करना होगा. और वह क्रमशः आगे बढ़ता हुआ एक दिन एम. ए. की डिग्री भी ले सकेगा. इसी प्रकार गुणस्थान की अपेक्षा से श्रावक की पांचवी कक्षा से ऊपर उठकर साधुत्व की उच्च कक्षाओं में प्रवेश पर ही केवल ज्ञान हो सकता है.

प्रश्न : केवल ज्ञान परिपूर्ण अहिंसा के बिना नहीं हो सकता तो भरत चक्रवर्ती को कैसे हो गया ?

उत्तर : भरत चक्रवर्ती की ज्ञान की धारा अंतर्मुहूर्त में अहिंसा के साथ आगे बढती गई और वे 13 वें गुणस्थान में आ गये.

केवलज्ञान होने के बाद फिर वे गृहस्थ में नहीं रहे. वैसी पराकाष्ठा की स्थिति आने पर ही केवलज्ञान होगा. भरत के साथ जब तक राज्य की व्यवस्था थी तब तक केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सके. उनके हाथ की अंगुली से अंगुठी गिरी, मोह ममत्व छूटा. शरीर का भी ममत्व छूटा और समता प्राप्त हुई, और वे भाव से साधु हो गए. वैसी स्थिति आने पर ही केवलज्ञान हुआ.

प्रश्न 47 : जिज्ञासु श्री राजमल खटोड़ ?

महावीर भगवान के समय से ही आज तक साध्वीजी की संख्या अधिक है, जब कि संत समुदाय कम है, इसका क्या कारण है?

उत्तर : भाई राजमल जी को मालूम है कि बहिनों का हृदय वात्सल्य भावना से अधिक परिपूर्ण होता है धर्म का संबंध हृदय की सरलता एवं निर्मलता से अधिक होता है और वह सरलता–नारी हृदय में अधिक पाई जाती है इसीलिए वे धर्म भावनाओं में भी आगे रहती है. बहिनों में कोमलता और वात्सल्य भाव कम हो जाय और पुरुषों में अधिक हो जाय तो पुरुष आगे नंबर ले सकते हैं. पुरुषों में प्रायः वैसा वात्सल्य भाव नहीं है पुरुषों में कठोरता है. बहिनों में सम भाव की मात्रा भी अधिक होती है. ये अपनी साधना के प्रति जागरुक रहती है, उनका स्वभाव वात्सल्य भाव से युक्त रहता है. पुरुष बहिनों जैसा वात्सल्य भाव नहीं रख सकते, इसलिए बहिनें धर्म ध्यान में आगे रहती है. आध्यात्मिक जीवन में भी उनसे अधिक सहयोग मिलता है. यही कारण हैं कि उनकी संख्या साधुओं से अधिक हैं.

प्रश्न : 48 : जिज्ञासु : श्री एस. एस. जैन :

क्या साधु समाज देश और समाज के पहलुओं से परे रह सकता है. अगर नहीं तो वह किस हद व सीमा तक अपने आपको सम्मिलित कर सकता है.

उत्तर : वकील साहब का प्रश्न मौलिक है. साधु, जिसने पूर्ण साधुता को समझा है, जो परिपूर्ण मर्यादा में रहते हुए व्यक्ति, समाज, परिवार और राष्ट्र में भावात्मक एकता और जनकल्याण के कार्यों में प्राण फूंक सकता है. वह समाज एवं देश से अलग नहीं रहता है. वह एक सीमा में रहता हुआ समाज से अनुबद्ध रहता है. तथापि वह व्यक्तिगत जीवन की दृष्टि से अलग भी होता है. एक बगीचे या फुलवारी में पुष्प अपने आप में सुगंध भर लेता है वह अपनी स्थिति से अलग हट कर प्रचार प्रसार के लिए नहीं जाता, किसी समाज या पार्टी के बीच में नहीं जाता. जिसको भी सुगंध और आक्सीजन की आवश्यकता है वह उसके समीप जाकर आक्सीजन लेकर अपने प्राणों की सुरक्षा कर सकता है. वह पुष्प जिस प्रकार व्यक्ति समाज और पार्टी को सुगंध का दान देता है, प्राण-दान देता है. वह समाज, व्यक्ति और राष्ट्र से परे होते हुए भी अपने मौलिक स्वरुप के साथ संबंधित है. वैसे ही संत समाज पूर्ण सुगंध से भरा हुआ है. वह अपनी आत्मिक साधना में रत रहता है समता मय सुगंध युक्त है. उनके पास जानेवालों में शांति का संचार होता है. इस प्रकार संत वर्ग समाज से संबंधित भी हैं और अलग भी.

प्रश्न 49 : जिज्ञासु : श्री [illegible] :

जैसा कि केवली भगवान किसी व्यक्ति का भविष्य बतला देते हैं, जैसा कि कुछ महान व्यक्तियों का मोक्ष जाना निश्चित है. इसी प्रकार हमारा भी भविष्य पूर्व निश्चित है तो फिर हमें पुरुषार्थ करने और धर्म करने की क्या जरूरत है?

उत्तर : आपका प्रश्न अच्छा है. केवलज्ञानियों की बात [illegible] में लेना. पहले आप चिंतन करिये कि भोजन करने से भूख [illegible] होती है और भोजन से शरीर को ताकत मिलती है. यह [illegible] है. भोजन करेंगे तो भूख मिटेगी. कोई यह सोचे कि [illegible]

नहीं हिलाने है, चुपचाप कमरे में बैठ जाऊं, वह चुपचाप बैठ जाएंगा तो अन्न अपने आप भूख मिटा देगा या हाथ पैर हिलाने पड़ेंगे? पुरुषार्थ करना पड़ेगा? भूख मिटाने की ताकत अन्न में है, लेकिन हाथ पैर हिला कर भोजन करना पड़ेगा. कदाचित् हाथ पैर नहीं हिलावे और माता से भोजन देने के लिए कहे तो माता का हृदय वात्सल्य भावना से ओतप्रोत होता है, अतः वह सीधा भोजन ला कर पुत्र के सामने रख दे तो क्या इतने मात्र से उसकी भूख मिट जायेगी या पुत्र को कष्ट करना पड़ेगा. और थाली में से उठा कर मुंह में रखना पडेगा? कदाचित् वह स्वयं नवाला मुंह में नहीं ले और माता से कहे, माता अपने हाथ से उठाकर क्या उसके मुंह में रखने को तैयार हो जाय तो भी मुंह खोलने का पुरुषार्थ तो उसको ही करना पड़ेगा. यदि मुंह में क्या चला गया तो चबाने का पुरुषार्थ तो उसे ही करना पड़ेगा. चबाने का पुरुषार्थ करेगा—आंतरिक जठराग्नि पुरुषार्थ करेंगी तभी रस बनेगा और रस बनने पर ताकत आयेगी.

वही स्थिति आध्यात्मि जीवन के साथ है. केवल ज्ञानी पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का अवलोकन करते हैं. वे यह स्पष्ट देखते—जानते है कि अमुक व्यक्ति अमुक पुरुषार्थ करेगा, उसे अमुक अमुक उपलब्धि होगी। अमुक व्यक्ति पुरुषार्थ हीन हो कर बैठा रहेगा, उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा. अतः उनके ज्ञान से हमारा पुरुषार्थ प्रभावित नहीं होता है. हमें क्या पता कि केवलियों की दृष्टि में हमारा पुरुषार्थी जीवन झलक रहा है या अपुराषार्थी? अतः पुरुषार्थ ही सब कुछ है. आप पुरुषार्थ से शक्ति का विकास कर सकते हैं.

पुरुषार्थ ही भाग्य बनाता है और पुरुषार्थ से ही शुभाशुभ फल मिलता है, इसलिए भाग्य भरोसे नहीं रह कर पुरुषार्थ एवं धर्म साधना करने की आवश्यकता है. क्योंकि समस्त तीर्थकरों ने भी पुरुषार्थ पर ही बल दिया है—यथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पुरुषाकारपराक्रम.

प्रश्न 50 : जिज्ञासु : श्री अनिल उत्तमचंदजी खिवसरा :

आत्मा इस जीवन में जो कर्म बांधता है वे सब कर्म इसी जीवन में क्यों नहीं भोगता है। उसे अगले जन्म में या और भी अगले जन्म में क्यों भोगना पडता है।

उत्तर : कर्म बंध के संबंध में एक बात समझ लें कि कर्मों का बंधन भावनाओं के अनुसार होता है. उनकी काल मर्यादा का निर्धारण कषाय के तारतम्य पर निर्भर है. यदि सामान्य कषाय के अनुसार कर्म बंध हुआ है तो उसकी स्थिति अल्प कालिक होगी और तीव्र कषाय के द्वारा दीर्घ कालिक, जो कि अनेक जन्मों तक भी टिक सकती है. एक व्यावहारिक उदाहरण लें–किसान एरंड, मक्का, जवार, गेहूं, बाजरा आदि बोता है उसका फल अल्पकाल में ले सकता है, लेकिन एक व्यक्ति आम का बीज बोता है या आम का वृक्ष लगाता है उसको फल अनेक वर्षों बाद मिलता है. वैसे ही जीवन में जिस प्रकार के कर्म जिसने बांधे हैं, जिन भावों के साथ बंध हैं उनका फल भी उसको आगे चल कर मिलता है. निकाचित कर्मों का फल अनेक जिंदगियों के बाद भी भोगना पड़ता है.

प्रश्न : 51 : जिज्ञासु श्री राजेंद्र डूंगरवाल :

वैज्ञानिकों का दावा है कि वे चंद्रमा पर पहुचे है, लेकिन शास्त्रों में मेरुपर्वत की ऊंचाई उससे ज्यादा है. कौन सही है और कैसे ?

उत्तर : यह प्रश्न युगीन एवं आगमिक संदर्भों से अनुबंधित है. इस विषय में एक बात समझ लेना आवश्यक है कि जैनागमों का प्रमुख प्रतिपाद्य मुक्ति मार्ग है. भूगोल खगोल संबंधि वर्णन वहां प्रासंगिक रूप में ही हुआ है. चूंकि इस वर्णन से आत्म साधना अथवा कल्याण का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है अतः इस विषय पर अधिक चर्चा निरर्थक ही होगी. स्थूल रूप से आगमों में चंद्र को सूर्य से उपर माना गया है और अनेक चंद्र एवं अनेक सूर्य माने

गए है. किंतु आज आगमिक गणित की कुंजी छ उपलब्ध नहीं है. इधर विज्ञान भी अनेक चंद्र मानने के पक्ष में आ गया है. किंतु यह स्मरण रहे कि विज्ञान सदा परिवर्तन शील रहा है. उसकी नई खौजे पुरानी की नकारती जाती है, अतः उसे भी एकांत सत्य मान लेना भारी भूल होगी.

चंद्र पर पहुंचने के विषय में भी अमी सभी वैज्ञानिक एक मत नहीं हुए है कोई उसे चंद्र मानते है और कोइ नहीं.

सन १९७५ में उदयपुर में एक सौर वैधशाला का उद्घाटन करने के लिए तत्कालीन उप राष्ट्रपति बी. डी. जत्ती आये थे उस समय राजस्थान एवं गुजरात के अनेक मिनिष्टर भी उपस्थित्त थे. उस समय वहां एक पेम्फलेट वितरित हुआ. जिसमें यह स्पष्ट घोषणां थी कि मैसाणा रिसर्च इंस्टटीटयूट वैज्ञानिकोंका यह दावा है कि अमेरीकाने जो चंद्रमा पर जाने की घोषणा की वह मिथ्या है. दूसरे दिन उदयपुर के स्थानीय दैनिक पत्रो में तथा नव भारत टाइम्स में उस पेम्पलेट को ज्यों का त्यों प्रकाशित किया. यही नहीं नव भारत टाइम्स ने उस पर टिप्पणी भी कि इस पर्चे ने खगोल शास्त्रियो में खलबली मचा दी है.

१. नवभारत टाइम्स में मुद्रित पर्चे की अविकल कॉपी यहां प्रस्तुत है.
—संपादक

क्या चांद पर अपोलो उतरा?
सौर वैद्यशाला के उद्घाटन पर बटे पर्चे से खलबली

देश के विभिन्न भागों तथा आस्ट्रेलिया से अधि वैज्ञानिक सौर भौतिकी अनुसंधान पर संगोष्ठी में भाग लेते हैं. इस अवसर पर महेसाणां की 'दि अर्थ रोटेशन रिसर्च इंस्टीटयूट' की ओर से एक पर्चा वितरित किया गया. जिसमें वैज्ञानिक आंकडों से यह सिद्ध किया गया है कि चन्द्रमा पर अपोलो के जाने का दावा झुठा है. इसके लिए निम्न प्रमाण दिये गये हैं. अपोलो एक सौ उन्नीस मील दूर गया वहां से पूर्व की तरफ मुड कर दो लाख तीस हजार मील जा कर चंद्रमा पर उतरा. परंतु पृथ्वी की ऊंचाई का कक्ष एक सौ नव्वे मील से अधिक नहीं है और चंद्रमा दुनिया से ३१ लाख ६८ हजार मील दूर है, इसके लिए अपोलो को इतना दूर जाना चाहिए. परंतु वह अभी तक अंतरिक्ष अनुसंधान वैज्ञानिकों के अनुसार एकसो नव्वे मील से ज्यादा दूर नहीं गया. इससे यह सिद्ध हुआ कि अपोलो सीधा न जा कर पृथ्वी के ही किसी अज्ञात पर्वत पर उतर गया.

दूसरा कारण चंद्रभूमि से मिट्टी के जो तथाकथित नमूने यहां लाये गये हैं वे पृथ्वी के नमूने जैसे ही हैं यह वैज्ञानिकोंने स्वीकार किया है.

तीसरा कारण यह कि वैज्ञानिक एक तरफ कहते है कि चंद्रमा पर हवा नहीं है और वर्षा नहीं होती. जब कि दूसरी तरफ कहते हैं कि वहां पांच या छह इंच गहरी नमी है इससे स्पष्ट होता है कि वह चंद्रमा भूमि नहीं है.

चौथा कारण केपकेनेडी के वैज्ञानिक बार-बार कहते हैं कि चंद्रमा की बनावट पृथ्वी जैसी है. जिससे यह सिद्ध होता है कि जिस जगह अपोलो गया वह पृथ्वी का ही अज्ञात स्थान है.

पांचवां अपोलो उत्तर से दक्षिण दिशा में पृथ्वी के चक्कर काटता रहा, लेकिन वह पूर्व से पश्चिम की ओर एक सौ नब्बे मील जाने के बाद टेढा होकर पूर्व दिशा में दो लाख तीस हजार मील गया था.

छठा अपोलो चंद्रमा पर कैसे पहुंचा जब कि उडान लेते समय उसका कोण विषुवत् रेखा से सात अंश था तथा चंद्रमा और पृथ्वी में बीच की दूरी उस समय अत्यधिक थी.

सातवां अपोलो आठ, नौ, दस व ग्यारह के अतिरिक्त यात्रियों ने चंद्रमा भूमि को सपाट बताया है उसे धूल का सागर गहरे गड्ढों की भूमि, शांत हुए ज्वालामुखियों का गहरा बताया है. इससे स्वतः स्पष्ट होता है कि वह स्थान पृथ्वी का कोई अज्ञात स्थान ही है.

ऐसी स्थिति में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है अपोलो से लेकर १४-१५ तक जिस स्थान पर उतरे उसे चंद्रमा ही मान लिया जाय. हो सकता है कि वे किसी अन्य स्थान पर उतरे हों और उसे चंद्रमा मान लिया गया हो.

इसके अतिरिक्त चंद्र यात्री वैज्ञानिकों की रिपोर्ट भी परस्पर असंबद्ध है. अतः वैज्ञानिक दृष्टि से भी अभी किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंचा जा शकता है.

यहा कहा जाता है कि चंद्रमा पर भीषण शीत, धूल और आंधी के अतिरिक्त कुछ नहीं है, वहां किसी प्राणी का रहना संभव नहीं है. इसका अर्थ हुआ कि जो वातावरण वहां है वह चंद्रमा में नहीं हो शकता. अतः वह चंद्रमा भूमि नहीं है.

पृथ्वी का व्यास चंद्रमा के व्यास से चार गुणा अधिक है और चंद्रमा का व्यास पृथ्वी से सात इंच की प्लेट की तरह दिखाई देता है. यह दावा किया गया कि कथित चंद्रभूमि से पृथ्वी के चित्र खींचे गये हैं और उन्हें प्रसारित किया गया है. उनमें यह बात दिखायी नहीं देती. न ही उसके इस प्रकार कोई प्रकाश पडता है. अतः चंद्रमा से पृथ्वी के चित्र लेने का दावा भी झुठा है.

इस पर्चे ने खगोल शास्त्रियों में खलबली मचा दी है.

प्रश्न : 52. जिज्ञासु श्री मनोहरलाल जैन :

मुगलकाल में जैन धर्माचार्यों व जैन धर्म का क्या स्थान था? पाकिस्तान बनने से पूर्व वहां जैनाचार्य विचरण करते थे क्या? अब वहां जैन है या नहीं?

उत्तर : यह प्रश्न इतिहास से संबंधित है यदि हम जैन दर्शन का इतिहास देखे तो यह हजारों वर्ष पुराना ही नहीं है, जैन दर्शन का इतिहास लाखों, करोडों, असंख्य वर्ष पुराना है. वर्तमान का इतिहास काल भी हजारों वर्षों पूर्व का मिलता है. भगवान् पार्श्वनाथ और उनके पूर्व प्रभु अरिष्ठनेमि के काल के इतिहास को आज के इतिहासकार एतिहासिक पुरुष मानते हैं. जैन धर्म वर्तमान अवसर्पिणी काल की अपेक्षा से प्रभु ऋषभदेव से चल रहा है. इस दृष्टि से भी इसे असंख्य वर्ष बीत चुके हैं.

यह निश्चित है कि मुगलकाल में जैन धर्म था. जैनाचार्यों का उल्लेख मिलता है. हीर विजयजी, सिद्धिचन्द्रजी आदि का प्रभाव अकबर बादशाह पर था. बडे-बडे राजा-महाराजाओं के समय में और मुगलों के समय में जैन धर्म प्रभावी रूप में था.

दूसरा प्रश्न है पाकिस्तान में जैन धर्म है या नहीं? जिस समय हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का संघर्ष हुआ उस समय पाकिस्तान में जैन मुनि थे. वहां पर जैन लोग बसते थे. आज भी बहुत से जैन

पाकिस्तान में रहते होंगे. कुछ लोग वहीं के निवासी वन गये, कुछ लोग वहा से भागकर चले आये. अतः अब भी कुछ जैन पाकिस्तान में हो सकते हैं.

प्रश्न : 53 जिज्ञासु श्री अविनाश जैन : आत्मा का स्वरूप क्या है ? आत्मा मानव में कब और कैसे प्रवेश करती है ?

उत्तर : आत्मा का स्वरूप सत्, चित् आनंद मय है. सत का तात्पर्य है जिसका अस्तित्व हो. चित का तात्पर्य है जो चैतन्य हो और आनंद का अर्थ है जो परम शान्तिमय हो. जैसे यह खंभा जड पदार्थ है, इसमें चेतना नहीं है. यह उत्पन्न होनेवाला है लेकिन चैतन्य शक्ति इसमें नहीं है इसमें आनंद की अनुभूति नहीं है. आत्मा का स्वरूप सत्, चित् आनंद है.

दूसरा प्रश्न है मानव के शरीर में आत्मा कब प्रवेश करती है ? आत्मा का अनादि स्वरूप है. यह अनादि काल से कर्मों से जकड़ी हुई बंधी हुई है. जैसे जैसे आत्मा के परिणाम बनते है वह जैसी जैसी क्रियाएं करती है वैसे वैसे कर्म आत्मा के साथ चिपकते हैं. शास्त्रों में ८४ लाख योनियां मानी है. यह आत्मा इन योनियों में परिभ्रमण कर रही है, अनेक बार इसने मनुष्य तन धारण किया है. यह संभव नहीं कि पहली बार ही यह मनुष्य तन में आइ हो. अनेक बार मानव तन स्वीकार किया है. वर्तमान में व्यक्ति जैसा पुरूषार्थ करता है तदनुकूल फल मिलता है. मनुष्य योनि के योग्य कर्म करता है तो मनुष्य भव मिलता है. तिर्यंच के योग्य कर्म करता है तो तिर्यंच भव मिलता है. जैसी क्रिया करता है वैसी गति मिलती है. हमारे मनुष्य योग्यतानुकूल कर्म हुए इसलिए हम मनुष्य तन में विद्यमान है. अच्छी क्रिया करते हैं तो स्वर्ग में जा सकते है, खराब क्रिया करते है तो नरक में जा सकते हैं, मनुष्य जीवन ऐसा है जिसमें चारों गति में जा सकते है.

प्रश्न : एक वैज्ञानिक ने बताया, कि गर्भ धारण करने के चार माह बाद आत्मा का प्रवेश होता है, क्या यह ठीक है ?

उत्तर : जैन तत्व ज्ञान कि दृष्टि से जसे ही शुक्र–शोणित दोनों तत्वों का संयोग होता है, वैसे ही अंतर मुहूर्त में (५, ७ मिनिट में) आत्मा आ जाती है. माता आहार ग्रहण करती है उसी के अनुसार शरीर निर्मित होता है फिर इन्द्रियां निर्मित होती है फिर क्रमशः निर्माण किया ९ माह तक चलती है.

प्रश्न : चार माह बाद आत्मा आने की बात कहां तक सच है

उत्तर : संभव है आपको विज्ञान का पूरा अध्ययन नहीं है. वैज्ञानिक तो यहां तक मानते हैं कि तीन माह बाद तो यह ज्ञात हो जाता है कि गर्भस्थशिशु बालक है कि बालिका अतः जब गर्भ की स्थिति बनती है उसी समय आत्मा आती है और उसी की अध्यक्षता में शरीर निर्मित होता है.

प्रश्न : 54. श्री अशोक ओस्तवाल : योग क्या है ? जैन धर्म में योग का क्या महत्व है ? गृहस्थ जीवन में योग की साधना कैसे की जाती है ?

उत्तर : आपका प्रश्न है, योग क्या है, जैन धर्म में योग का क्या महत्त्व है. जैन दर्शन में योग का व्यापक विवेचन मिलता है. योग के विषय में प्रभु के सिद्धांत का जैनाचार्य विभिन्न रूपों में वर्णन करते है. महर्षि पतंजली ने कहा कि योग "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" योग मे चित की वृत्तियां रुकती है. योग अपनी चित्त-वृत्तियों का विचारों का निरोध करनेवाला है, रोकनेवाला है. जब चित्तवृत्तियां रुक जाती है तब योग की परिपूर्ण स्थिति बनती है. लेकिन चित्तवृत्तियां रोकी नहीं जा सकती. उनका प्रवाह मोड़ा जा सकता है. आचार्य प्रवर ने गंभीर अनुशीलन के पश्चात् योग की मौलिक परिभाषा दी है– "योगश्चित्त वृत्ति संशोधः"

योग वह है जो चित्तवृत्तियों अथवा विचारो में संशोधन करता है, आचरण में संशोधन करता है. हमारे मस्तिष्क में शुभ विचार भी आ सकते है, अशुभ विचार भी आ सकते हैं. मुंह से सही शब्द भी निकल सकते हैं और गलत शब्द भी. आचरण सही भी हो सकता है और गलत भी. यह जो प्रवाह है मन, वचन और काया का वह योग है. इन प्रवाहों में जो दूसरे विकृत तत्व मिलते हैं, उनका संशोधन किया जाये. हमारे जो गलत विचार है उनका संशोधन कर दिया जाय. यह परिभाषा सही मालूम होती है क्योंकि चित्तवृत्तियां रोकी नहीं जा सकती. आंखों पर रंगीन चश्मा लगाया जाय तो रंगीन दृश्य यथारुचि रंग दिख सकता है. हमारे आचरण से रंगीनी को हटा दिया जाय. अब रहा गृहस्थ जीवन में योग का साधना का सवाल.

गृहस्थ भी मन, वचन और काया इन तीनों से अच्छे प्रयोग कर सकता है, चाहे वह घर पर, दुकान पर, या और कहीं रहे. यदि अपनी चित्तवृत्तियों को प्रशस्त दिशा प्रदान कर रहा है तो वह भी एक प्रकार से योगसाधना कर रहा है. किन्तु पूर्ण योग के लिए परिपूर्ण साधना में उतरना होगा.

योग में मूल भूत तीन तत्व हैं, मन योग, वचन योग और, काया योग। मन से चिंतन करते हैं. मुंह से वचन का प्रयोग करते हैं और काया से आचरण करते है. गलत आचरण का चिंतन नहीं करे. सही सोचें और जैसा विचार करते है वैसा ही व्यवहार करें. जीवन में व्यवहार सही नहीं बनता तो योग की अंतरंग साधना नहीं की जा सकती.

प्रश्न : 55 : जिज्ञासु चंद्रा खींवसरा :

भगवान को किसी ने नहीं देखा, फिर उनकी तरह तरह की मूर्तियां कैसे बनाई गई ?

उत्तर : भगवान को वर्तमान मे नहीं देखा है. अतः भगवान की मूल आकृति की मूर्तियां नहीं मिलती है. बाद में कलाकारों ने अपनी समझ के अनुसार मूर्तियां निर्मित कीं. यदि भगवान को देख कर मूर्तियां बनाई होती तो सब अलग अलग होतीं. किंतु आज जैसी महावीर की या ऋषभदेव भगवान की मूर्तियां मिलती हैं. प्रायः वैसी ही दूसरे भगवान की मिलती है. जिन्होने भगवान को नहीं देखा उन्होंने अपनी कल्पना के आधार पर बनाई है, क्योंकि मूल भूत भगवान की मूर्तियां मिलती ही नहीं है.

प्रश्न 56 : जिज्ञासु श्री राजेश कांठेड़ :

महावीर स्वामी अहिंसा के अवतार हैं ऐसा क्यों कहा गया है ?

भगवान महावीर स्वामी के पीछे जितने और जो जो विशेषण लगाये गये हैं, वे यथेष्ट रूप में सार्थक विशेषण लगाये गये हैं. महावीर के जन्म के समय जो सामाजिक एवं धार्मिक वातावरण था वह हिंसा से परिपूर्ण था. वह हिंसा, हिंसा की दृष्टि से हो रही थी, ऐसी बात नहीं थी. धर्म की दृष्टि से हिंसा हो रही थी. कहीं अश्वमेघ यज्ञ हो रहा था, कहीं नर मेघ यज्ञ हो रहा था, तो कहीं पशुओं का हवन किया जा रहा था. यह सब धर्म के नाम पर हो रहा था. धार्मिक कहलानेवाले लोग हिंसा कर रहे थे. जिन मनुष्यों और पशुओं की बलि दी जा रही थीं उनके बारे में कहा जाता था कि वे स्वर्ग में पहुंच रहे हैं. ऐसी भ्रांति धर्म के संबंध में चल रही थीं. तो उस समय प्रभु महावीर ने अनेक विषयों में क्रांति की। उन में एक स्वर ऐसा भी था जिसे अभयदान कहते हैं. संसार के सभी प्राणी शांति प्रिय हैं कोई मरना नहीं चाहता सभी जीना चाहते हैं. सब को जीने दो. इसी नारे को लेकर उस समय अहिंसक क्रांति हुई जिसने उन्हें अहिंसा का अवतार कहा गया. वे एक अनूठे लोकोत्तर पुरुष हुए हैं. उनका जीवन ही अहिंसा मय हो गया, इसलिए वे अहिंसा के अवतार कहलाए.

प्रश्न 57 : जिज्ञासु श्री विट्ठलभाई : दुनियानां हेतु सूं छे ? दुर्गुणोंनु मूल सूं. आवती चोवीसीमां पण तीर्थंकरों नक्की थयेला होय तो पुरुषार्थनुं बीज केटलु ?

उत्तर : विठ्ठलभाई ने पूछा है, कि दुनिया का हेतु क्या है. सुंदर प्रश्न है. वैसे दुनिया का हेतु आप किस रूप में जानना चाहते हैं. आपको पूछने का आशय यह है कि दुनिया क्यों पैदा हुई ? तो जैन दर्शन शास्त्र दुनिया को अनादिकालीन मानते हैं. कहां शुरुआत हुई इसका पता नहीं. दूसरे मतावलम्बी इसे ईश्वरीय देन मानते हैं, वहां जैन दर्शन कहता है कि सृष्टि अनादिकालीन है, अनंत काल तक चलती रहती है. इसके रूप में परिवर्तन होता है. जहां स्थल–भूमि है वहां जल-भूमि या समुद्र हो जाता है और जहां जल है वहां स्थल या पहाड हो जाते है. इस के पीछे हेतु नहीं है जो शाश्वत है उसका हेतु नहीं होता. अंडे से मुर्गी पैदा हुई या मुर्गी से अंडा पैदा हुआ ? यह अनादि है एकदूसरे से पैदा होते हैं.

इनका दूसरा प्रश्न है कर्म का मूल क्या है ? इसका उत्तर यह है कि कर्म का मूल आत्मा की राग द्वेषात्मक प्रवृत्ति है. अपने ही शुभ अशुभ प्रवृत्ति द्वारा कर्म बंधते है. कर्म वर्गणा के पुद्गल सृष्टि में भरे हैं. शरीर पुद्गल के बीच में है. आत्मा जिस समय जैसा कार्य करती है वैसे ही कर्म उसके चिपक जाते हैं. कर्म का मूल आत्मा है.

इनका तीसरा प्रश्न है कि आगामी तीर्थंकर नक्की है, फिर पुरूषार्थ क्यों ? हमें पुरूषार्थ तीर्थंकर बनने के लिए नहीं करना है आत्मा को कर्मों से मुक्त कराने के लिए पुरूषार्थ करना है. आत्मा जब कर्मों से रहित हो जाती है तब तीर्थंकर बनते है. हम ऐसा पुरूषार्थ करें जिससे आत्मा शुद्ध बन जाय. इसके अतिरिक्त तीर्थंकर कुछ ही चौबीसियों के निश्चित है अतः अन्य व्यक्ति भी तीर्थंकर नाम

कर्म का बंधन कर के तीर्थंकर बन सकते है. आनेवाली अनेक चौवीसियों में या महाविदेह क्षेत्र में.

प्रश्न 58 : जिज्ञासु श्री कालूलाल मेहता : केवल ज्ञान क्या है ? पुराने जमाने में होता था इस समय क्यों नहीं होता ? बाल ब्रह्मचारी साधु क्यों नहीं केवल ज्ञान प्राप्त करने की ओर अग्रसर होते ?

उत्तर : पहला प्रश्न है केवलज्ञान क्या है. केवलज्ञान वह ज्ञान है जिसके द्वारा ब्रह्मांड के तीनों लोकों में अथवा पूरे विश्व में क्या हो रहा है इस बात को एक ही समय में जान सकें, एक ही समय में देख सकें. तात्पर्य यह है कि वर्तमान में क्या हो रहा है; भविष्य में क्या होगा इसको एकही समय में देख लें. स्फटिक मणि जितनी साफ होती है, उसमें स्पष्ट दिखाई देता है उसी तरह केवलज्ञानी को पूरे ब्रह्माण्ड में क्या हो रहा है, क्या होगा यह दिखाई देता है, इसको कहते हैं. केवलज्ञान.

अब रहा सवाल की आज के युग में केवलज्ञान क्यों नहीं होता ? आत्मा की जितनी शक्ति पहले थी उतनी आज भी है. लेकिन इस आत्मा को जिस शरीर से पुरूपार्थ करना चाहिए उसमें अंतर आ गया है, १००० वाल्ट का वल्ब जितना प्रकाश खुले स्थान पर फैलाता है, उतना यदि उसे एक मटकी में रख दिया जाय तो नहीं करेगा. मटकी में मटकी जितने क्षेत्र में ही प्रकाश करेगा. वर्तमान युग में इस शरीर से केवल ज्ञान प्राप्त करने योग्य पुरूपार्थ नहीं किया जा सकता इस लिए आज केवल ज्ञान प्राप्त नहीं होता. केवल ज्ञान की प्राप्ति के लिए वज्र ऋपभनाराच संहनन (हड्डियों की मजबूती) चहिए और वह आज लपलब्ध नहीं है. इस संहनन में पूरी ट्रेन भी शरीर पर से निकल जाए तो भी कुछ नहीं बिगडे और यह सब कमजोरी इसह्रास काल के कारण हो रही है.

प्रश्न 59 : (अ) जिज्ञासु श्री हुकमीचंद डांगी :

बताया जाता है कि मनुष्य जीवन पाना बहुत कठिन है, लेकिन मनुष्य जीवन पाना इतना सरल हो गया है कि उसको रोकने के लिऐ सरकार काफी रूपया खर्च कर रही है फिर भी रोक नहीं पा रही है. तो हम कैसे माने कि मनुष्य जीवन पाना बहुत दुर्लभ है ?

(व) यह तो सर्व मान्य है कि भगवान आदिनाथ के समय में तिथी गिनती नहीं थी फिर भी उनकी जन्म तिथि और उनके समय के श्रावकों की गिनती कैसे बताई जाती है ?

उत्तर : वस्तुतः मनुष्य जीवन पाना बहुत दुर्लभ है. किंतु केवल मानव चोले की दुर्लभता नहीं बताई है, मानवता को दुर्लभ बताया है. आज मनुष्यों की संख्या तो बढ रही है लेकिन उनमें मानवता कितनी है ? अगर मानवता बढती तो सरकार रोकने का प्रयास नहीं करती.

शास्त्रो में जो बात कही गई है वह मनुष्यत्व की है, मनुष्य चोले की नहीं. मानवता दुर्लभ है मानव दुर्लभ नहीं है. वैसे एकेंद्रिय से बेइंद्रिय बनते है और उससे भी आगे विकास करते है तो अनंत पुण्यवानी के द्वारा ही दूसरी बात यद्यपि दुर्लभता मनुष्यत्व की बताई गई है किंतु मनुष्यतन भी प्राप्त होता सहज नहीं है. आज जो जन संख्या बढ रही है और सरकार के रोके नहीं रूक रही है इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य जीवन सुलभ है. पूर्व जन्मो में जिन्होने पुण्य का अर्जन किया और देवलोक में गए है अथवा पाप के द्वारा नरक तिर्यंच में गए है वे मर कर पुनः मनुष्य गति में आ रहे है अतः यह उनके पुण्य के कारण ही मिल रहा है.

आपका दूसरा प्रश्न तिथी और गिनती के बारे में है. उस समय भी वर्ष, तीर्थी और महीने थे और ये अनादिकाल से चले आ रहे है. विक्रम संवत बाद में चला है. लेकिन तीथि, महीने, पर्व वर्तमान में है, भूत में थे और भविष्य में भी रहेंगे.

प्रश्न : 60 : जिज्ञासु श्री नवरतन जैन :

आजकल जैन समाज में जैन संस्कार से शादी तथा नामकरण हो रहा है. क्या उचित है या नहीं ? इस बारे में आपके क्या विचार है ?

उत्तर : ये शादी विवाह और जन्म संस्कार आदि आपके सामाजिक रीति रिवाज है. धर्म का गहरा सम्बन्ध रीति रिवाज से नहीं होता. समाज के रीति रिवाज बदलते रहते है, जैन शास्त्रो में विवाह और संस्कार के रीति रिवाज का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है. समाज के विधि विधान समाज बनती है. मृत्यु संस्कार के बाद संतो के पास जायेंगे तो वे मांगलिक सुना देंगे. इसी तरह विवाह संस्कार के समय उनके पास जाते हैं तो वे मांगलिक सुना देते है. साधुता की दृष्टि से उनका आपके सांसारिक कामों में सम्मिलित होना अनुचित है. संत यह कार्य नहीं करते. शादी संस्कार बंधन है. साधु के ब्रह्मचार्य की मर्यादा है. संत अगर ऐसा कार्य करें कि विवाह मंडप में जा कर मांगलिक सुनकर सम्बन्ध जुडवा दे तो यह अनुचित है.

प्रश्न : 61 : जिज्ञासु श्री रतनलाल :

हम सभी जैनी स्थानकवासी, मंदिर मार्गी आदि संवत्सरी पर्व एक साथ मनाने में क्यों असमर्थ है, इसका क्या कारण है. क्या भविष्य में यह पर्व एक साथ मनाया जायगा ?

उत्तर : इस सम्बन्ध में आपने सुना होगा मैंने कई बाते कही है. सारे जैन समाज की संवत्सरी एक दिन होती है तो मैं तत्पर हूं. मैंने यहां तक शब्दो का प्रयोग किया है कि अन्य समाजवाले मुझे बिना पूछे एक तीथि निर्धारित कर दें तो मैं इसको असली रूप देने के लिए तैयार हूं. लेकिन यह निर्धारण सर्वानुमति से हो. एक हाथ से ताली नहीं बज सकती. सभी तैयारी करें तो संवत्सरी एक रोज हो सकती है.

प्रश्न : 62 : जिज्ञासु श्री प्रकाशमल चोरडिया :

क्या भगवान महावीर ने यही उपदेश दिया कि एक ही समुदाय के ३६ आचार्य हो और इतने बडे जैन पर्व को अलग अलग दिन मनावें. क्या इसके लिए श्रावक, साधु या ग्रंथ दोषित है ?

उत्तर : भगवान महावीरने शास्त्रीय दृष्टि से बतलाया कि जिस रोज चोमासी प्रतिक्रमण किया जाय उस रोज से ४९ या ५० वें दिन संवत्सरी पर्व मनाना चाहिए और संवत्सरी के पश्चात् ७० वें दिन विहार होना चाहिए. यह शास्त्रीय उल्लेख है. इसको कोई माने या न माने. कई लोग परंपरा को बीच में ले आते है, तब शास्त्रीय उल्लेख गौण हो जाता हे भगवान महावीर के सिद्धांत एक है. सिद्धांत के अनुसार चले तो अंतर आने का प्रश्न नहीं है. आचारांग सूत्र श्वेतांवर समाज के लिए सर्व मान्य है. उसके अनुसार सारे विधि विधान सरलता से वन जाये तो सारी समस्या हल हो जाती है. इसके अनुसार नहीं चलते हैं इसीलिए भिन्नता आ रही है.

एक पिता ने पुत्रों से कहा कि भाई ईमानदारीसे रहना. कभी बेईमानी नहीं करना. व्यापार भी ईमानदारी से करना. आगे चलकर एक पुत्र कहता है कि आज के जमाने में हम ईमानदारी से नहीं रह शकते. हम तो वेईमानी से रहेंगे. उसने पिता का कहना नहीं माना और अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने लगा. इससे दोष पिता का नहीं है. पिता का आदेश सब के लिए समान है.

वैसे ही भगवान का उपदेश सब के लिए एक है, लेकिन आचरण करनेवालो में भिन्नता है इसलिए भिन्नता दिखती है. सिद्धांत की दृष्टि से देखे और चले तो कोई भिन्नता नहीं रह सकती.

प्रश्न : 63 : जिज्ञासु श्री जे. एम. कर्नावट :

क्या गृहस्थ जीवन यापन करते हुए मोक्ष की प्राप्ति संभव है ?

उत्तर : चूंकि गृहस्थ में रहते हुए उसे अनेक प्रकार के पाप जो

जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक है, करने पडते है, और हिंसा आदि का सेवन करते हुए मोक्ष नहीं हो सकता है.

प्रश्न : 64 : जिज्ञासु श्री दौलत जैन :

आत्मा यदि अमर है तो इसकी संख्या निश्चित है या नहीं.

उत्तर : प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र इकाई है. उसका मौलिक स्वरूप एक है किंतु इसकी संख्या गणना की जा सके इस रूप में निर्धारित नहीं है. अनंत संख्या की गिनती नहीं हो शकती ! जैसे कर्म होते है, आत्मा वैसा ही शरीर धारण करती है. एक आत्माने पशुओनी के कर्म किये है तो वह पशुओनी में चला जायेगी. देव योनि में जाने के कर्म किये है तो देव योनि में चली जायेगी. आत्मा अपने अपने कर्मो के आधार पर विभिन्न योनियों में जाती है. इसलिए व्यवहारिक दृष्टि से कहते है कि आत्मा जन्म लेती है, मरती है, किंतु वास्तव में आत्मा मरती नहीं. उसका पर्याय बदलता है. एक शरीर से दूसरा शरीर धारण करती है. आत्मा नष्ट नहीं होती, पैदा नहीं होती, पर्याय बदलती है. किंतु अपने मूल रूप में सदा बनी रहती है, इसीलिए उसे अमर कहा गया है.